सप्रेम भेंट—

तालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट
महावीर बाजार, ब्यावर

दो शब्द

व्याख्यान एक महान् कला है, मजे हुए अनुभवों की प्रतिच्छाया है, तथा जन-जागरण का मूल मंत्र है। भारत के मनीषियो की भाषा में हम इसे "कर्णामृतं सूक्तिरसम्" कह सकते हैं। यदि यह परम पुनीत अमृत त्रिपथगा का रूप लेकर जन-जन के मन, वाणी तथा कर्म मे प्रवाहित हो जाए तो जन समाज में एक नयी चेतना तथा जागृति पैदा कर सकता है एक पाश्चात्य विद्वान् ने इसके प्रभाव को स्वीकार करते हुए कहा है कि—

Oratory is the great power, that moves nations to do and dare अर्थात् व्याख्यातृत्व शक्ति एक वह महान् शक्ति है जो किसी भी राष्ट्र को कार्यशील तथा साहसी बनने की अधिकाधिक प्रेरणा दे सके।

जहाँ तक जैन समाज का सम्बन्ध है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जैन समाज में जो कोई भी प्रगति हुई है या हो सकती है उसका श्रेय एक मात्र धारावाही व्याख्यान पद्धति को ही है! जैन साधुवर्ग इतर साधनो से असम्पन्न होते हुए भी गांव-गांव और नगर-नगर में घूम घूम कर व्याख्यान के द्वारा ही समाज मे नव चेतना फूंकता रहा है। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे ही

व्याख्यानों का एक संग्रह है, जिसमें नैतिक तथा व्यावहारिक विषयों को छूते हुए जीवन की सही दिशा की ओर समुचित निर्देश किया गया है। दिवाकरजी महाराज जिनकी आत्मानुभूतिया पुस्तक की पंक्तियो मे झकृत हुई है, अपने युग के सफल व्याख्याता थे। मैं मानता हूं कि किसी व्यक्ति की ओजस्वी वाणी का प्रभाव उसकी प्रतिलिपि से सुस्पष्ट नही होता फिर भी प्रस्तुत संग्रह के प्रत्येक शब्द से दिवाकरजी महाराज का गहन चिन्तन उदार दृष्टिकोण तथा अभिव्यक्ति कौशल स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। दिवाकर जी महाराज का जीवन कल्पना विहार में विचरण करने वाले साहित्यिक कवि का जीवन ही नहीं अपितु कर्तव्य विहार मे दृढता से बढने की प्रेरणा देने वाला एक कर्मठ जीवन है। इसीलिए उनकी शब्दावलि मे अतिरञ्जित कल्पना तथा पाडित्यमन्यो के सजधज के साथ किए जाने वाले प्रयोग हमें देखने को नही मिलेंगे।

प्रत्यक्ष परिचय से पहले दिवाकरजी महाराज के विषय में बहुत कुछ सुना था किन्तु हृदय कानो पर कम ही विश्वास करता था। ज्यो ही मैंने राजस्थान प्रदेश मे प्रवेश किया छोटी छोटी ग्रामवाटिकाओं से लेकर विशाल नगरवीथियो तक को आपके यश सौरभ से सुरभित पाया। जन जन की वाणी मे आपका नाम, हृदय मे अविरल भक्ति, तथा जीवन मे आपका सन्देश देखने को मिला। प्रत्यक्ष दर्शन के बाद तो वे धारणाएँ और परिपुष्ट हो गई। मैंने देखा कि भेद रेखाओ को चीर कर नवागन्तुक के साथ घुल मिल जाने वाला एक क्रान्तदर्शी सन्त मेरे समक्ष है। जीवन की यह अनुभूति महामुनि सम्मेलन मे एक बार फिर स्मृति रूपेण

वि षया नु क्रमणिका

१	लोभ-कषाय	१
२	पुण्य-पाप की चौकड़ी	३४
३	दया-माता	६६
४	भगवत्स्तुति की महत्ता	९९
५	शरीर का सदुपयोग	१३२
६	नमस्कार मन्त्र की महिमा	१६७
७	मन ! सुन रे !	१९१
८	उद्धार	२२७
९	गुरु - भक्ति	२५९

साकार हो गई। एक छुपी हुई व्यथा विचार धारा में तरङ्गित हुई काश ! कि वे महापुरुष आज भी हमें मिले होते।

बेशक वे ज्योतिपुञ्ज दिवाकर हमारे समक्ष नहीं हैं किन्तु दिवाकर की एक अखण्ड प्रभा तथा दिव्य ज्योति पं० श्री प्यारचन्दजी महाराज के संरक्षण में आज भी जगमगा रही है। आपने उस ज्योति को जनता जनार्दन तक पहुँचाने का सत्प्रयत्न किया है इस महती कृपा को सन्मुख रखते हुए मुझे पाठकों से कहना है, कि वे एक ज्योतिर्मय जीवन के ज्योतिर्मय सन्देश के द्वारा स्वयं को ज्योतिर्मय बनाने की प्रेरणा इस पुस्तक से पाते रहें।

—मदन मुनि

१

लोभ-कषाय

स्तुतिः—

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
नि:शेषनिर्जित जगन्त्रितयोपमानम् ।
विम्बं कलङ्कमलिन क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी,, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवान् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाए ?

हे देवाधिदेव ! जो प्राणी आपके मुखारविन्द की तरफ देख लेता है, उसके नेत्र फिर अन्यत्र कहीं भी सन्तोष नही पाते । चाहे कोई देव हो, या मनुष्य हो अथवा क्रूर स्वभाव वाला सर्प

ही क्यों न हो, आपका मुख सब के नेत्रों को हरण करने वाला है। सभी का चित्त आपके मुख-चन्द्र की ओर आकर्षित हो जाता है। प्रभो! आपके मुख को संसार के किसी भी पदार्थ की उपमा नही दी जा सकती। जगत् में जितनी भी उपमा देने योग्य वस्तुएँ हैं, उन सब को आपने जीत लिया है। मुख के लिए सर्वोत्तम उपमा चन्द्रमा की है। पर जब आपके मुख और चन्द्रमा की तुलना करते हैं, तो दोनो में बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। जैसे श्रीमन्त मे कंजूसी का कलक होता है और ज्ञानी मे अभिमान का कलंक होता है, उसी प्रकार चन्द्रमा के बीच मे भी कलंक का धब्बा है। इस प्रकार अपने मध्य में कलंक को धारण करने वाले चन्द्रमा की उपमा आपके मुख को किस प्रकार दी जा सकती है? आपका मुख सर्वथा निष्कलंक है।

कलक की बात जाने भी दें और उसकी उपेक्षा भी कर दें तो भी वह आपके मुख के समान नही हो सकता। चन्द्रमा के मुकाबले मे जब सूर्य का उदय होता है तो सूर्य के प्रखर तेज से चन्द्रमा सूखे हुए पलाश के पत्ते के समान दिखाई देने लगता है। उसका प्रकाश गायब हो जाता है और वह श्रीविहीन फीका पड़ जाता है। उसकी छवि दब जाती है। मगर हे प्रभो! आपका प्रतिभाशाली मुख सदैव निर्मल और सौम्य प्रकाश से सुशोभित रहता है। उसकी कान्ति को सूर्य भी नही दबा सकता। ऐसी स्थिति मे आपके मुख की तुलना करना चाहे तो किससे करें?

ऐसे अक्षय, अमित और अतुल प्रकाश के पुंज मरुदेवीनन्दन भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उनको ही हमारा बार-बार नमस्कार हो!

भाइयो ! यहाँ भगवान् के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन करके उनकी स्तुति की गई है। कहा जा सकता है कि हमें भगवान् के आध्यात्मिक गुणों की उपासना करनी है। उनके मुख की छवि से क्या प्रयोजन है ? परन्तु ऐसा कहने वाले गभीर विचार नहीं हैं। एक कवि ने कहा है:—

वक्त्रम् वक्ति हि मानसम् ।

अर्थात्—चेहरा भीतर-अन्तरतर-की बात प्रकट कर देता है।

इस कथन से प्रतीत होता है कि मन मे जैसी भावनाएं होती हैं उनका चित्र मनुष्य के चेहरे पर अंकित हो जाता है। जिसका चित्त कोमल और सतोगुणमय होगा, उसके मुख पर सौम्यभाव की झलक आये बिना नही रहेगी। इसके विपरीत जिसका हृदय निष्ठुर, क्रूर, क्रोधमय और द्वेषमय होगा, उसके चेहरे पर रौद्रभाव चमक उठेगा। आकृति से मनुष्य के गुणो का पता चल जाता है। इसी बात को ध्यान मे रखकर भगवान् के चेहरे की निर्मलता, असाधारण दिव्यता, अनुपम कान्ति, अतुलित आभा और असदृश लावण्य का वर्णन किया जाता है। इस वर्णन के द्वारा त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान् के अन्त-रग का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस वर्णन मे एक महत्वपूर्ण और रहस्यमय कारण भी है। शास्त्रो में चार प्रकार के ध्यान बतलाये गए हैं-आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन चारो मे से पहले के दो ध्यान अप्रशस्त हैं। वे पापध्यान कहलाते हैं। धर्मध्यान और

शुक्लध्यान प्रशस्तध्यान हैं और इन ध्यानो के प्रभाव से आत्मा का अभ्युदय होता है। इन दोनो मे से शुक्लध्यान के चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क सविचार, एकत्ववितर्क अविचार, सूक्ष्मक्रिया-निवृत्ति और समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति। इन सब का विस्तार पूर्वक विवेचन करने के लिए बहुत सा समय चाहिये और यह एक स्वतंत्र ही विषय है। अतएव यहां सिर्फ इतना बतला देना ही काफी होगा कि शुक्लध्यान के पहले के दो भेद प्रायः पूर्वशास्त्रो के वेत्ताओ को ही होते हैं और अगले दो भेद केवली भगवान् को होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः, परे केवलिनः।

आशय यह है कि शुक्लध्यान इतनी उच्चश्रेणी का ध्यान है कि वह ऊँची कक्षा पर पहुँचे हुए महात्माओं को ही हो सकता है। साधारण साधको को उसकी प्राप्ति नही होती। इस प्रकार चार ध्यानो मे से दो ध्यान सर्वथा त्याज्य हैं और शुक्लध्यान को पाना सर्वसाधारण के लिए अशक्य है। अब केवल धर्म-ध्यान रह जाता है। यह धर्मध्यान ही सर्वसाधारण साधको के लिए कल्याणकारी है। धर्मध्यान के भी चार भेद हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत। इनमे से जो रूपस्थ ध्यान है, उसमे अरिहन्त भगवान् की परम शान्त, अलौकिक दीप्तिमय, वीतराग मुखमुद्रा को अपने हृदय मे स्थापित करके, स्थिर चित्त से ध्यान किया जाता है। अगर भगवान् की मुखमुद्रा का वर्णन न किया जाता तो महात्मा संत रूपस्थ ध्यान को किस प्रकार कर सकते? शास्त्रो के इस वर्णन के आधार पर ही रूपस्थ ध्यान किया जाता है।

रूपस्थ ध्यान करते करते जब साधक दृढता प्राप्त कर लेता है, तब वह धर्म ध्यान के चौथे भेद में अर्थात् रूपातीत ध्यान में प्रवेश करता है। रूपातीत ध्यान मे रूप रहित, निर्मल, निरंजन, निराकार सिद्ध परमात्मा का ध्यान किया जाता है।

इस कथन से समझा जा सकता है कि भगवान् के आत्मिक गुणो का ध्यान करने से पहले उनके बाह्य स्वरूप को हृदय में स्थापित करके ध्यान करने का अभ्यास करना आवश्यक है। इस ध्यान मे सुविधा उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही तीर्थङ्कर भगवान् की शरीर सम्पत्ति का वर्णन किया गया है।

भाइयों ! प्रभु के ध्यान मे अद्भुत शक्ति है। जब परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को अपने अन्तःकरण मे स्थापित करके तन्मयता, एकरूपता, अभिन्नता का चिन्तन किया जाता है, तो आत्मा में अनिर्वचनीय आनन्द की मन्दाकिनी प्रवाहित होने लगती है। उस अलौकिक, अद्भुत, अनूठे और अनुभवगम्य आनन्द के आगे सकल जगत् के राज्य का सुख तुच्छ-अतितुच्छ प्रतीत होता है। विषयजन्य उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सुख भी उसके सामने नगण्य है। उस अनूपम आनन्द की अनुभूति होने पर आत्मा अमरत्व का अधिकारी बन जाती है !

मगर उस अनुपम आनन्द की अनुभूति अनायास नहीं हो जाती उसके लिए भी साधना की आवश्यकता होती है। हृदय को शुद्ध बनाने की आवश्यकता होती है। जिसका अन्तः-करण कषायो के मल से मलीन है, तृष्णा की आग से अशान्त है, वह उस अलौकिक रस का पान नहीं कर सकता। जिसे उस

असीम सुख के सागर में अवगाहन करके परम शान्ति का अनुभव करना है, उसे सर्व प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करना पड़ता है। सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् वीतराग धर्म का आचरण किया जाता है। उस आचरण का विशाल महल पाच व्रतों पर खड़ा हुआ है। अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों को कष्ट मत पहुँचाओ। दुनियाँ में प्रतिष्ठा रखनी है तो झूठ मत बोलो। सुखी रहना है तो चोरी मत करो। तन्दरुस्ती कायम रखनी है तो ब्रह्मचर्य का पालन करो। चित्त को निराकुल और शान्त बनाना है तो सन्तोष धारण करो। सन्तोष नहीं रक्खोगे तो सब के साथ प्रेम नहीं रख सकोगे। सन्तोष के अभाव मे भाई-भाई का प्रेम भी कायम नही रहता। क्रोध मे भी दोष है, मान में भी दोष है, माया में भी दोष है, मगर लोभ तो दोषों का विशाल भण्डार है। शास्त्र मे कहा है —

> कोहो पीइं पणासेई, माणो विणयनासणो ।
> माया मित्ताणि नासेई, लोहो सव्वविणासणो ।।

दस. अ. ८ गा. ३८

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। वह तमाम अच्छाइयो पर पानी फेर देता है।

लोभ की शक्ति बड़ी जबर्दस्त होती है, इतनी जबर्दस्त कि वह सामायिक, सवर, उपवास, पौषध, दान, पुण्य आदि सभी को खूंटी पर रखवा देता है। लोभ आने पर ईश्वर भजन भी छूट

जाता है। लोभी मनुष्य साधुओं के पास भी नही फटकता है, क्योकि लोभी जिसे अमृत समझता है, त्यागी उसे कचरा समझता है। लोभ का कही अन्त नही है –

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न नियट्ठियं।।

उत्त. अ ८ गा. १७

ज्यो-ज्यो लाभ होता है त्यो-त्यों लोभ बढता है, क्योकि लाभ से लोभ की वृद्धि होती है। कपिल ब्राह्मण दो माशा सोना लेने के लिए घर से निकला था, मगर जब राजा ने मुँह मांगा देने का वचन दे दिया तब उसका लोभ बढ गया और बढ़ता ही चला गया। सारे राज्य को ही माग लेने की लालसा उसके दिल में पैदा हो गई। यही दूसरो का हाल है। सट्टे मे दो पैसे का लाभ हो गया तो बस चाँदी का हॉल ही नही छूटता ! सुन्दरदासजी कहते हैं –

जो दस बीस पचास भए सत्त होत हजार के लाख मंगेगी,
करोड अरब्ब असंख्य भए पृथिवीपति होने की चाह जगेगी।
स्वर्ग पताल को राज्य लियोतो तृष्णा अधिकी आग लगेगी,
सुन्दर एक सन्तोष बिना नर तेरी तो भूख कभी न भगेगी।।

किसी आदमी के पास एक पैसा भी नही है। अगर उससे कहा जाय कि–भाई, तू इधर-उधर क्यों फिरता है? तब वह कहता है–मेरे पास दस रुपये हो जाएं तो फिर मैं ईश्वर का भजन

करने लगूं ! अब कोई सोचता है कि यह दस रुपये पाकर ईश्वर भजन करने की बात कहता है तो जिसके पास दस रुपय हैं, वह तो अवश्य ईश्वर का भजन करता होगा और सन्तोष वृत्ति में होगा। तब दस रुपये वाले से पूछा गया-भाई, तुझे तो सन्तोष है ? उसने कहा-अजी, दस रुपये से होता ही क्या है ? मुझे तो बीस रुपये चाहिए। बीस हो जाएँ तो फिर चिन्ता की कोई बात नही है। तब वह बीस रुपये वाले के पास गया। उससे भी यही प्रश्न किया गया—तुझे सन्तोष है ? तू ईश्वर का भजन करता है ? उसने कहा—भाई ! बीस रुपट्टी से क्या काम चल सकता है ? कम से कम पचास तो चाहिए ही ! फिर पचास वाले से पूछा गया तो उसने सौ की आवश्यकता बतलाई और सौ वाले ने हजार की अभिलाषा प्रकट की। एक हजार वाले से प्रश्न किया तो वह पचास हजार की लालसा जाहिर करता है। जब पचास हजार वाले के पास जाकर यही बात पूछी गई तो वह कहता है—एक लाख की सम्पत्ति हो जाय तो फिर तमाम झझटें छोड़ कर भगवान् के भजन मे लग जाऊँ ! फिर एक लाख वाले से पूछा गया तो वह बीस लाख के सपने देख रहा था ! उसने कहा—बम्बई, कलकत्ता और मद्रास मे दुकानें खोलनी हैं। उन दुकानों से आमद होने लगेगी तब मैं निश्चिन्त होकर भगवद् भजन करूँगा।

भाइयों ! संसारी जीवो की यह हालत है ! क्या इस कथन मे कोई अत्युक्ति है ? वास्तव में लोभ का कहीं अन्त नही आता। मनुष्य हाय हाय करता हुआ अपना अनमोल जीवन गंवा बैठता है और तृष्णा एवं अशान्ति पूर्वक प्राण त्याग करता

है, मगर सन्तोषवृत्ति अपने भीतर नही जगाता। जिसके बाप-दादे गरीब थे, भरपेट रोटियां भी नही पाते थे, ऐसे लोग लखपति होकर भी भगवान का भजन नही करते। पुद्गलो के लिए चिन्तामणि के सदृश मानव-जीवन को बर्बाद कर रहे हैं। कोई आदमी कौवा को उड़ाने के लिए हाथ का हीरा फेंक दे तो मूर्ख समझा जाता है, मगर धन दौलत के लिए जीवन को गवा देना क्या उससे भी बड़ी मूर्खता नही है?

कभी सोचा है तुमने कि धन वास्तव में सुख पहुंचा सकता है अथवा नही? धन में सुख है या सन्तोष में सुख है? अरे भाई, प्रत्यक्ष देख रहे हो कि धन सैकड़ों मुसीबतो का घर है, झगड़ो की भौंडी है अशान्ति का भंडार है, चिन्ताओ का कारण है। धर्म और ईश्वर को भुला देने वाला नशा है। जो लोग निर्धन अवस्था में धर्मध्यान करते थे सत्संगति करते थे, धर्मोपदेश सुनते थे सामायिक-पोषध आदि करते थे, वही धनवान होकर यह सब छोड बैठते है। वे पैसे को ही परमात्मा मान कर उसकी उपासना मे लग जाते है। धर्म कर्म करने का अवकाश ही नही पाते। धन विवेक का विनाश कर देता है। धनी आदमी नही सोच सकता कि मुझे चार रोटियां और तन ढँकने को कपड़ा चाहिये। इससे ज्यादा धन मेरे क्या काम आएगा? वह वृथा है और सिर्फ व्याकुलता ही उत्पन्न करता है। उससे शान्ति नही मिल सकती। सुख नही मिल सकता। यही कारण है कि लोग धन को ही सर्वस्व समझ कर उसकी उपासना किया करते हैं। और आत्मकल्याण की तरफ ध्यान ही नही देते।

यह सब लोभ कषाय की ही महिमा है। लोभ कषाय के वशीभूत हुआ मनुष्य आंखें रहते भी अंधा बन जाता है, कान रहते भी बहिरा हो जाता है उसे अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नहीं रहता। लोभी अपने मित्रो के साथ भी धोखा और विश्वास-घात करने से नही चूकता।

दो आदमी कमाई करने के लिए परदेश गये। संयोग अनुकूल मिल गये और लाभ अन्तराय कर्म का क्षयोपशम हुआ तो दोनो ने अच्छी कमाई कर ली। फिर भी उनकी तृष्णा शान्त नहीं हुई। वह शान्त हो भी कैसे सकती है? जब लखपति, करोडपति होने की और करोड़पति, अरबपति होने की इच्छा करने लगता है। तो तृष्णा शान्त कैसे हो सकती है? तृष्णा तो एक तरह की अग्नि है जो धन सम्पत्ति के ईंधन से बुझती नहीं, बढ़ती ही जाती है। कोई सोचे-आग लकड़ियों को खाती है तो देखें कितनी लकड़ियों को खा सकती है! उसने दस लकड़ियां और डाल दीं। दस से नही बुझी तो हजार और झोंक दीं। मगर क्या ऐसा करने से आग बुझ सकेगी? वह तो अधिक अधिक प्रज्वलित होती जायगी और फैलती जायगी। आग को बुझाना है तो उसमे लकड़ी डालना बद कर दो। यही बात तृष्णा के विषय मे है। धन कमाते-कमाते, बढाते-बढाते तृष्णा का अन्त करना चाहोगे तो अन्त नहीं होगा। वह तुम्हारे प्राणो की आहुति ले लेगी। धन भी प्राणों का ग्राहक बन जाता है। हिंडौन में एक महात्मा के पास डेढ लाख की पूंजी थी। उसके चेले के दिल में लोभ जागा और तीन आदमियो की सहायता लेकर उसने अपने गुरु महात्मा को मार डाला। जयपुर में उन पर मुकदमा चला।

परिणाम कुछ भी निकला हो, लेकिन यहां तो सिर्फ यही देखना है कि धन के कारण ही उस महात्मा को अपनी जान गंवानी पडी। प्रतिदिन ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। इस धन के लिए न जाने कितने धनवानो को जान देनी पड़ती है। डाके पड़ते हैं तो गरीबों के घर नही पड़ते। गांवों के धनवान् ही डकैतियों के शिकार बनते हैं और धन के साथ-साथ बहुत बार प्राण भी दे बैठते हैं! फिर भी सर्वत्र धन की ही अखंड उपासना हो रही है! यह देखकर ज्ञानी पुरुषो के आश्चर्य का पार नही रहता!

हां, तो उन दोनो मित्रों मे एक-एक लाख रुपया कमा लिये। तब उन्होंने सोचा-अब घर लौट चलें और वही व्यापार करेंगे। यह सोचकर उन्होने अपनी पूंजी से जवाहरात खरीद लिये और उन्हे डिबियां में बन्द करके घर की ओर रवाना हुए। दोनो एक ऊंट पर सवार होकर चल रहे थे। चलते-चलते सुनसान जगल मे पहुंचे। वहां दो मे से एक की नीयत बिगड़ गई। उसने सोचा—अगर इसे मार डालूं तो जरासी देर मे मेरे पास दो लाख को सम्पत्ति हो जायगी। गांव मे मैं ही सबसे बड़ा मालदार कहलाऊंगा। इस प्रकार लोभ और कपट मन में आया तो उसने मित्र से कहा—मुझे प्यास लगी है। थोड़ी देर यहा ठहर कर पानी पी लें। मित्र ने कहा—भीषण सुनसान जगल है। यहां ठहरना योग्य नहीं है। जरा और आगे चलकर पानी पीना ठीक होगा। लेकिन वह नही माना। आखिर ऊंट को बिठलाया। दोनों उतर कर पानी पीने लगे। पानी पीकर कपटी ने कहा—ऊंट पर बैठें ? मेरी तबियत खराब हो गई है। मैं थक गया हूं थोड़ी देर विश्राम करके आगे चलूंगा। दूसरे ने फिर मना किया,

परन्तु उसके दिल में कपट जाग गया था। वह मानता कैसे ? मना करते-करते वह लेट गया, और नींद आ जाने का ढोंग करने लगा। उसका साथी उसके पास बैठा था। ठंडी हवा आने के कारण उसे भी नींद आ गई और वह सचमुच ही घोर निद्रा में मग्न हो गया। तब उस कपटी ने अपना छुरा निकाला और अपने मित्र की छाती पर सवार होकर कहा—'भगवान् का नाम ले' सरल हृदय मित्र ने कहा—अरे भाई ! तू यह क्या कर रहा है ?

विगडती है जिस वक्त जालिम की नीयत।
नहीं काम आती दलील और हुज्जत ॥

वह समझ गया कि अब मेरे प्राणों की रक्षा नहीं होगी। तब उसने कहा—अच्छा, घर पहुंच कर मेरी पत्नी से 'बारू घोला' इतने शब्द तो कह देना। कपटी ने यह बात मंजूर कर ली और अपने मित्र की छाती में छुरा भौंक दिया। उसके प्राण निकल गये। फिर उस कपटी ने उसकी छाती पर पत्थर बांधकर उसे कुए में पटक दिया। इसके बाद वह ऊँट पर सवार होकर रवाना हुआ और अपने घर पहुँचा। लोगों से मिला और बोला—दो लाख कमाकर लौटा हूं !

कपटी के मित्र की पत्नी को उसके आने का समाचार मिला तो वह अपने छोटे छोटे बच्चों को साथ लेकर उसके घर पहुँची। अपने पति का समाचार पूछा। तब कपटी ने कहा—हाय ! क्या बताऊँ ! मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मेरी सेवा शुश्रूषा कुछ भी काम नहीं आई। उनको एक बार जुकाम

हो गया था। जुकाम मे नहा लिया और मना करते करते सीता-फल खा लिया और ऊपर से जामफल खा लिया। इस अपथ्य सेवन से डबल निमोनिया हो गया और बहुत प्रयत्न करने पर भी उनके प्राणो की रक्षा नही हो सकी। मैने दवा-दारु मे पांच सौ खर्च किये, सब व्यर्थ गये।

वह स्त्री समझदार थी। उसे अपने पति के मित्र की बातों में बनावट की गन्ध आई। मन में संदेह उत्पन्न हुआ, मगर उस संदेह को प्रकट न करती हुई वह बोली—क्या अन्तिम समय मे कुछ संदेश भी कह गये हैं? तब कपटो ने उत्तर दिया—जान पडता है, अन्तिम समय उनकी बुद्धि ठिकाने नही रही थी। मेरे पूछने पर उन्होने कहा-मेरी पत्नी से 'बारू घोला' कह देना। इसका क्या मतलब है, मैं नही समझ सका!

स्त्री वहां से रवाना होकर सीधी रनवास मे रानी साहब के पास पहुंची। वहां पहुंच कर वह अपने आंसू न रोक सकी। फूट-फूट कर रोने लगी। रानी बडी दयालु थी। उसने देखा-यह कोई दुःख लेकर आई है। बेचारी दुखिया है। इसके रोने का कारण पूछना चाहिए।

दीन-दुखिया को देखकर दया से द्रवित हो जाना ही बडो के बडप्पन की निशानी है रानी चाहती तो अपनी दासियो को आज्ञा देकर उसे रनवास से बाहर निकलवा सकती थी। कह सकती थी कि इतनी बडी दुनिया पडी है रोने के लिए! रनवास मे आकर क्यो अपशकुन करती है! चल, हट, भाग यहां से! परन्तु ऐसा व्यवहार करने से क्या रानी का बडप्पन

रहता ? नहीं । छोटों की सेवा करने में, सहायता करने में और उनके दुःखों को दूर करने में ही बड़ों का बड़प्पन है ।

यह सोचकर रानी ने उससे पूछा—बहिन ! तुम्हें क्या दुःख है ? अपने रोने का कारण बतलाओ । उसे दूर करने का मैं प्रयत्न करूंगी । रोने मात्र से तो दुःख दूर नहीं हो सकता ।

स्त्री बोली—माताजी ! मैं धन-माल वगैरह कुछ भी नहीं चाहती । मैं "वारू घोला" इन शब्दों का अर्थ जानना चाहती हूं । यह कह कर उसने पिछला सारा वृत्तान्त कह सुनाया । जिस कागज के टुकड़े पर "वारू घोला" शब्द लिखे थे, वह कागज भी उसने रानी के हाथ में दे दिया ।

रानी ने उसे सान्त्वना देकर कहा—मैं राजाजी से कह कर अर्थ निकलवाऊंगी । तुम चिन्ता मत करो ।

भोजन के समय राजाजी रनवास में पहुँचे । भोजन करते समय गुलाबबाई दुनियां भर की बातें अपने पति को सुनाया करती हैं । रानी से भी पास में बैठ कर कहा-आपके नगर में बड़े-बड़े पण्डित रहते हैं और हजारों की जागीरें खाते हैं । क्या वे चार अक्षरों का अर्थ बतला सकेंगे ?

राजा ने कहा चार क्या दस अक्षरों का अर्थ भी बतला सकते हैं । अगर उन्हें चार अक्षरों का अर्थ भी न आया तो मैं पानी में नहीं पिलवा दूंगा !

तब रानी ने कागज का वह पुर्जा निकाला और कहा—यह हैं वह चार अक्षर ! इनका अर्थ करवाइये ।

दूसरे दिन राजा सभा में बैठा। उसने नगर के सभी पण्डितों को बुलाया। कागज का पुर्जा दिखला कर 'बारू भोला' का अर्थ पूछा। साथ ही कह दिया – यदि ठीक-ठीक अर्थ न बतलाओगे तो सबको घानी में पिलवा दूंगा।

पण्डित लोग पुर्जा देखकर सोच-विचार में पड गए। सोचने लगे—हमने व्याकरण पढ़ा है, साहित्य पढा है, वेद और शास्त्र सभी कुछ पढा है, मगर 'बारू भोला' क्या बलाय है? यह तो किसी भी शास्त्र में नही आया है? सब पण्डितों के मुख फीके पड गए। कोई हनुमानजी का स्मरण करने लगे, कोई चामुण्डा की माला जपने लगे और कोई-कोई भगवान् के नाम की रट लगाने लगे। राजा ने तीन दिन की मोहलत दी थी, बाहर पुलिस का पहरा बिठला दिया था। खाने-पीने आदि की व्यवस्था भीतर ही कर दी गई थी।

दूसरा दिन हुआ। राजा ने आकर पूछा कहिए भीम-शंकरजी, कहिए रामदेवजी, फरमाइए घनश्यामजी! क्या उन अक्षरो का अर्थ निकल आया? सब ने कहा—पुण्यात्मा! हमें तो नही आया।

दूसरा दिन बीत गया। सभी पण्डित उदास, चिन्ताग्रस्त बैठे हैं। खाने-पीने की सुध नहीं है। मौत सामने नजर आ रही है।

एक बीस वर्ष का नौजवान ब्राह्मण संयोग से बाहर रह गया था। वह उस समय सो रहा था। जब उसकी नींद खुली तो डर का मारा वह सीधा जंगल की ओर भाग गया। वहां

शेर दहाड़ रहे थे। वह सोचने लगा वहां से बचकर भागा तो यहा मौत के मुँह मे आ गया ! रात्रि का समय था। वह एक वड़ के पेड़ के ऊपर चढ गया। रात्रि के साढे ग्यारह बजे का समय था। उसने देखा—एक आदमी उसी पेड से निकला और दूसरा आदमी सामने वाले पेड में से निकला। वे दोनो आपस में वातचीत करने लगे। नवयुवक ब्राह्मण उन्हें देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ। चारभुजाजी और बालाजी का नाम जपने लगा। सोचने लगा-कैसी मुसीबत में आ पडा हूं। यहा तो भूतों का अड्डा है। फिर भी वह चुपचाप बैठा रहा।

उन दोनों मे वार्त्तालाप शुरू हुआ। एक ने कहा - कोई नवीन बात सुनाओ। तब दूसरे ने कहा—और तो कुछ नहीं, एक बात नई जरूर है। कल राजा नगर के ब्राह्मणो को घानी में पिलवाएगा। अपन को अपना भक्ष्य लगे। तब पहले के पूछने पर दूसरे ने सारा किस्सा सुनाया उसने यह भी कहा—उन चार अक्षरो का अर्थ मैं जानता हूँ पर किसी ब्राह्मण के दिमाग मे वह अर्थ नही आएगा। उनका अर्थ यह है—

वावना देवमित्राणां, रूपसेन वनंतरम्।
घोरनिद्रावशीभूत, लक्षद्रव्य निपातक. ॥

यह तो भूतो की भाषा ठहरी ! व्याकरण के हमारे नियम इस भाषा पर शायद लागू नहीं होते। अतएव व्याकरण की दृष्टि से इस श्लोक का अर्थ निकालने की कोशिश मत कीजिए। अगर आप इसका इसका आशय पूरी तरह न समझ सकें तो एक भूत ने दूसरे भूत को जो आशय समझाया था, वह सुनकर समझ लीजिए।

'वा' से वालचन्द्र और 'रू' से रूपसेन दो मित्र कमाई करने गये। लौटते समय बालचन्द्र ने रूपसेन को, जब कि वह 'घो' से घोर नींद में सोया था, हमला करके एक 'ल' से लाख रुपये के लोभ मे पड़ कर मार डाला।

इतनी बात करके दोनो भूत चले गये। वृक्ष पर चढ़े हुए उस नवयुवक ब्राह्मण ने यह बातचीत सुनली और "वारू घाला" का मतलब समझ लिया। जब सुबह होने में थोडी देर रह गई तब वह वहाँ से रवाना हुआ और सीधा उसी जगह पहुँचा जहाँ अन्य ब्राह्मण बद थे। वह बाहर ही बैठ गया। एक सिपाही ने उससे पूछा—तुम बाहर कैसे रह गये ? तब उसने कहा—मुझे नीद आ गई थी, इस कारण मैं समय पर नहीं आ सका। सिपाही ने उसे भी पकडकर अन्दर घुसेड़ दिया और कहा-इसकी मौत इसे जबर्दस्ती घसीट लाई है !

नवयुवक ने भीतर जाकर व्याकुलता से परिपूर्ण वातावरण देखा। सबके चेहरे उतरे हुए और घबराये हुए थे। कोई भैरोजी को याद करके कह रहा था—भैरों बाबा ! हमने जिंदगी भर तुम्हारी सेवा-पूजा की है तो क्या इस आड़े वक्त पर भी काम न आओगे ? कोई किसी दूसरे देवी देवताओ का स्मरण कर रहा था। नवयुवक ब्राह्मण अन्दर जाकर चादर तान कर सो गया।

सवेरा हुआ और राजा आया। उसने पूछा—पण्डितों ! क्या आपने अर्थ निकाल लिया ? सबने कहा—पुण्यात्मा ! अर्थ तो नहीं बैठ रहा है। वह नवयुवक उस समय भी सो रहा

था। सिपाही ने उसे जगाया तो उसने सिपाही को झिड़क कर कहा—चुप रहो, मुझे सोने दो। सिपाही ने राजा से जाकर यह बात कही। राजा समझ गया कि उसके पास कोई करामात होनी चाहिए, अन्यथा ऐसे अवसर पर नींद क्यों आती ? आखिर राजा ने स्वयं उसके पास आकर चार अक्षरों का अर्थ पूछा। नवयुवक बोला—राजन् ! हम एक-एक शब्द के हजारों अर्थ करते हैं। मगर यह सब ब्राह्मण तीन दिन से भूखे हैं। अतएव पहले हम सब स्नान, पूजापाठ आदि करेंगे फिर दाल बाटी चूरमा का भोग लगाएंगे और इसके बाद उन अक्षरों का अर्थ बताएंगे।

राजा—अच्छी बात है। यहीं सब कामों से निबटो और आपके लिए भोजन तैयार होता है।

दूसरे ब्राह्मण कहने लगे—उल्लू के पट्ठे को न तो ज्योतिष शास्त्र आता है, न कोई विद्या आती है। फिर भी यों अकड़-पकड़ कर बातें कर रहा है !

नवयुवक ब्राह्मण बोला—वृथा चिन्ता करने से क्या लाभ होगा ? मरना तो है ही, फिर भूखे-प्यासे क्यों मरते हो ! मरते-मरते लड्डू तो उड़ा लो। अपनी तो नीति है—

> परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे ! मा शरीरे दयां कुरु।
> परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुन. पुनः ॥

अरे मूर्ख ! पराया अन्न मिल जाय तो शरीर पर दया नहीं करनी चाहिए—खूब ठूंस-ठूंस कर खा लेना चाहिए।

संसार में शरीर तो बार–बार मिलते ही रहते हैं, पर पराया अन्न मिलना कठिन है !

भोजन तैयार हो गया। ब्राह्मण जीमने बैठे। मगर कई ब्राह्मणों को इतनी गहरी चिन्ता थी कि भोजन स्वादिष्ट होने पर भी उनके गले नहीं उतर रहा था। सचमुच चिन्ता बहुत बुरी बलाय है ! मौत से आदमी जब मरता है तब मरता है, मगर चिन्ता से मरने से पहले ही मर जाता है। "चिन्ता दहति सजीवक" चिन्ता जिन्दे आदमी को ही जला कर भस्म कर देती है। यद्यपि चिन्ता करने से कुछ भी लाभ नहीं होता, बल्कि हानि ही होती है फिर भी लोग संकट आने पर चिन्ता ग्रस्त हो जाते हैं और चिन्ता ग्रस्त हो जाने के कारण उस संकट का प्रतीकार करने की शक्ति को भी गवा बैठते है।

नवयुवक ब्राह्मण ने कहा–भाइयो ! चिन्ता क्यों करते हो ? अगर संकट आने वाला ही है तो चिन्ता करने से दूर नहीं हो जायगा। चिन्ता किसी भी रोग की औषधि नहीं है, बल्कि वह तो स्वयं एक भयानक रोग है, जिससे संकट अधिक बढ जाता है। अतएव आप चिन्ता मत करो, मौत आ ही जाय तो वीरता और मस्ती के साथ उसे स्वीकार करो। निश्चिन्त होकर जीमो। जो होगा सो होगा। होनहार मिटेगी नहीं।

भोजन हो चुका। राजा फिर आया। तब नवयुवक ने कहा—महाराज ! वेदव्यास की गादी लगवाइए, पाट बिछवाइए, उस पर बैठकर विधिपूर्वक अर्थ किया जायगा। राजा ने यह सब तैयारी भी करवा ली। नवयुवक ने फिर स्नान किया, तिलक-छापे

लगाये, पीताम्बर पहना और वेदव्यास की गादी पर विराजमान हुआ। फिर उसने कहा—राजन् ! अब आप जो प्रश्न करना चाहें वह कीजिए। राजा ने उन्ही चार अक्षरो का अर्थ पूछा। नवयुवक ब्राह्मण बोला-यह चार अक्षर आपको रानीजी से प्राप्त हुए हैं, अतएव उन्हे भी बुला लीजिए। और रानीजी को एक साहूकार की स्त्री से प्राप्त हुए हैं अत. उसे भी बुला लेना चाहिए। उस स्त्री को भी उसके पति के मित्र से प्राप्त हुए हैं, अतएव उसको भी सामने रखना चाहिए।

राजा ने ऐसा ही किया। रानीजी आई, वह स्त्री आई और वह मित्र भी आ गया। सब यथास्थान बैठ गये।

भाइयो ! इस उदाहरण से यों तो कई उपदेश मिल सकते हैं, पर एक बात जो मुख्य रूप से मालूम होती है, यह है कि पाप छिपाये नहीं छिपता। तुम लाख चेष्टाएँ करो कि तुम्हारा पाप किसी पर प्रकट न हो, मगर वह प्रकट हुए बिना नही रह सकता आसपास का वायुमंडल ही तुम्हारे पाप की कथा को चारों ओर फैला देता है। अतएव इस भूल में मत रहो कि तुम एकान्त में पाप का आचरण करोगे तो तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी।

इसके बाद ब्राह्मण ने गंभीर स्वर से कहना आरम्भ कर कहा—आप लोग ध्यान से श्रवण कीजिए। मैं अपनी विद्या के बल से आपके सामने एक गुप्त रहस्य प्रकट करता हूं। वह इस प्रकार है—बालचन्द्र और रूपसेन दोनों मित्र परदेश में कमाने के लिए गए। दोनो ने दो लाख रुपया कमाया। लौटते समय, घोर जंगल में, सोते समय, एक ने दूसरे मित्र को, छुरा

भौंक कर मार डाला। यही इन चार अक्षरों का अर्थ है। मैंने जो अर्थ किया है, उसमें संशय करने का कोई अवकाश नहीं है। मेरे अर्थ का साक्षी यह लालची, मित्रघातक मेरे पास ही बैठा है! अगर यह इस अर्थ को गलत बतलाएगा तो मैं दूसरे प्रमाण भी उपस्थित कर सकता हूं और अपनी बात को अक्षर-अक्षर सत्य साबित कर सकता हूं महाराज! इस पातकी से पूछिये— यह क्या कहता है?

भाइयो! पापी की आत्मा दुर्बल होती है। पाप ऐसा कीडा है कि वह मनुष्य के अन्तस्तल को कुतर-कुतर कर निर्बल और निःसत्व बना देता है। सच्चाई के सामने पाप क्षण भर भी नहीं ठहर सकता।

ब्राह्मण की बात सुनते ही उस लालची का हृदय कांपने लगा। उसके चेहरे का रूप बदल गया, हवाइयां उडने लगीं। मुंह पर स्याही पुत गई। वह अपने घोर पाप को अस्वीकार नहीं कर सका। उसकी यह हालत देखते ही राजसभा में उपस्थित सब लोग समझ गये कि पण्डितजी की बात सोलह आने सत्य है।

आखिर दीनता दिखलाते हुए उसने राजा से कहा— अन्नदाता! धन के लोभ ने मेरे विवेक को नष्ट कर दिया था, मेरी बुद्धि को मलीन बना दिया था। मैं घोर पापी हूं। हत्यारा हूं। मित्र घातक हूं। मेरा अपराध इतना भयानक है कि मैं उसके लिए क्षमा मांगने की भी हिम्मत नहीं कर सकता। किस मुंह से क्षमा की याचना करूं? मुझ जैसे पापी इस भूतल के भार हैं, संसार के कलंक हैं। मैंने अपने निरपराध और सरल हृदय मित्र

का घात करके जो दुष्कृत्य किया है, उसके कारण मुझे जीवित रहने का भी अधिकार नही रह गया है। हाय! धन ने मुझे ऐसा अन्धा बना दिया कि मैंने अपने मित्र के छोटे-छोटे बालकों पर दया नही की, मित्र की पत्नी को कितनी वेदना होगी, इस बात का भी किंचित् विचार नही किया। अब अन्नदाता जो भी दण्ड मेरे लिए निश्चित करेंगे, वह प्रसन्नता के साथ मुझे स्वीकार होगा।

नवयुवक पण्डित के अलौकिक ज्ञान की प्रशंसा हुई, परन्तु इस लोमहर्षक काण्ड की बात पर सब लोगों का ध्यान जम गया। सभा मे उपस्थित लोग उस लालची मित्र की ओर घृणा और रोष की दृष्टि से देखने लगे। धिक्कार-धिक्कार की ध्वनि से राज सभा गूंज उठी।

भाइयो! आत्मा स्वभाव मे निष्पाप और निर्मल है। यही कारण है कि जब वह किसी घोर पाप की बात सुनती है तो उसे सहन नही होती। यहा तक कि जो व्यक्ति जिस पाप मे लिप्त है, वही जब सुनता है कि किसी दूसरे ने वही पाप किया है तो वह भी उसे धिक्कार देता है। एक व्यभिचारी भी दूसरे व्यभिचारी की निन्दा किये बिना नही रहता। रावण ने सीता का सिर्फ अपहरण किया था, मगर प्रतिवर्ष उसका पुतला जलाया जाता है। उन जलाने वालो मे क्या सभी ब्रह्मचारी होते हैं? सब शीलवान् ही रावण के पुतले को जलाते हैं? ऐसी बात नही है। परस्त्रीगामी लम्पट भी रावण की दुर्दशा करने मे पीछे नही रहते। इसका कारण यही है कि पापी की आत्मा भी पाप से घृणा करती है। आत्मा का असली स्वभाव उसे पाप के प्रति घृणा कराना सिखाता है।

तो उधर लोग घृणा और धिक्कार की वर्षा कर रहे थे, उधर राजा अपने कर्त्तव्य का विचार कर रहा था। राजा ने सोचा इस आदमी का अपराध बहुत गम्भीर है और शूली दे देना ही उसका उचित दण्ड है। मगर यह आदमी अपने अपराध को स्वीकार कर रहा है और अपने कुकृत्य के लिये पश्चात्ताप भी कर रहा है। दण्ड देने का प्रयोजन अपराधी को सुधारना है। अगर अपराधी का अन्त:करण बदल गया हो और भविष्य में वह अपराध की पुनरावृत्ति नही करेगा, ऐसा विश्वास होता हो, तो फिर दण्ड का प्रयोजन पूरा हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्राण दण्ड देने पर अपराधी को सुधरने का अवसर नही मिलता। यद्यपि प्रजा में आतंक रखने के लिए, न्यायनीति को कायम रखने के लिए कभी-कभी राजा को प्राणदण्ड भी देना पड़ता है, क्योंकि प्राणदण्ड सब दण्डो में भयंकर है और उस दण्ड के भय से लोग दूसरो के प्राण लेने से हिचकते हैं तथापि जहां तक सम्भव हो, इस दण्ड को देने से बचना चाहिए। मगर साधारणतया अपराधी को सुधरने का अवकाश मिलना चाहिए।

मन ही मन इस प्रकार सोचने के बाद राजा का ध्यान उस विधवा की ओर आकृष्ट हुआ। उसने सोचा कुछ भी निर्णय करने से पहले इस दुखिया की सम्मति भी सुन लेनी चाहिए। आखिर उसे भी सन्तोष देना आवश्यक है।

राजा ने विधवा सेठानी से पूछा-कहो बहिन! तुम क्या चाहती हो? अक्षरों का अर्थ तो तुमने समझ ही लिया है।

सेठानी का हृदय मार्मिक पीड़ा से व्याकुल हो रहा था। कोई साधारण और अज्ञान औरत होती तो कहती कि इसकी

बोटी-बोटी काट डाली जाय! पर उसने ज्ञान पाया था! अतएव बोली-अन्नदाता! अपराध के बदले दंड देने का कर्त्तव्य आपका है। मैं उसमें दखल देने वाली कौन हूं? फिर भी आपने पूछा है तो अपने मन की बात कहती हूं स्त्री के लिए वैधव्य का दुःख सबसे बड़ा दुःख है, वैधव्य के दुःख के सामने संसार के समस्त सुख व्यर्थ हो जाते हैं। स्त्री होने के नाते और अब विधवा होने के नाते मैं इस घोर दुःख को समझ सकती हूं। अगर इस पापी को प्राणदण्ड दिया जायगा तो भी मेरे पति अब जीवित नहीं हो सकेंगे। उससे मुझे कुछ भी लाभ नहीं हो सकेगा। अलबत्ता, इसकी पत्नी भी जो सर्वथा निर्दोष है, मेरी ही तरह दुःखिया हो जायगी। इसके बाल-बच्चे मेरे बालबच्चों के समान अनाथ और निराधार हो जाएंगे। अतएव उनके दुःखों का विचार करके मैं यही चाहती हूं कि इसे क्षमा कर दिया जाय!

कितनी उदारता! कैसे उच्च विचार! सारी राज सभा धन्य-धन्य की ध्वनि से गूंज उठी! राजा ने भी उसकी विवेक-शीलता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की आखिर उसका धन उसे दिलवा दिया गया और अपराधी को चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

राजा ने उस पण्डित का बड़ा सम्मान किया। वास्तव में वह सम्मान उस व्यक्ति का नहीं, उसकी विद्या का था। उसे दोनों पैरों में पहनने को सोना मिला और वेदव्यास की पदवी मिली। हाथी पर आरूढ़ करके उसे घर तक पहुंचाया गया। राजा स्वयं उस पर चंवर ढोरता हुआ घर तक पहुंचाने गया।

उसके इस असामान्य सम्मान को देखकर दूसरे पण्डित नाना प्रकार की बातें करने लगे। जिसका हृदय क्षुद्र था और ईर्षा से युक्त था, उन्होंने कहा—आज तो बस यही लोकोक्ति चरितार्थ हो रही है—

भणिया मांगे भीख ! अणभणिया घोड़े चढ़े।
साची याहीज सीख, भणो मतीरे प्राणिया ॥

हमने काशी में बारह वर्ष तक भाड़ झोंका और कुछ भी परिणाम न आया ! इसे देखो कोरा लट्ठ है, मगर राजकीय सम्मान पा रहा है !

किसी ने कहा - पोथियां कण्ठस्थ करने से ही ज्ञान नहीं आता। असली अनुभव ज्ञान के लिए सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण की आवश्यकता है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ एक-एक आदर्श पुस्तक है। देखो, इस नवयुवक ने पोथियां नहीं पढ़ी, फिर भी सब ब्राह्मणों के प्राणों की रक्षा कर ली ! हम सबको इसका कृतज्ञ होना चाहिए।

लोभ कितना अनर्थकारी है ? लोभ के चंगुल में पड़ कर मनुष्य किस प्रकार देव से दानव बन जाता है ? कितना पतित हो जाता है ? यह जानने के लिए यह कथा कही गई है। वास्तव में लोभ के समान अनर्थकारी दुर्गुण और कोई नहीं है। लोभ मनुष्य की नीयत बिगाड़ देता है। इसके वशीभूत हुए प्राणी की बुद्धि और भावना एकदम पलट जाती है।

भविष्यदत्त-चरितः—

देखो, उस समय धनसार सेठ की नीयत बिगड़ गई। नीयत बिगड़ जाने पर उसने अपनी पत्नी से कह दिया—तुम अपनी मायके चली जाओ। मायके (पीहर) चले जाने में ही तुम्हारा और मेरा भला है।

कुलवती स्त्री के लिए यह शब्द कितने कठोर और हृदय-विदारक हो सकते हैं, इस बात को वही स्त्री अनुभव कर सकती है, जिसके सिर पर बीती हो ! स्त्री जब विवाहित होकर ससुराल आ जाती है तो उसका घर-द्वार और परिवार सभी कुछ बदल जाता है। ससुराल उसका घर बन जाता है और पिता का घर उसका घर नही रह जाता। वह पीहर जाती है तो मेहमान के रूप मे जाती है। अगर ससुराल से निकाली हुई जाय तो अपमान के मारे वह मृतक सी हो जाती है। ससुराल से इस प्रकार निकाला जाना और बिना बुलाये पीहर जाना स्त्री के लिए घोर कलंक की बात समझी जाती है। सेठानी का नाम कमलश्री था। कमलश्री बड़ी ही चतुर और बुद्धिमती स्त्री थी। वह पतिव्रता और विवेक-शील थी। पति के मर्मवेधी वचन सुनकर उसकी पीड़ा का पार नहीं रहा। वह बोली—नाथ ! मुझसे अगर कोई गलती या भूल हो गई हो तो क्षमा कीजिए। मैंने अपने जन्म के परिवार को त्याग कर आपका ही शरण लिया है ! अब आपके सिवाय मेरा कौन है जिसके पास में जाऊँ ?

धनसार—बस, मैं कह चुका हूँ। तुम मेरा घर छोड़कर पीहर चली जाओ।

कमलश्री—प्राणाधार ! संसार में स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है। मैं आपकी दासी हूं। आपने विवाह के समय मेरा हाथ पकड़ा है। हाथ पकडने का अर्थ यही तो है कि आप मेरे जीवन का उत्तरदायित्व अपने हाथ मे लेते हैं। आपने मेरा परित्याग न करने की प्रतिज्ञा की है। आज उस प्रतिज्ञा को भूलकर क्यों मुझ निरपराधिनी को निर्वासित करते हैं ? आप नीति को और धर्म को भलीभाति समझते हैं। नीतिज्ञ के सामने ही नीति की बात कही जाती है। उसे नीति की बात पसंद भी आनी चाहिए और स्वीकार भी कर लेनी चाहिए।

जब पुरुष का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम टूट जाता है तो वह दुश्मन नजर आने लगती है। धनसार को आज कमलश्री दुश्मन ही नजर आती थी। उसके हृदय मे कमलश्री के प्रति रंच मात्र भी स्नेह नहीं रह गया था। अतएव धनसार ने झुंझला कर कहा—तुम पहले कमलश्री थी, अब मुझे कंटकश्री जान पड़ती हो।

हालांकि धनसार नगर सेठ था और विचारवान् और कर्त्तव्य को समझने वाला था। फिर भी न मालूम पूर्वभव के किस कर्म का उदय आया कि वह विवेक को भूल गया। वह अपनी पत्नी पर बड़े से बड़ा अत्याचार करने पर उतारू हो गया। परन्तु पत्नी और सब कुछ चुपचाप सहन कर सकती थी, मगर विना किसी अपराध के घर से निकाला जाना उसके लिए असह्य था। अतएव उसने फिर विनय के साथ कहा—नाथ ! मेरी प्रार्थना पर भी ध्यान दीजिए। आप मेरे प्रति किस कारण इतना कठोरतापूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं

आती। आखिर कोई कारण तो होना चाहिए? अगर कोई कारण हो तो कृपा कर मुझे बतलाइए और कारण न हो तो आप अपने व्यवहार पर फिर विचार कीजिए। आप दूसरो का न्याय करते हैं तो क्या मुझे आपसे न्याय मांगने का अधिकार नहीं है?

धनसार-मेरी बुद्धि इस समय कोई काम नहीं कर रही है। जो कह दिया है वह पत्थर की लकीर है कमलश्री! अब वाद-विवाद करना वृथा है। तुम्हे घर छोड़ ही देना चाहिए।

कमलश्री-नाथ! आप प्रमाद कर रहे हैं। अगर आप इस समय मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देंगे तो फिर आपको ही अपने व्यवहार का पश्चात्ताप करना पडेगा। सत्य सदैव दबा नही रहता। वह उभरता है, एक न एक दिन अवश्य उभरता है। कोई भी मेघ सदा के लिए सूर्य को नहीं छिपा सकता। घना से घना कोहरा भी आखिर फटता है और सूर्य अपने असली रूप में चमकने लगता है। सत्य भी ऐसा ही है। वह कभी न कभी प्रकाश मे आये बिना नही रहता। प्राणनाथ! एक समय आएगा जब मेरा सत्य सूर्य के समान आपके अन्तस्तल रूपी आकाश मे अपने प्रखर तेज के साथ चमकेगा। उस समय आपके हृदय मे बैठा हुआ भ्रम दूर हो जायगा। तब आपको अपने पिछले व्यवहार के लिए पछताना पड़ेगा।

मगर मैं जानती हूं कि आप जान-बूझकर दुष्ट संकल्प करके मेरे साथ ज्यादती नही कर रहे हैं। यह मेरे ही कर्मों का फल है। इतने दिनो तक आपकी प्रसन्नता मुझ पर रही है आज वह बदल गई है और अप्रसन्नता हो गई है तो क्या वह अप्रस-

मता भी नहीं बदल जायगी ? अगर मेरे पुण्य कर्म का उदय नहीं रहा है तो पापकर्म का उदय भी सदा नही रहेगा। मैं तपस्या करके अपने पापकर्म के उदय को नष्ट कर दूगी अथवा अपना फल देकर वह आप ही चला जायगा।

मैंने रामायण पढी है और महाभारत भी पढा है। एक दिन था कि रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की तैयारिया स्थगित कर दी गई थीं। राज्य के बदले उन्हे वनवास भुगतना पडा था। प्रजा को यह बात पसद नही आई। मगर रामचन्द्रजी ने इस पर तनिक भी विचार नही किया। उन्होने भवन और वन को समान समझा। मगर उसके हृदय मे सचाई थी तो राज्यश्री लौट कर उनके चरणों मे गिरी ! रामचन्द्रजी ने सीता को-निर्दोष पतिव्रता सती को-घर से निकाल दिया। घोर जगल में अकेली छोडकर लक्ष्मन रोते-रोते लौट गये। मगर सीता मे सचाई थी तो आखिर प्रकट होकर ही रही। धू-धू जलती हुई आग जल का शीतल कुण्ड बन गई। उस समय रामचन्द्र के नेत्रों से अश्रु निकल पड़े। बोले जानकी ! तुम सत्यशीला हो, पतिव्रता हो। मैंने नाहक तुम्हे सकट मे पटका। इसके लिए मुझे क्षमा कर दो। मगर पतिपरा-यण सीता के हृदय मे राम के प्रति तनिक भी रोष अथवा द्वेष नही था। सीता ने सहज स्नेह से कहा-क्षमायाचना करने की आवश्यकता नही है नाथ ! यह सब आपकी ही कृपा का फल है। आप मेरा परित्याग न करते और कसौटी न करते तो जगत् में मेरे सत्य की प्रतिष्ठा किस प्रकार होती ? मेरी अग्निपरीक्षा से मेरे जीवन का सत्य चमक उठा है, मेरे यश का सौरभ देश और काल की सीमाओ को लाँघ कर सर्वव्यापी और युग-युग तक

जीवित रहने वाला बन गया है। यह सब आपका ही तो प्रताप है !

प्राणनाथ ! मैंने सती अंजना का चरित भी पढा है। अंजना की सास केतुमती ने उसे दुराचारिणी समझकर घर से निकाल दिया था। मगर जब उसकी सचाई प्रकट हुई तो उसी केतुमती ने अंजना से क्षमा माँगी और कहा—तू पतिव्रता है। इसी प्रकार अभी आप मुझे घर से निर्वासित कर रहे हैं। मगर एक दिन आयगा जब आपको पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मैं नहीं चाहती कि आपको भविष्य मे संताप और पश्चात्ताप झेलना पड़े। इसीलिए मैं विनय करती हू कि आप हृदय मे कोई बात छिपा न रक्खे। मैं आपकी सहचरी हूं, आधा अग हूं। मुझसे कोई बात अप्रकट न रखिए। प्रमाद या अज्ञान के कारण कोई दोष हो गया हो तो दिल खोलकर उसे कह दीजिए। मुझे अपने अपराध के प्रतीकार का या स्वीकार का अवसर तो दीजिए !

धनसार ने कहा—मैं तुम्हारे चित्त को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहता था, लेकिन तुम नही मानती तो कारण सुन लो। यहाँ धनमित्र नामक जो बड़े सेठ हैं, उनकी कन्या से विवाह करना चाहता हू। वह कन्या अत्यन्त रूपवती और सुन्दरता की साक्षात् प्रतिमा है। अतएव अब तुम्हारे साथ मैं कोई सम्बन्ध नही रखना चाहता। तुम्हें पीहर चला जाना चाहिए।

कमलश्री – नाथ ! स्त्री को इस प्रकार सताना योग्य नहीं है। आपका विचार आपके अनुरूप नहीं है। दूसरा विवाह करना ही है तो मैं उसमे आड़ी नही आऊँगी। घर के एक कोने मे मैं भी पड़ी रहूंगी। आप मुझे घर से निकालते क्यो हैं ?

भाइयों ! संसार बडा विषम है। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर कितने और कैसे-कैसे घोर अनर्थ कर बैठता है, कहा नहीं जा सकता। दुनिया के लम्बे इतिहास पर नजर फेरी जाय तो विदित होता है कि पुरुष का स्त्री जाति के प्रति अकसर हृदयहीन व्यवहार होता रहा है। एक ओर नारी जाति की कोमलता, सहृदयता आदि सद्गुणो की प्रशंसा की गई है तो दूसरी ओर यह भी देखा जाता है कि उसके इन्ही गुणों का पुरुष वर्ग ने अनुचित लाभ उठाया है।

कमलश्री ने बहुतेरा चाहा कि उसे घर से निकाला न जाय, मगर विषयांध बने हुए धनसार ने किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने निश्चिन्त, निर्द्वन्द होकर भोग भोगने की लालसा से प्रेरित होकर कमलश्री जैसी सुशीला महिला का घर मे रहना भी स्वीकार नही किया ! सच है, जब मनुष्य विषयान्ध हो जाता है तो उसे अनीति नीति का विवेक नही रहता ! वह भलाई-बुराई को सोच ही नहीं सकता ! इसी कारण योगीजन विषयो को विष के समान समझ कर त्याग देते हैं। विषयलोलुपता ने न जाने कितने मनुष्यो को पतन के गहरे गर्त मे गिराया है।

धनसार सेठ जब किसी प्रकार कमलश्री को घर में रखने के लिए तैयार न हुआ तो आखिर वह रोती-कलपती अपने पीहर चली गई। उसने वहाँ पहुँच कर ससुराल का सारा वृत्तान्त कहा तो माता-पिता ने उसे छाती से लगाया। कहा—बेटी तू चिन्ता मत कर। यह भी तेरा ही घर है। हम जानते हैं कि तू परम सुशीला है, निर्दोष है। फिर भी कोई पूर्वोपार्जित पापकर्म उदय

में आ गया है। इसी कारण तुझे यह कष्ट सहन करना पड रहा है। मगर जो कर्म उदय मे आवे उसे समभाव से सहन कर लेना ही उचित है। अशुभ कर्म के उदय आने पर हाय-हाय करना, रोना-विसूरना व्यर्थ है। ऐसा करने से उसके फल से छुटकारा तो मिलना नही है, आगे के लिए और अधिक पाप-कर्म बंध जाते हैं। अतएव तू शान्ति और धैर्य के साथ कर्म का फल भोग। इस घर को पराया मत समझना।

कमलश्री स्वयं विवेकवती थी। उसने अपनी जीवनचर्या बदल डाली। उसका अधिकाश समय धर्म-कर्म में ही व्यतीत होने लगा। वह उपवास करती, आयंबिल करती, शास्त्रों का स्वाध्याय करती और णमोकार मत्र का जाप करती। उसके पिता ने दान देने की भी छुट्टी दे दी थी, बल्कि प्रेरणा की थी कि गरीबों को तू अपने हाथ से दान दिया कर। उनके भूखे पेट में अन्न जायगा तो वे हृदय से तुझे आशीर्वाद देंगे। कमलश्री एकाग्र भाव से धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगी। उसे न किसी पर रोष था, न तोष था। उदासीन-विरक्त भाव से वह अपना समय व्यतीत करती थी।

जब कमलश्री अपने पीहर के लिए रवाना हुई, उस समय उसका लड़का पढने चला गया था। शाम के समय जब वह पढ कर आया तो उसे माता कही दिखाई नहीं दी। उसने दासियो से पूछताछ की तो पता चला कि माता ननिहाल चली गई है। लडका अपने पढने लिखने की सामग्री लेकर उसी समय अपनी माँ के पास जा पहुँचा। उसने कहा—माता! चिन्ता न करना। दिन पलटते रहते हैं और दिल भी पलटते रहते हैं। एक दिन

आएगा कि तुम आनन्द मनाओगी और तुम्हारी छत्र-छाया में मैं भी आनन्द मनाऊँगा। कहा है:—

मैं जानूं कुछ मुझ पर बीती,
आन पड़ी तब सब पै बीती।
जल की मछली जल में रहती,
जाल पड़ी तब उस पर बीती॥

संसार परिवर्त्तनशील है। जहां आज कष्ट है, वहीं कल आनन्द ही आनन्द होगा।

जोधपुर }
६-१०-४८ }

पुण्य--पाप को चौकड़ी

स्तुति :

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक – ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं ?

हे प्रभो ! आप तीन लोक में अद्वितीय सुन्दर हैं। आपका शरीर जिन रागहीन सुन्दर परमाणुओं से बना है, जान पड़ता

है वे परमाणु सारे संसार में उतने ही थे। वैसे परमाणु और होते तो किसी दूसरे का शरीर भी आपके शरीर के समान सुन्दर बना होता। मगर आप जैसा शारीरिक सौन्दर्य अन्यत्र कहीं भी दृष्टि-गोचर नहीं होता। इस कारण यही अनुमान होता है कि जगत् के सुन्दरतम परमाणु जितने थे वे सब आपके शरीर में लग गये हैं! यही कारण है कि आपके समान रूप संसार में किसी दूसरे का नहीं है।

पूर्व काल में भगवान ऋषभदेवजी चक्रवर्ती राजा थे। उन्होंने संसार के सर्वश्रेष्ठ वैभव का परित्याग करके आर्हती दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा लेकर श्रेष्ठ करनी की और तीर्थङ्कर गोत्र उपार्जन करने के वीस बोलो का सेवन किया। उन्होने जो भी क्रिया की, किसी प्रकार की कामना से प्रेरित होकर नही की, शुद्ध आत्म-कल्याण करने की भावना से ही की। उनकी अभिलाषा यह नही थी कि मैं तीर्थङ्कर बनूँ, फिर भी क्रिया का फल तो प्राप्त होता ही है। कामना हो या न हो, क्रिया का फल मिले बिना नही रहता। बल्कि कामनारहित होकर अगर धर्म-क्रिया की जाती है तो उसका फल और भी उत्तम मिलता है। फल की कामना क्रिया को दूषित बना देती है। प्रभु ऋषभदेव ने आत्म-कल्याण की भावना रखकर सर्व श्रेष्ठ क्रिया की तो उन्हें सर्वश्रेष्ठ फल की प्राप्ति भी हुई। वे इस काल के आदि तीर्थङ्कर हुए। उन्हें ऐसा शारीरिक सौन्दर्य प्राप्त हुआ कि उसकी तुलना होना ही सम्भव नही है!

जिन वीस बोलों का सेवन करने से तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध होता है, उनका अधिकार ज्ञातासूत्र में है और निर्ग्रन्थ प्रवचन में

भी है। इन बीस बोलों का सेवन करना मानव-जीवन का सर्वोत्तम आदर्श है। किन्तु जो लोग इनका सेवन नहीं कर सकते उन्हें कम से कम उनका मनन तो करना ही चाहिए। उन्हें भली भांति समझना, उनके स्वरूप का चिंतन-मनन करना और जितना शक्य हो आचरण में लाना परम कल्याणकारी है। उनका मनन करने से भी पापों का नाश होता है, उत्कृष्ट पुण्य की प्राप्ति होती है। और कर्मों की निर्जरा भी होती है। इन बीस बोलों का मनन करने में कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता। बीस बोलों में समस्त धर्म का सार समा जाता है। बीस बोल क्या हैं मानो गागर में सागर भरा है। यह श्रेष्ठ बोल परम आदरणीय हैं। जो भव्य जीव सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाना चाहते हैं, उन्हें अवश्य इनका चिन्तन, मनन और सेवन करना चाहिए।

ज्ञानी और अज्ञानी जीवों में एक बड़ा अन्तर यह भी होता है कि ज्ञानी जन क्रिया तो करते हैं, मगर उसके फल की लालसा नहीं करते, जब कि अज्ञानी क्रिया करने मे कायरता दिखलाते हैं परन्तु फल अवश्य चाहते हैं। किन्तु विचार करो कि क्रिया किये विना फल की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? वृक्ष लगाये बिना फल कैसे मिल सकता है? आसमान से फल नहीं टपक सकते। पेड़ लगाया गया है, सींचा गया है, पाल-पोस कर बड़ा किया गया है तभी तो उससे फल मिलते हैं? इसी प्रकार जब धर्म क्रिया की जायगी तो उसका फल मिल सकेगा। चाहोगे तब भी और न चाहोगे तब भी उसका फल मिलेगा ही!

अगर ऊँचे दर्जे का पुण्य करोगे तो शरीर भी ऊँचे दर्जे का मिलेगा, नहीं तो चाहने मात्र से क्या मिलने वाला है? जिन्होंने

पुण्य नहीं कमाया है उन्हें कोचरिया और बदशक्ल शरीर मिलता है। जैसे पैसे खर्च करोगे वैसा ही कपड़ा या दूसरी वस्तु पाओगे। शरीर भी पुण्य का फल है। किसी-किसी का शरीर इतना सुन्दर होता है कि लोग देखने के लिए खड़े रहते हैं। यह उनके पुण्य का ही फल है। आचार्य बनाते समय भी शरीरसम्पदा, का विचार किया जाता है। बदसूरत को, काने को या जिसके शरीर में कोई और ऐसा अवगुण हो, आचार्य पदवी नहीं दी जाती। भगवान् ने उसे आचार्य बनाने की मनाई की है। आचार्य की आठ सम्पदाएँ हैं—आचारसम्पदा, शरीरसम्पदा, वचनसम्पदा, सूत्र-सम्पदा, मतिसम्पदा, उपयोगसम्पदा, वाचनासम्पदा, और संग्रह-सम्पदा,। इन आठ सम्पदाओ से जो सुशोभित हो, वही आचार्य-पदवी के योग्य है। जिसका आचार उत्कृष्ट नहीं होगा, आदर्श नहीं होगा, वह दूसरो को किस प्रकार उत्कृष्टाचारी बना सकेगा? इसी प्रकार जिसकी शरीरसम्पदा, श्रेष्ठ न होगी, वह प्रभावशाली कैसे हो सकेगा? शरीर का व्यक्तित्व पर गहरा असर पड़ता है। जिसका शरीर सुन्दर, प्रभावशाली और तेजस्वी होगा, उसका दूसरो पर अच्छा असर पड़ेगा। यही बात अन्य सम्पदाओ के विषय में भी है। आचार्य का शरीर अच्छा हो तो सारा सम्प्रदाय शोभायमान हो जाता है। देखो पूज्य उदयसागरजी म., पूज्य श्रीलालजी म और पूज्य मुन्नालालजी महाराज कैसे सुन्दर दिखलाई देते थे।

भाइयों! आप भी तीर्थङ्कर गोत्र के बीस बोलों का यथा-शक्ति सेवन करो। जो समय चला गया वह तो चला गया, किन्तु जो बाकी है उसका सदुपयोग करो। णमोकार मन्त्र का जाप किया

करो, अरिहंत भगवान्, सिद्ध भगवान्, आचार्य, उपाध्याय और साधु–इन पंच परमेष्टियों का गुणगान किया करो। शुद्ध और सात्विक मन से गुण ग्राम करने का फल भी साधारण नही है, इससे भी केवल ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। कदाचित् किसी को पुनर्जन्म लेना पड़ा तो ऐसी उत्तम सामग्री की प्राप्ति होगी कि दुनियां देखती रह जायगी। अब तक जो पुण्य और पाप बांध लिये हैं उन्हें तो भोगना ही पड़ेगा! फिर भी उनमें कुछ परिवर्त्तन अपने पुरुषार्थ द्वारा किया जा सकता है। मगर भविष्य तो पूरी तरह तुम्हारे ही हाथ मे है। पुण्य या पाप, जो कुछ भी बांधना चाहोगे, वही बांध सकोगे। अतएव जल्दी सावधान हो जाओ और उस महायात्रा की, जिसे किये बिना छुटकारा नही है तैयारी कर लो। देखो आदिदेव भगवान् ऋषभदेवजी ने पहले तैयारी की थी तो उन्हें कितना दिव्य रूप प्राप्त हुआ? फिर भी वे रुके नही। आगे बढ़ते गये। अन्तिम भव में फिर उन्होंने तपस्या की और केवलज्ञान पाया। भगवान् की आराधना का सार यही है कि उनके द्वारा प्रदर्शित पथ पर गमन किया जाय। भाइयो! जिन भगवान् ने कर्मों का अन्त किया और मुक्ति पाई, उन प्रभु ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयों! परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध आदि सभी तत्त्वो से निराला, शुद्ध चेतन स्वरूप है। उसके स्व-स्वरूप मे किसी भी परद्रव्य का, किसी भी प्रकार का, सम्बन्ध या लगाव नहीं है। अतएव वह सभी प्रकार के संयोगज दुःखो से तथा सुखों से अतीत है। लेकिन वह अनादि-

काल से अशुद्ध परिणति में वर्त रहा है। पर द्रव्य के संयोग के कारण उसका स्वरूप अशुद्ध हो रहा है। इसी कारण पुण्य और पाप से भी वह प्रभावित होता है। उसे पुण्य और पाप का फल भोगना पड़ता है। अगर आत्मा के पारमार्थिक स्वरूप का विचार किया जाय तो वह सांसारिक सुख-दुःख से सर्वथा अतीत ही प्रतीत होगा। पर संयोग से रहित आग को यदि कोई कूटना चाहे तो नहीं कूट सकता, मगर वही आग जब लोहे के पिण्ड में प्रविष्ट होती है, अर्थात् लोहे के गोले को गर्म करके आग से लाल-लाल कर दिया जाता है और इस प्रकार जब आग गोला रूप परपदार्थ का संयोग पाती है, तो वह भी लोहे के साथ कूटी जाती है। इसी प्रकार लाठी शरीर में मारी जाती है। शरीर के भीतर आत्मा घुसा हुआ है, इसी कारण आत्मा को भी लाठी का प्रहार सहन करना पड़ता है। अगर आत्मा शरीर से अलग होता तो क्या लाठी और क्या दूसरा शस्त्र, उसे स्पर्श ही नहीं कर सकता था। आत्मा इतना सूक्ष्म है कि जगत् का कोई भी हथियार उसका स्पर्श तक नहीं कर सकता। यह बात जैन धर्म ही नहीं, सभी आत्मा को मानने वाले धर्म एक स्वर से स्वीकार करते हैं। गीता में भी कहा है:—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

—भगवद्गीता, अ. २ श्लो. २३-२४

आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, पानी गला नही सकता, हवा सूखा नही सकती। आत्मा काटा नही जा सकता, जलाया नहीं जा सकता, गलाया नहीं जा सकता, सुखाया नही जा सकता। यह नित्य है, (ज्ञान गुण की अपेक्षा) सर्वव्यापी है, सदैव अपने स्वरूप मे स्थिर रहता है, कभी अपने स्वरूप से चलायमान नही होता यह सनातन अर्थात् नित्य है।

शुद्ध आत्मद्रव्य का विचार किया जाय तो ऐसा उसका स्वरूप है। वस्तुत. आत्मा पुण्य, पाप आदि से पर अरूपी, अस्पर्श, अगंध, अरस है। मगर जैसा कि अभी कहा जा चुका है, यह शुद्धात्मा का स्वरूप है। संसारी आत्मा अपने शुद्ध रूप मे नहीं आ पाया है, वह पुद्गल के संसर्ग से रूपी बना हुआ है। इसी कारण पुद्गल उस पर अपना प्रभाव डालता है। पूर्वबद्ध पौद्गलिक कर्म परमाणुओ के निमित्त से उसमें नाना प्रकार के विभाव अर्थात् राग-द्वेष आदि विकारी भाव उत्पन्न होते हैं और इन भावो के निमित्त से कार्मण–परमाणुओ का आत्मा के साथ संसर्ग होता रहता है। इस विषय की विस्तृत चर्चा पिछले एक व्याख्यान में की जा चुकी है। अतएव उसे फिर न दोहराते हुए यहा पुण्य के सम्बन्ध में ही कुछ कहना है।

भाइयो ! निर्जरा के साथ अगर पुण्य का बन्ध होता है तो वह मोक्ष का साधक होता है और यदि पाप के साथ पुण्य का बन्ध होता है तो वह मोक्ष में बाधक हो जाता है। पुण्य और पाप के उदय से ही सुख और दुःख होता है।

यहाँ एक बात साफ कर देने की आवश्यकता है। कोई यह न समझ लें कि जैसे पाप के उदय से दुःख होता है और पाप का सर्वथा विनाश होने पर दुःख का भी सर्वथा विनाश हो जाता है, उसी प्रकार पुण्य के उदय से सुख होता है और पुण्य का विनाश होने पर सुख का भी विनाश हो जाता है। जहाँ तक विषयजन्य सांसारिक सुख का प्रश्न है, यह बात ठीक ही है। सांसारिक सुख पुण्य के उदय से ही प्राप्त होता है और इसीलिए पुण्य का नाश होने पर उस सुख का भी नाश हो जाना भी स्वाभाविक है, मगर सुख दुःख की भाँति केवल कर्मजन्य भाव अर्थात् विभाव ही नहीं है, किन्तु वह आत्मा का स्वभाव भी है। आत्मा स्वभाव से अनन्त सुख-सम्पन्न है। इसी कारण मुक्त दशा में भी अनन्त सुख का सद्भाव रहता है।

कुछ लोगों ने इस प्रकार के भ्रम में पड़कर मुक्तात्माओं को दुःख से रहित और सुख से भी रहित माना है। यह मान्यता आत्मा के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण ही प्रचलित हुई है। अतएव जब मैं कहता हूं कि पुण्य के उदय से सुख की प्राप्ति होती है तो इसका अर्थ सिर्फ इतना ही समझना चाहिए कि पुण्य के उदय से विषयजन्य सांसारिक सुख की उत्पत्ति होती है। आत्मा का स्वभावभूत अनन्त सुख तो तभी प्राप्त होता है, जबकि आत्मा सब प्रकार की उपाधियों से मुक्त हो जाता है।

हाँ, तो आत्मा अगर उच्च श्रेणी के पुण्य को उपार्जन कर लेता है तो वह जहाँ कहीं भी उत्पन्न होता है, सुखमय स्थिति में ही उत्पन्न होता है।

पुण्य दो प्रकार का है—पुण्यानुबन्धी पुण्य और पापानुबन्धी पुण्य। जिस पुण्य के उदय से पुनः पुण्य की प्राप्ति होती है, जो पुण्य विरासत मे पुण्य देकर जाता है, वह पुण्यानुबन्धी पुण्य कहलाता है। उदाहरणार्थ पुण्य के उदय से साधु महात्मा का योग मिला, उन्हे साता उपजाई, उनका सत्कार-सन्मान किया, गुणग्राम किया। तो उस पुण्य ने विरासत में और अधिक पुण्य का उपार्जन किया। क्योंकि चारों तीर्थ की सेवा करता हुआ और गुणग्राम करता हुआ मनुष्य कर्म की कोटि खपाता है और उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लेता है। ऐसे मनुष्य को फिर किस वस्तु की कमी रह जाती है। इस प्रकार पुण्यानुबन्धी पुण्य ही वास्तव में शुभ फलदायक होता है।

इसी प्रकार पुण्य के उदय से किसी को सम्पत्ति की प्राप्ति हुई। उसने उस सम्पत्ति को दान देने में, दीन-दुखियों के दुख को दूर करने मे ज्ञान के प्रचार में, सत्साहित्य के प्रचार में, जिनशासन की प्रभावना मे, साधर्मी भाई की सहायता में, औषधालय आदि साता उपजाने वाली किसी संस्था के निर्माण में या ऐसे ही किसी अन्य पुण्यजनक कार्य मे व्यय किया, तो समझना चाहिए कि उसका पुण्य पुण्यानुबन्धी है।

पुण्य के योग से किसी को श्रुतज्ञान की विशिष्ट योग्यता प्राप्त हुई। अगर उसने शुभ भाव से दूसरों को ज्ञान दिया तो उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य का उदय समझना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि पुण्यानुबन्धी पुण्य के योग से जो साधन-सामग्री प्राप्त होती है, वह पुण्यजनक कार्यों मे ही व्यय होती है।

पापानुबन्धी पुण्य इससे विपरीत होता है। यह विरासत मे पाप देकर जाता है। पापानुबन्धी पुण्य के योग से मिली हुई सामग्री पापबन्ध का कारण होती है। जैसे-साधु-महात्मा का योग मिलने पर उनकी अविनय-आसातना करना, धन की प्राप्ति होने पर उसे जुआ, व्यभिचार आदि दुष्कृत्यों मे खर्च करना, शारीरिक शक्ति से दूसरों को सताना, ज्ञान प्राप्त होने पर घमण्ड में आ जाना और अपना महत्त्व दिखलाने के लिए दूसरो को नीचा दिखलाना आदि आदि। इष्ट वस्तु की प्राप्ति होना पुण्य का फल है, मगर पापोपार्जन में उसका उपयोग हुआ, अतएव यह पुण्य पाप नुबन्धी कहलाया। पापानुबन्धी पुण्य को ज्ञानीजन परिणाम की दृष्टि से पाप ही कहते हैं। वह आत्मा के लिए सर्वथा अहितकारी एवं दुखकारी है।

पुण्य के इन दो प्रकारो को समझाने का मेरा एक विशेष उद्देश्य है। जीवन के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अक्सर देखा जाता है कि लोग धन, बल, विद्या, वैभव आदि को पाकर मतवाले हो जाते हैं और पुण्योदय से प्राप्त इन वस्तुओं का ऐसा दुरुपयोग करते हैं जिससे पुण्य के बदले पाप का बन्ध होता है। ऐसे लोग अत्यन्त अविवेकी हैं। वे अमृत को विष बना डालते हैं! विवेकवान् पुरुषों को इस विषय में सदा सावधान रहना चाहिए। पाप और पुण्य के उद्गमन के स्थान पास-पास ही हैं परन्तु उनके फल में बहुत बडा अन्तर है। अतएव अपने अध्यवसायों के काटे पर पूरी निगाह रखनी चाहिए, पुण्योदय से प्राप्त वस्तु का ऐसा उपयोग नही करना चाहिए, जिससे वह पाप का कारण बन जाय! अमृत को विष बनाकर पीना मूर्खता के सिवाय और क्या है ?

भाइयों ! पुण्य के योग से अनेकविध सुख सामग्री प्राप्त होती है। धन, कुटुम्बपरिवार, खेत, कुआ, गाय, भैंस, हाथी, घोड़ा और महल-हवेली आदि के साथ खाने-पीने की उत्तम वस्तुएं भी पुण्यात्मा जीव पाते हैं। इसी वास्ते देवकी ने यशोदा से कहा था कि-मेरे कन्हैया को बाकड़ी भैंस का दूध पिलाना। और दूध पीने के कारण ही कन्हैया कहते थेः—

रण माहीं रोलवूं, अरा सम तोलवूं।
तो जाणूं दूध, काचो पीधो॥

कृष्ण कहते थे-कोई दुश्मन सामने आ जाय और फिर रण में उसकी खबर नहीं ली तो ताजा दूध ही क्या पिया ?

तात्पर्य यह है कि पुण्यात्मा जीव को सभी वांछित पदार्थों की प्राप्ति होती है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा हैः—

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ॥
मित्तवं नायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।
अप्पायंके महापन्ने, अभिजाए जसोबले॥

यहाँ बतलाया गया है कि पुण्यशाली जीव को खेत, मकान, सोना-चांदी, गाय, भैंस आदि पशु, दास-दासी, पुरुषार्थ आदि की प्राप्ति होती है। वह ऐसी जगह जन्म लेता है जहाँ इनकी प्रचुरता हो। यह कहने का अभिप्राय यह है कि उसे इन सब सुखदायी चीजों के लिए पसीना नहीं बहाना पड़ता, मेहनत

नहीं करनी पड़ती। उसे अनायास ही, जन्म लेते ही, यह सब चीजें मिल जाती हैं। पुण्यात्मा जीव मित्रवान् होता हैं, कुटुम्ब-परिवार वाला होता है, प्रशस्त और प्रतिष्ठित कुल मे जन्म लेता है, सुन्दर वर्ण वाला होता है, शारीरिक रोगो से रहित होता है, बुद्धिमान होता है, प्रतिष्ठित होता है, यशस्वी होता है और शक्ति-शाली भी होता है।

इस प्रकार पुण्यवान जीव को सब सामग्री तैयार मिलती है। वह इस सब सुखद सामग्री को पाकर परोपकार में ही उसका व्यय करता है। धर्म का आचरण करता है। भोगोंपभोगों में मस्त हो जाय तो अपने पुण्य को पापानुबन्धी पुण्य बना ले, मगर धर्म प्रेमी जीव ऐसा नहीं करता। वह पुण्योदय से प्राप्त सामग्री को पुण्यकार्यों मे लगाता है और यथा समय वीतराग के धर्म को समझ कर, स्वीकार करके आत्मा का शाश्वत कल्याण कर लेता है।

पुण्यशाली जीव को पत्नी भी आज्ञाकारिणी हुक्म में चलने वाली मिलती है। पुण्य पल्ले न बधा हो तो ऐसी पत्नी मिलती है कि रात-दिन अशान्ति और व्याकुलता बनी रहती है। एक आदमी ने विवाह किया और गुलाबबाई पधारी। कैसी थी। कवि ने ठीक ही कहा है:—

करे बोबचा करती, झरती, मेले थाली मांहि उछलती।
कदी कंथ ने यूं समझावे, चकचक करती सामे आवे॥
रे रे नपुटा ठाला भूला, डीया काढ़ गुरावे डूला।
क्यों परण्यो जो ऐसो डरे छे, त्रिया बिना कांई नाक झरे छे॥

वह स्त्री कच्ची-पक्की रोटियां बनाती है और दूर से ही फेंकती है। जब पुरुष कहता है—अरी, यह क्या करती है ? तो वह उत्तर देती है - दीखता नहीं क्या कर रही हूं ! वह आंखें तरेरती हुई कहती है-ऐसा ही था तो शादी क्यों की ? शादी किये बिना क्या नाक कटती थी ?

भाइयो ! यह पाप की खेती है। जो पूर्व में पाप-कर्म बांध कर आया है उसका यही हाल होता है। इसके विपरीत, पुण्य बांध कर आने वाले का हाल होता है:—

महल मनोहर नाटक बत्तीस, छत्तीस राग सुजान सुनावे।
ऐसो ऋद्धि को छांडि चले वे वैराग सों अपने नेह लगावे ॥

कहो भाई ! रहने के लिए सुन्दर और मनोहर महल मौजूद है, जिनमे छहों ऋतुओ के अनुकूल सभी सुविधाएं हैं, उसी महल मे बत्तीस प्रकार के नाटक देखने की व्यवस्था है। यह नहीं कि सिनेमा देखने के लिए बाहर जाना पड़े और भीड़भाड़ तथा धक्कामुक्की का सामना करना पड़े। पसीने की बदबू आवे और उसे दूर करने के लिए इत्र सूंघना पड़े ! प्रकृष्ट पुण्यात्मा के लिए तो उसी महल में सारी सुव्यवस्था होती है। वहीं छत्तीस रागनियां गाई जाती है और वहीं मृदंगो के माथे फूटते हैं अर्थात् वाद्य बजते हैं। वे कभी बाहर निकलते हैं तो हाथी या घोड़े पर सवार होकर निकलते है। उन्हें स्त्रियां (पत्नियां) अपने हाथो से स्नान कराती हैं। बैठने को सिंहासन मिलता है और ऊपर से छत्र-चंवर ढोरे जाते हैं।

भाइयों ! यह सब पुण्य का परिणाम है। पुण्ययोग से ही ऐसी जोगवाई मिलती है यह पुण्यानुबन्धी पुण्य जीव को नरक-गति या तिर्यंचगति मे नही जाने देता ! वह ऐसी दुर्बुद्धि ही नहीं उत्पन्न होने देता, जिससे मनुष्य पाप का उपार्जन करे और नरक-तिर्यंचगति मे जावे ! अहा ! यह कैसा पुण्य है जो पहले तो सभी प्रकार के सांसारिक सुखो को प्रदान करता है और फिर ऐसी सुन्दर भावना उत्पन्न कर दे कि मनुष्य तिनके की तरह सब वस्तुओ और भोगोपभोगो की कामना को त्याग कर धर्म की आराधना मे लग जाता है। शास्त्र कहता है:--

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्विं विसुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ।।

उत्त. अ. ३. १९.

अर्थात् वह पुण्यानुबन्धी पुण्यवान जीव अनुपम मनुष्य सम्बन्धी भोगो को भोगकर, धर्म का आचरण करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है

उज्जैन मे सुन्दरबाई नामक एक राजपूत महिला है। वह बडा धर्मशीला है। मुँहपत्ती बांधकर सामायिक किया करती है। शहर मे और फ्रीगंज में उसके कई मकान हैं, जिनका किराया उपजता है। उसके पति स्टेशन मास्टर थे। उसका द्रव्य धर्म के कामों में खूब खर्च होता है। फ्रीगज मे धर्म ध्यान करने के लिए और साधुओं को ठहरने के लिए कोई मकान नही था। एक दिन मैंने उसे सहज ही उपदेश दिया कि मकान, जमीन किसी के साथ गये नही हैं और जाने वाले भी नहीं हैं। अगर मौके पर अपना कोई मकान धर्म ध्यान के लिए दे दो तो कितना उपकार हो !

मेरा इतना कहना था कि वह बहिन बोली—मैं अपना एक मकान, जिसका अभी २७) रुपया मासिक किराया आ रहा है, धर्म ध्यान के लिए देती हूं उसकी टूट-फूट और मरम्मत के लिए २५००) रुपये भी देती हूं !

कहो भाई ! क्या यह मामूली बात है ? मांगीबाई और गुलाबबाई ! आप तो अच्छी ही हो पर, देखो उस बाई पर धर्म का कैसा सुन्दर रंग चढ़ा ! वह धर्म के प्रत्येक काम में अपने धन का उपयोग करती है ।

कहने का आशय यह है कि पुण्यानुबन्धी पुण्य का उदय होने पर धन आदि अच्छे ही काम में लगता है । जिसने ऐसे पुण्य का उपार्जन किया है उसका पैसा वेश्या, कलाल आदि के पास नही जाएगा, डाक्टरो और वकीलों के पास भी नहीं जायगा वह तन से मन से और धन से—सभी प्रकार से सुखी होगा। वह धर्म की खूब आराधना करेगा ! चक्रवर्त्ती महाराज भरत ने और नौ ही बलदेवों ने कैसी पुण्यवानी बांधी थी कि उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं भोगना पड़ा। आज भी जो ऐसा पुण्य कमाकर आए हैं, मौज कर रहे हैं और उनका पैसा भी अच्छे कामो में लग रहा है । वे आयुष्य पूर्ण होने पर स्वर्ग में जाएंगे या केवलज्ञान पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेंगे ।

जो जीव पुण्य के साथ में पाप भी बांधता है, अर्थात् परोपकार तो करता है किन्तु बाद में पश्चात्ताप करता है, रो-रो कर दान देता है, वह पापयुक्त पुण्य का संचय करता है जैसे—

एक बार राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ महल के झरोखे मे बैठे थे। वहां से नगर के और जंगल के अनेक दृश्य दिखलाई देते थे। उसी समय वर्षा होने लगी। उस समय रानी चेलना ने देखा—एक आदमी अपने सिर पर लकड़ियों का बोझा लादे, मूसलधार वर्षा मे भीगता हुआ चला आ रहा है। उसे देखकर रानी का कोमल हृदय दया से द्रवित हो गया। उसने श्रेणिक को लक्ष्य करके कहा—नाथ! उस ओर देखिए। आपके राज्य में भी ऐसे-ऐसे दुखिया रहते हैं? आप पुण्य लेकर आए हैं, आप अग और मगध देशो के नरनाथ हैं—राजा हैं, आपके पास बडी भारी फौज है, आपका भण्डार अक्षय है, फिर भी आपके राज्य मे ऐसे दुखीजन रहते हैं? ऐसे समय मे लकड़ी वही लाएगा जो मुसीबत का मारा और अत्यन्त दरिद्र होगा।

राजा ने कहा—हां, बेचारा बडा दुखी मालूम होता है।

चेलना बोली—तो फिर उसे सुखी बनाना चाहिए।

महाराज श्रेणिक ने उसे बुलवाया। आम के वृक्ष के पास कोई जाता है तो पहले तो शीतल छाया प्रदान करके वह शांति प्रदान करता है, और फिर मधुर फल भी देता है। राजा श्रेणिक क्या आम से भी गये-बीते होते? नही। उन्होने उसी समय आदमी को भेजा और उस लकडहारे को अपने पास बुलवाया। आने पर उससे कहा—भाई! तुझे क्या तकलीफ है? तुझे जो मांगना हो सो मांग लो।

गरीब—महाराज! आपकी बड़ी कृपा है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल एक बैल दे दीजिए।

रानी—कोई बड़ी मांग तो नहीं है।

राजा ने उसी समय नौकर को आदेश दिया—इस गरीब को बैलशाला में ले जाओ और वहां मौजूद बैलो मे से, जिसे यह पसन्द करे, दे दो। नौकर उसे बैलशाला मे ले गया। सब बैल दिखलाये। पर उस गरीब ने कहा—मुझे इनमें से तो एक भी बैल पसन्द नहीं आया !

आखिर नौकर उसे वापिस राजा के पास लौटा लाया। उसने कहा—अन्नदाता ! इसे तो एक भी बैल पसन्द नही है ! राजा ने जब उससे पूछा तो वह बोला—हुजूर ! दो बैल एक सरीखे हो तो जोड़ी बने। मगर आपकी बैलशाला में मेरे बैल के समान एक भी बैल नही है !

राजा—तुम्हारा बैल कैसा है ? उसे यहां ले आओ तो जोड़ी मिलाई जाय !

गरीब—हुजूर, कठिनाई यही है कि वह यहां नहीं आ सकता !

रानी चेलना के हृदय में गरीब की बात सुनकर बड़ा कुतूहल हुआ। वह सोचने लगी आखिर इसका बैल कैसा होगा कि जिसके समान हमारे यहां एक भी बैल नही है और जो यहां तक आ भी नही सकता ! देखना तो चाहिए ! यह सोचकर रानी बोली—नाथ ! हम लोग धनवानो के अतिथि तो सदैव बनते रहते हैं, आज गरीब के घर ही क्यों न चला जाय ?

जानते हो भाई ! लुगाई घर में ड्राइवर के समान होती है। वह आदमी को जिस ओर चाहे, ले जा सकती है। रानी चेलना बड़ी धर्मात्मा थी। उसने स्वयं धर्म पर निश्चल रहकर श्रेणिक को भी धर्मात्मा बना दिया था। आज भी अगर कोई स्त्री चाहे तो मधुरता, विनय और प्रेम से अपने बिगड़े पति को सुधार सकती है। कई बार तो ऐसा देखा जाता है कि आदमी अपने माता-पिता को गुरुजनों की और दोस्तो की बात नहीं सुनता, मगर स्त्री के कहने पर वही बात मान लेता है। ऐसे अवसर पर स्त्री यदि नीतिनिष्ठ और धर्मशील हो तो वह पति का बड़ा उपकार कर सकती है।

राजा श्रेणिक, रानी चेलना के साथ उस गरीब के घर चले। अभयकुमार को भी साथ में ले लिया था। वहां पहुंचे तो पहले खण्डहर दिखाई दिये। राजा ने कहा —यह क्या बात है ? तब अभयकुमार बोले—अन्नदाता ! गरीबो के घर तो ऐसे ही होते हैं। इस प्रकार बातचीत करते हुए वे भीतर घुसे तो पक्की हवेली आई और देखा कि वहाँ पच्चीसो आदमी काम कर रहे हैं ! ज्यों ही उन्होंने सेठ को आते देखा, सब खड़े हो गये। उनमे कोई मुनीम था, कोई रोकड़िया था, कोई हवलदार था। सब ने उसका अभिनन्दन करते हुए कहा - पधारिये सेठ साहब !

राजा, रानी और अभयकुमार सभी चकित थे। उनकी समझ मे नही आ रहा था कि वर्षा मे लकडियो का भारा ढोने वाला यह दरिद्र इतना बड़ा सेठ है ! इसके तो ठाठ ही निराले हैं !

आखिर वह दरिद्र प्रतीत होने वाला सेठ राज परिवार को अपने तलघर में ले गया। वहां हीरो और पन्नो से बना हुआ

एक अनमोल बैल झिलमिल-झिलमिल कर रहा था। इस बैल को देखकर राजा और रानी की आंखें भी चौंधिया गई। उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। तब उस सेठ ने कहा—पृथ्वीनाथ ! मुझे इस बैल की जोड़ी का दूसरा बैल चाहिए।

राजा ने कहा—भाई, ऐसा बैल तो हमारे खजाने में भी नहीं है !

उस सेठ ने आग्रह करके महाराज श्रेणिक, महारानी चेलना और राजकुमार अभय को भोजन कराया। जब श्रेणिक भोजन करने बैठे तो उन्होंने शिष्टता दिखलाते हुए सेठ से भी भोजन करने के लिए कहा। सेठ के नौकर ने कहा—अभी सेठजी के भोजन का समय नहीं हुआ है। राजा भोजन से निवृत्त होकर रवाना हुए, पर सेठ के भोजन के विषय में जानकारी कर लेने के लिए अभय-कुमार को छोड़ गये। अभयकुमार ने पूछताछ की तो पता चला कि सेठ साहब उड़द के बाकले खाया करते हैं। कदाचित् बादाम की चक्कियाँ खा लें तो पांच पच्चीस दस्त लग जाएं। उड़द के बाकले खाने से ही उनका शरीर ठीक रहता है।

अभयकुमार इस तरह पूछताछ करके चले गये और उन्होंने राजा श्रेणिक को यह बात बतला दी। थोड़े दिनों बाद एक ज्ञानी महात्मा पधारे तो राजा उनके दर्शन करने गये और उस सेठ के विषय में भी पूछना न भूले। मुनिराज ने उत्तर दिया—पूर्व जन्म में वह एक गरीब दुकानदार था। उसे खाने को भी पूरा नहीं मिलता था। गांव में एक दिन हांती बटी तो उसके घर लड्डू आया। वह लड्डू खाने को तैयार ही था कि

उसी समय एक मुनि आहार के लिए आ पहुँचे। उसने वह लड्डू मुनि को दे दिया। थोडा-सा चूरा बचा था, वह उसने खाया तो गले में सोख बंध गई-स्वाद आ गया। तब वह सोचने लगा-मुनि को आधा लड्डू देता तो ठीक रहता। इस प्रकार उसने आहार दान देकर पश्चात्ताप किया। इस कारण वह दान देने से सेठ तो बना, मगर पश्चात्ताप करने से अपने द्रव्य का उपभोग नहीं कर सकता और न अच्छा भोजन ही कर सकता है। यह उसी की करनी का फल है।

भाइयों! दान देकर, त्याग-प्रत्याख्यान करके या अन्य कोई धार्मिक कार्य करके पश्चात्ताप करने से ऐसा फल प्राप्त होता है। यह पुण्य के साथ पाप का बंध कहलाता है। जरा विचार करो कि ऐसा करने वाले लोग कितने अज्ञानी हैं? वे दान तो दे ही देते हैं परन्तु पश्चात्ताप करके उसके उत्कृष्ट फल को नष्ट कर डालते हैं! पश्चात्ताप करने से उनको दी हुई वस्तु वापिस तो मिलती नहीं है. भविष्य में मिलने वाली सामग्री को भी वे व्यर्थ बना लेते हैं। अतएव अगर आप समझदार हैं तो पूरे उत्साह से, पूरे प्रेम से, सद्भाव से, हर्षित चित्त होकर दान करो। वह अतीव भाग्यशाली है जो दान के सुयोग्यपात्र को देखकर दान देने से पहले भी हर्षित होता है, दान देते समय भी हर्षित होता है और दान देने के पश्चात् भी हर्षित होता है। ऐसा दानी सच्चा दानवीर है। वही दान के महान् फल को पाता है।

याद रक्खो कि दान, शील और तप के साथ भावना को जो अन्त में स्थान दिया गया है, वह इसीलिए कि दान आदि का फल अन्त में भावना के अनुसार ही प्राप्त होता है याहशी

भावना यस्य सिद्धिर्भवती तादृशी' जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। सद्भावना के बिना कोई भी क्रिया पूर्ण फलदायक नहीं होती—

यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ।

भाई! पुण्य का बंधना सरल भी है और कठिन भी है। शुभ भावना आ जाय तो सहज ही पुण्य बंध जाता है। मगर यदि पाप का उदय हो तो शुभ भावना उत्पन्न ही नहीं होती। कोई-कोई कह देते हैं-महाराज! कल तो आहार ले गये थे और आज फिर आ गये? अरे भाई! साधुओं को रोटी दे देने से तेरी सम्पदा घट नहीं जायगी! दान देने से घाटा पड़ने वाला नहीं है। इससे तो तेरा उद्धार होने वाला है। तू उनके साधुपन की चिन्ता क्यों करता है? अतएव दान से बचने के लिए बहाना बनाना या क्षुद्र विचार करना कर्मबन्ध का कारण है। अगर पुण्यानुबन्धी पुण्य नहीं बांधोगे तो पाप का बन्ध हो जायगा और उसके उदय से नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ेंगे।

कई लोग कहा करते है—महाराज! हम तो गरीब हैं। पैसे वाले होते तो हम भी दान-पुण्य और परोपकार करते! ऐसे लोग समझते हैं कि बडी रकम देने से बड़ा पुण्य होता है और थोड़ी रकम देने से थोड़ा पुण्य होता है? मगर ऐसा कोई एकान्त नहीं है। गरीब का एक पैसे का दान करोडपति के हजार रुपये के दान से भी उत्तम फल दे सकता है। होनी चाहिए सच्ची उदारता, होनी चाहिए पवित्र त्यागभावना और होना चाहिए सच्चा ममत्वविजय। अतएव जो लोग धनवान् नहीं है, उन्हे निराश

होने का कोई कारण नहीं है। अगर उनके हृदय में दान की भावना जागी है और वे अपनी शक्ति के अनुसार थोडा-सा भी दान देते हैं तो वे धन्य हैं और महान् फल के भागी होगे। धर्म के क्षेत्र मे. बानियों की दुकान की तरह पैसों का हिसाब नही होता। वहा भावना का हिसाब होता है और जो जितनी ऊँची भावना वाला है, वह उतने ही ऊँचे फल का अधिकारी है। अतएव यदि तुम गरीब हो तो गरीब ही सही, मगर अपनी शक्ति के अनुसार दान करो पर ऊँची भावना रक्खो। कदाचित् थोड़ा भी दान नही कर सकते तब भी चिन्ता मत करो। भगवान् महावीर का शासन बहुत उदार है। वह धनवानो के लिए भी है और गरीबों के लिए भी है। वह राजाओ की अपेक्षा भी भिक्षुओं का अधिक है। भगवान् ने सभी को आत्मकल्याण का मार्ग बतलाया है। गरीब अगर अपनी गरीबी को सन्तोष मानकर चलता है और जिस किसी उपाय से धनवान् बनने की लालसा नही रखता तो वह धनवान् से तनिक भी कम भाग्यशाली नही है। ऐसा गरीब अगर एक कौड़ी का भी दान नही कर सकता तो भी वह दान की अनुमोदना तो कर ही सकता है। दानी के दान की सराहना करने मे तो उसे कुछ खर्च नही करना पड़ता। वह दूसरो को दान देने के लिए उत्साहित और प्रेरित भी कर सकता है। वह शील पाल सकता है, तप कर सकता है, भावना भा सकता है। इस प्रकार भगवान् के विशाल शासन मे सब को स्थान है। सभी के लिए कल्याण का राजमार्ग खुला है। अतएव कुछ करो और कुछ नहीं बने तो धर्म की दलाली ही करो। यह रत्नो की दलाली है। निहाल हो जाओगे। तुम्हारी दलाली से किसी का उपकार हो जायगा तो तुम्हारा भण्डार भी भर जायगा। इसमे तुम्हारी

हानि ही क्या है ? तुम्हारी दलाली से दूसरे का उपकार नहीं भी होगा, तब भी तुम्हारा उपकार तो हो ही जायगा। धर्म की दलाली की विशेषता यही है कि अगर सौदा नहीं पटे तो भी दलाल को दलाली मिल ही जाती है।

पापानुबन्धी पुण्य से कोई-कोई करोड़पति हो जाता है, उसे सब बातों का योग मिल जाता है, किन्तु उसकी बुद्धि पापों की ओर ही जाती है। कोई धर्म कार्य का चिट्ठा लेकर जाय तो उसमें आठ आने चढ़ाता है और नाटक, खेल-तमाशे आदि में हजारों पर पानी फेर देता है। उसका पैसा रंडियों, भड़ुवों और ब्रांडी की बोतलों में खर्च होता है। इस प्रकार पुण्य के प्रभाव से मिली हुई सामग्री को वह नवीन पापकर्म के उपार्जन में लगाता है और इस कारण मर कर दुर्गति का पात्र बनता है। या तो नरक का अतिथि होता है या तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होता है। ऐसा आदमी धर्म का नाम लेने पर मुँह बिचकाता है, ललाट पर तीन सल डाल लेता है और लड़की की शादी हो तो हँसते-हँसते दस हजार खर्च कर देता है। वह यह नहीं सोचता कि घर में हर्ष का अवसर है और लौकिक कार्य में पांच हजार खर्च किये हैं तो पचास आसन स्थानक में ही भेंट कर दें ! तुम्हारे लड़का हुआ, घर का रखवाला पैदा हुआ तो सबको दिया किन्तु धर्मोद्योत के कार्य में कितना दिया ? यह बात शायद तुम्हें बुरी लगती होगी, लेकिन यदि तुम बच्चे की खुशी में स्थानक में भी कुछ दो तो समझना कि हमने अपने बच्चे की रक्षा की। कहा है—

धर्म करतां धन वधे, धन वध मन वध जाय।
धर्म घटतां धन घटे, धन घट मन घट जाय॥

भाइयों ! धर्म करने से धन बढता है, घटता नही है। धन तो धर्म क्रिया को घटाने से घटता है। अतएव अगर तुम अपने धन को घटाना नहीं चाहते तो धर्म को मत घटने दो। यह प्रण करलो कि हमारे घर में खुशी होगी तो हम धर्म को भी खुश करेंगे। याद रक्खो, पापी का पैसा पाप में ही लगता है और आखिर वह मर कर नरक मे जाता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती को देखो। वह भोगो में अत्यन्त आसक्त रहा। मुनि के बहुत-बहुत समझाने पर भी नहीं समझा। उसने कह दिया—मैं समझता सब कुछ हूं, परन्तु भोगो का त्याग करने में असमर्थ हूं। नतीजा यह हुआ कि उसे मर कर सातवे नरक मे जाना पडा। साराश यह है कि पापानुबन्धी पुण्य का उदय होने पर सामग्री तो उत्तम मिलती है, परन्तु वह पाप-कार्यों मे ही लगती है।

भाइयों ! जैसे पुण्य दो प्रकार का बतलाया गया है, उसी प्रकार पाप भी दो प्रकार का है-पापानुबन्धी पाप और पुण्यानुबन्धो पाप। पापानुबन्धी पाप के उदय से न तो खाने को अन्न मिलता है, न पहनने को वस्त्र मिलते हैं और न रहने को मकान ही मिलता है। इन भयंकर कठिनाइयो मे सन्तान भी फौज की तरह होती है, और वह भी रुग्ण, बदसूरत और आफत मचा देने वाली ! पापनु-बन्धी पाप का जिसके उदय होता है, वह वर्त्तमान मे भी पाप-कार्यों मे ही लिप्त रहता है। जिसने पूर्व जन्म में खूब मांस खाया हो, अण्डे चूसे हो, दूसरे का कलेजा छेदा हो, देव और गुरु को गालियाँ दी हों, किसी दूसरे को पुण्य करते देख कर द्वेष धारण किया हो, इत्यादि कार्यों से पापनुबन्धी पाप का बन्ध होता है। इस जन्म मे भी वह मछलियां फंसाने के जाल

बनाता है, मछलियां पकड़ता है कसाईखाना चलाता है, चोरी आदि दुष्कर्मों में ही अपने जीवन को व्यतीत करता है। ऐसे पापी जीवों को सिवाय नरक के और कहां स्थान मिल सकता है ?

जिन जीवों ने पूर्वजन्म में पाप का बन्ध किया है, और उसके फलस्वरूप जो दुःख या कष्ट पा रहे हैं, फिर भी जो शान्ति पूर्वक उसे सहन करते हैं, विवेकपूर्वक व्यवहार करते हैं और आगे के लिए पाप का बन्ध नहीं करते, समझना चाहिए कि उनके पुण्यानुबन्धी पाप का उदय है। इस पाप के उदय से ऐसे संयोगों की प्राप्ति होती है, जिससे जीव पाप करने से बच जाता है। यों तो इसकी गणना पाप में की गई है, मगर एक दृष्टि से देखा जाय तो यह पुण्य के ही अन्तर्गत हो जाता है।

यहां तक पुण्य और पाप की चौकड़ी का विवेचन किया गया है। इसी सिलसिले मे एक बात और स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। अगर शुद्ध श्रद्धा अथवा सम्यक्त्व के साथ पुण्य का बन्ध होता है, तो उसका फल बहुत उत्तम मिलता है। ऐसा पुण्य जगत् के उत्तम से उत्तम पदार्थों का संयोग तो कराता ही है, मगर आत्मा के शाश्वत कल्याण का मंगलमय द्वार भी खोल देता है। इस तथ्य को समझने के लिए सुबाहुकुमार, शालिभद्र और धन्नाजी के जीवन चरित की ओर दृष्टि डालनी चाहिए। उन्होंने सम्यक्त्व के साथ पुण्य का बन्ध किया था। परिणाम यह आया कि लक्ष्मी उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़ी रहती थी।

भाइयों ! शास्त्रों मे जीव की पुण्य और पाप रूप परिणतियो का जो वर्णन है, वह स्थूल परिणतियों को लेकर ही है।

जगत् में अनन्तानन्त जीव है और एक-एक जीव को अगणित परिणतियां होती हैं। मन चचल है। वह एक समय मे कुछ सोचता है तो दूसरे समय में और ही कुछ सोचने लगता है। ऐसा स्थिति में जीव मात्र के समस्त परिणामो का वर्णन शास्त्र कर ही नहीं सकता। केवली भगवान् अपने, अलौकिक ज्ञान में सभा कुछ जानते अवश्य हैं, मगर भाषा के द्वारा वे भी उन सब परिणामो को प्रकाशित नहीं कर सकते।

इससे आप समझ सकेंगे कि पुण्य रूप परिणाम भी तरतमता आदि के भेद से नाना प्रकार के हैं और पाप रूप परिणाम भी इसी तरह नाना प्रकार के हैं। कोई जीव पुण्य का बन्ध करता है, किन्तु उसके अन्तस्तल के किसी कोने मे दुर्भावना छिपी होती है, इस कारण पाप का वन्ध भी साथ मे हो जाता है। किसी भी कार्य को करने में कम से कम असख्यात समय लग जाते हैं। जितने समय तक वह कार्य होता है, उतने समय में मन न जानें कितने सकल्प-विकल्प कर बैठता है? अतएव यह स्वाभाविक ही है कि पुण्य कार्य करते-करते भी मन के दोष से पाप का वन्ध हो जाय! जब ऐसा होता है तो उसके फल पर भी असर पडे बिना नहीं रहता। आप देखते हैं कि कई लोग ऐसे हैं जो पहले बहुत धनवान थे, मगर बाद मे कगाल हो गये। यह ऐसे ही पाप मिश्रित पुण्य का फल है।

एक मालदार आदमी बहुत गरीब होकर जङ्गल में चला गया। वहां उसे एक महात्मा मिल गये। महात्मा ने पूछा—क्या करता है?

गरीब—लकड़ी की भारी तकदीर मे है।

महात्मा—अच्छा, यह प्रतिज्ञा कर ले कि चन्दन की लकड़ी के सिवाय और कोई लकड़ी नहीं काटूंगा।

गरीब—चन्दन की लकडी न मिली तो ?

महात्मा-न मिले तो मत काटना। अगर विधाता ने तकदीर में लकड़ी काटने का ही लेख दिया है तो उसे चन्दन की लकड़ी भी देनी होगी।

गरीब ने महात्मा की बात मान ली। उसे बावन चन्दन मिलने लगा। उसे लकड़ी बेचने पर जो धन मिलता था, उसका आधा हिस्सा वह दान में लगा देता था। एक बार विधाता, महात्मा से मिला। विधाता बोला—क्यों मुझे दुःख देते हो ? महात्मा ने उत्तर दिया—तुम क्यों उस गरीब को दुःख देते हो ? अब उस आदमी का पाप थोडा ही रह गया है। वह भी समाप्त हो जायगा तो वह अपने बाप से भी आगे बढ़ जायगा।

भाइयो ! दान में अपूर्व और अद्भुत शक्ति है। दान के प्रभाव से विधाता का लेख भी झूठा हो जाता है।

इसलिए मैं बार-बार दोहराता हूं कि धर्म करो, पुण्य करो, दान करो। इसी मे तुम्हारा हित है, सुख है, कल्याण है। भाइयो ! इस अपूर्व अवसर को पाकर ऐसा पुण्योपार्जन करो जिससे तीर्थङ्कर या बलदेव आदि बन सको। पुण्य ही परभव मे आपका सहायक होगा। उसके अभाव मे जीवो की जो दुर्गति होती है, उसे कौन नहीं जानता ? लोक में कहावत है—"अग्गम बुद्धि वाणिया !" अर्थात् वणिक् आगे होने वाली बात को पहले

ही समझ लेता है। आप में यहां अधिकांश वणिक् ही उपस्थित हैं। फिर आप आगे की क्यों नहीं सोचते ? वर्तमान के सुख में ही मत भूले रहो। कुछ भविष्य का भी खयाल करो, जिससे आगे पाला पड़ना है।

यह मत समझो कि आज तुम्हारे पुण्य का उदय है सो शाश्वत बना रहेगा। इसी कारण मैं बतला चुका हूं कि पुण्य सदा कायम नहीं रहता। पुण्योदय के बाद पाप का उदय आते देर नहीं लगती। इसलिए जब तक पुण्य का उदय हो, तब तक सुकृत कर लो।

भविष्यदत्त चरित:—

देखो, सेठानी कमलश्री एक दिन धनसार सेठ की आंखों की पुतली थी, मगर धनसार की आंखें बदल गई। पहले वह उसका सम्मान करता था, अब तिरस्कार करके घर से निकाल दिया। गनीमत समझो कि कमलश्री ने पाप के साथ पुण्य का भी आचरण किया होगा, इसी कारण उसे अपने पीहर में स्थान मिला, स्नेह मिला, धर्माचरण करने की भावना मिली, तपस्या करने की सद्बुद्धि प्राप्त हुई। मगर उसने पुण्य का आचरण न किया होता तो घर से निकाल देने पर पीहर वाले भी उसका तिरस्कार कर देते। उस अवस्था में कमलश्री की क्या स्थिति होती।

भाइयो! यह सब उदाहरण इसी अभिप्राय से सुनाये जाते हैं कि आप पुण्य और पाप के खेल को सुगम रूप से समझ

सकें। आपके कुतूहल के लिए या मनोरजन के लिए यह उदाहरण नहीं है। इन उदाहरणों को आप अपने जीवन पर घटाओ और होश मे आओ। इसी तरीके से आपकी भलाई होगी। प्रमाद या गफलत में रहोगे तो मुसीबते झेलनी पड़ेंगी। इसलिए मैं तुम्हें सावधान करता हूं।

देख लो कमलश्री सेठानी अब पीहर में बैठी है। उसका लडका भी स्थिति की गभीरता को समझ गया है। वह समय २ पर माता को तसल्ली बँधाया करता है और नियमित रूप से पढने जाया करता है। भोजन कभी पिता के घर और कभी नाना के के घर खा लेता है।

उधर सेठ धनसार ने धनमित्र की कन्या के साथ विवाह कर लिया है। नयी सेठानी के साथ वह आनन्दपूर्वक रहता है। उसे अपनी पूर्वपत्नी के परित्याग के लिए कोई पश्चात्ताप नही है। इस प्रकार रहते-रहते नयी सेठानी से भी उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। बारहवे दिन उस लडके का नाम वन्धुदत्त रक्खा गया। धीरे-धीरे वह भी बडा हुआ और पढने जाने लगा। कहते हैं— नयी लाडो और उसका लड़का बहुत लाड़ला होता है। धनसार अपने इस पुत्र वन्धुदत्त को बहुत लाड-प्यार करता था।

लाड़-प्यार होना बुरा नही है, यदि वह एक सीमा मे हो मगर जब वह सीमा का उल्लंघन कर जाता है, तो अनिष्ट परिणाम भी उत्पन्न करता है। संभवतः इसीलिए नीतिकार कहते हैं-

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च, ताडयेन्न तु लालयेत् ॥

सदैव पुचकारते रहने से अनेक प्रकार की हानियाँ होती है, जबकि ताडना करने से बहुत से लाभ होते हैं। अतएव पुत्र की और शिष्य को ताड़ना करनी चाहिए, पुचकारते नहीं रहना चाहिए।

माता-पिता के अतिशय और अन्ध प्यार के कारण बन्धुदत्त में कुछ बुराइयाँ उत्पन्न हो गई थी। कम से कम वह भविष्यदत्त के समान गुणवान् और शिष्ट नही था। पढाई समाप्त होने पर जब वह तरुण अवस्था मे आया तो बड़े ठाठ के साथ रहने लगा। वह सजधज कर, अकड के साथ बाग मे सैर करने को जाता और अपनी अकड़ मे ही रहता।

एक बार बन्धुदत्त उत्तम मूल्यवान् वस्त्र पहनकर बाजार में गया। वहाँ बीच बाजार मे, रास्ते मे खड़ा हो गया। सामने से दो लडकियाँ आईं। उनमे से एक का नाम चम्पा और दूसरी का नाम चमेली था। इन्होने बन्धुदत्त को रास्ते मे बीचोबीच खडा देखकर कहा—रास्ता छोड दीजिए। मगर बन्धुदत्त ने उनकी बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। वह रास्ते से नही हटा। तब जरा तेजी में आकर उनमें से एक लड़की बोली—अबे सुनता नही, एक ओर हट जा !

इसके बाद लड़कियाँ आपस मे कहने लगी देखो, भविष्यदत्त भी धनसार सेठ का लड़का है और यह बन्धुदत्त भी उन्ही का लडका है ! मगर दोनो मे कितना अन्तर है ! भविष्यदत्त कितना पुण्यवान् कैसा सदाचारी और सुशिक्षित है ! राजा भी उसे प्यार करते है और इसे देखो, कैसा उचक्का और मूर्ख है !

लड़कियों की यह बात सुनकर बन्धुदत्त का क्रोध उभर आया। उसने तीखी दृष्टि से उनको देखकर कहा—जानती नही, मैं नगरसेठ का लड़का हूं ! मेरे लिये ऐसे ओछे बोल बोलती हो !

लड़कियाँ डरने वाली नहीं थी। उन्होने कहा तुम्हारे जैसे नखरेबाज पैदा हुए तो देश गारत हो जायगा। तुम मे क्या भल-मनसाहत है ? भले आदमी कभी फिजूल बाजारो और गलियो मे चक्कर नही लगाया करते हैं और न कही इस प्रकार रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं ! तुम्हें और तो क्या, खड़े होने की भी तमीज नही है ! तुम अपने आपको नगरसेठ का लडका बतला कर हमे डराना चाहते हो, पर ऐसा करना व्यर्थ है। अपने बाप की कमाई लक्ष्मी पर अभिमान करने वाले कायर होते है। उन्हे अभिमान करने का क्या अधिकार है ? अगर तुमने अपने हाथ से कमाई की हो तो बतलाओ ! बाप के टुकड़े खाना और इधर-उधर भटकना तुम्हारा काम है ! इसी पर अकड़ते हो ?

इस प्रकार खरी-खरी बातें सुनाकर लडकियाँ चलती बनीं। उनकी बातें सुनकर बन्धुदत्त की आँखें खुल गई। उसने विचार किया-बात ठीक है। उद्योगशील मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि स्वयं पुरुषार्थ करके धन का उपार्जन करे। बाप की कमाई पर मौज करना एक प्रकार की कायरता है।

इस प्रकार सोच-विचार करता हुआ बन्धुदत्त अपने घर की ओर चला आ रहा था तो रास्ते में ही उसे भविष्यदत्त भी मिल गया। उसने भविष्यदत्त को सारा हाल कह सुनाया और परदेश जाकर धनोपार्जन करने का अपना विचार भी प्रकट कर दिया।

भविष्यदत्त ने कहा—तुम्हारा विचार उचित और उत्तम है। उम्र हो जाने पर पुत्र को पिता के सिर का भार नहीं बना रहना चाहिए। अभी हम दोनों ही भार हैं। मैं भी तो पिताजी के ही टुकड़े खाता हूँ! अतएव हम दोनों साथ-साथ परदेश चलें।

इस प्रकार बातचीत करते हुए दोनों घर आये।

जोधपुर }
२०-१०-४८ }

दया-माता

स्तुति :

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयम्,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवान्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? हे प्रभो! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं?

प्रभो! पूर्वोपार्जित परम प्रकृष्ट पुण्य के परिपाक से आपका रूप अनुपम है। जो एक बार आपके रूप को देख लेता

है वह यही चाहने लगता है कि हमारी आँखो के पलक न झपें तो बड़ा अच्छा हो ! पलक गिरने से भगवान् के रूपामृत का पान करने में बाधा उपस्थित होती है। इसके सिवाय जो एक वार भगवान् के दर्शन कर लेता है, वह फिर दूसरो को देखे तो उस सन्तोष नही होता। प्रथम तो भगवान् के दर्शन कर लेने पर दूसरे को देखने की अभिलाषा ही नहीं रहती, अगर अकस्मात् दृष्टि पड़ जाय तो उसके हृदय को सन्तोष नही होता। भगवान् का लोकोत्तर दिव्य रूप-सौन्दर्य दर्शक को ऐसा बना देता है कि वह उस रूप पर मुग्ध ही बना रहता है। उसके नेत्रों में वही रूप समाया रहता है।

जैसे कोई ग्रामीण बाजरे के सोगरे (रोट) खाते खाते शहर में जाय और वहाँ उसे बादाम की चक्कियां मिले, स्वादिष्ठ दहीबड़े आदि मिलें तो क्या वह फिर बाजरे के सोगरे खाना पसन्द करेगा ? नहीं। इसी प्रकार भगवान् के रूप को देख लेने वाला किसी दूसरे के रूप को पसन्द नही करता।

इस सम्बन्ध में आचार्य महाराज उपमा देते हैं कि चन्द्रमा के समान निर्मल, धवल दुग्धसिन्धु (क्षीर सागर) के जल को जो पी चुका है, वह क्या लवण समुद्र-खारे पानी वाले समुद्र-का पानी पीना पसन्द करेगा ? कौन ऐसा मूर्ख होगा जो क्षीर सागर के अमृतोपम जल के सामने खारा पानी पीना चाहेगा ?

ऐसे अतुल रूप-सौन्दर्य से समन्वित भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्ही को हमारा वार-वार नमस्कार है।

भाइयो ! इस स्तुति पर जरा गहराई से विचार कीजिए। भगवान् ऋषभदेव तीसरे आरे में हुए हैं और यह स्तुति पांचवें आरे की है। पांचवें आरे मे यह बात कही जा रही है कि जो एक बार भगवान् का दर्शन पा लेता है, उसे और किसी के दर्शन से सन्तोष नही होता। अतएव यह प्रश्न खड़ा होता है कि क्या भगवान् के दर्शन अभी मौजूद हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भगवान् का असली दर्शन उनका सिद्धान्त है। भगवान् का शरीरिक सौन्दर्य निस्सन्देह अनुपम और अद्वितीय था, मगर वह उन्ही लोगों के लिए था जो उस समय मे मौजूद थे। वे पुण्यात्मा जीव सफल जीवन वाले थे, उनके नेत्र धन्य थे, उनका जन्म लेना सार्थक हुआ, जिन्होने उस युग मे भगवान् के साक्षात् दर्शन किये। मगर किसी का बाह्य रूप ही सब कुछ नही होता। बाह्य सौन्दर्य तो उसके आन्तरिक सौन्दर्य की झलक मात्र है। आन्तरिक सौन्दर्य से ही बाह्य सौन्दर्य सुशोभित होता है। विपुल बाह्य सौन्दर्य होने पर भी अगर आन्तिरिक सौन्दर्य किसी मे न हो तो उसका बाह्य सौन्दय व्यर्थ हो जाता है। बल्कि कभी-कभी अनर्थ का कारण भी बन जाता है। अतः आन्तरिक सौन्दर्य की ही असली कीमत है।

आन्तरिक सौन्दर्य क्या चीज है ? इसका उत्तर यह है कि किसी भी पुरुष मे विद्यमान सद्गुण ही उसका आन्तरिक सौंदर्य है। उसकी श्रद्धा, मान्यता, विचार और विवेक में ही उसका सच्चा रूप छिपा रहता है। अतएव भगवान् के सच्चे रूप-सौंदर्य का जब हम विचार करते हैं तो उनके विचारो और सिद्धान्तों

की बात हमारे सामने आती है। भगवान् के सिद्धान्तों में जो सत्य है, वह शाश्वत है। कोई भी काल उसे खण्डित नहीं कर सकता। सत्य काल और क्षेत्र की दीवारों से घिरा हुआ नहीं है। भगवान् ने तपस्या करके सर्व विशुद्ध बोध प्राप्त किया और फिर जगत-कल्याण के निमित्त उसका प्रतिपादन किया। भगवान् ऋषभदेव ने जो उपदेश दिया, जिन सनातन सिद्धान्तों का निरूपण किया था, वह आगे के तीर्थंकरों ने किया और वही आज शास्त्रों के रूप में हमारे सामने मौजूद है।

भगवान् के द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों की सत्यता को समझ लेना ही भगवान् के आन्तरिक सौंदर्य को समझ लेना है और वही उनका सच्चा दर्शन करना है। जिसने इस प्रकार से भगवान् के दर्शन कर लिये होंगे, वह मिथ्यात्वियों के पाखण्ड को कदापि पसन्द नहीं करेगा अमृत का रसास्वादन कर चुकने वाला क्या कटुक जहर को पसन्द कर सकता है? कदापि नहीं।

भगवान् का सिद्धान्त क्या है, यह बात समझ लेने की आवश्यकता है। यों तो प्रभू के सिद्धान्त बहुत विस्तृत हैं और कहते-कहते उनका पार नहीं आ सकता। उनको पूरी तरह कहने का सामर्थ्य भी मुझ मे नहीं है। किसी भी छद्मस्थ मे नहीं है। फिर भी उनके सिद्धान्तों मे से कुछ ऐसी बातें जिनका आपके जीवन के साथ साक्षात् सम्बन्ध है और जिन्हें समझे बिना जीवन व्यर्थ हो जाता है, आपको सुनाना-समझाना मेरा कर्त्तव्य है।

भगवान् का सिद्धान्त है कि आत्मा अजर, अमर, अविनाशी, नित्य, निरंजन, निराकार, निर्विकार, निष्कलंक और निरा-

मय है। वह अपने सुख दुःख का स्वयं कर्त्ता और भोक्ता है। आत्मा के ऊपर कोई हाकिम नहीं है, जिसके आदेश पर उसे चलना पढता हो। उसने अपने लिए सुख-दुःख का निमाण किया तो वह भी स्वयं किया है। आत्मा को सुख-दुःख पहुँचाने वाली दूसरी कोई सत्ता नही हैं। कहा भी है —

अप्पा कत्ता विकत्ता य, सुहाण य दुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सूपट्ठिओ ॥

उत्त. अ. २ गा. ३७

आत्मा अपने स्वरूप में पूर्ण स्वाधीन है। यह बात दूसरी है कि संसारी जीव पुद्गल के ससग मे पड़ कर अपने स्वरूप से च्युत हो रहा है, मगर यह भी सत्य है कि अपने स्वरूप से च्युत होने वाला वह स्वयं ही है और अपने शुद्ध स्वरूप मे आने की शक्ति भी उसी मे है। अनादि काल से अनन्त अनन्त आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में आए हैं और उन्होंने ईश्वर का पद पाया है। जब ऐसा हुआ तो आत्मा के अपने पुरुषार्थ से ही हुआ है। इसलिए हे आत्मन्! तू इस सत्य को समझ ले कि:—

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्तं,
किं बहिया मित्तमिच्छसि ? ॥

—श्री मदाचारांग सूत्र

रे पुरुष! तू अपना मित्र आप ही है। बाहर के मित्रों की ओर क्यो झांकता है? ससार की कोई दूसरी विराट से विराट शक्ति भी तेरा उद्धार नही कर सकेगी। तेरा उद्धार तेरी ही शक्ति

में है। अतएव दूसरे के सामने दुखडा क्यों रोता है ? क्यों गिड़-गिड़ाता है ? अपने प्रचण्ड सामर्थ्य को क्यो नहीं समझता ? तू ही तो है जो परमज्योतिर्मय स्वरूप का अधिकारी है, तू ही तो है जो परमेश्वर की पदवी का हकदार है, तुझमें ही जगन्नाथ और त्रिलोकीनाथ बनने की क्षमता है । जगत में कौन है जिसका ऐश्वर्य तुझसे बढ कर हो ? बढ़ कर जाने दे तेरे समान भी तो और कोई नही है · तू स्वर्ग का स्वामी बनता है और तू ही मुक्ति का भी स्वामी बनता है।

आत्मन् ! तू अपने भ्रम को दूर कर दे। तू परावलम्बन का परित्याग कर दे। अपने असली रूप को देख और आन्तरिक सौन्दर्य की ओर नजर ढाल। तेरे भीतर अक्षय खजाना भरा है।

पुद्गल की संगति में पड़ कर तू ने आपा गँवा दिया है । इसी कारण अपने स्वरूप से गिर गया है । फिर भी इतना निश्चय तो रख कि तेरे सबंध मे जो कुछ हो रहा है, तेरी ही शक्ति से हो रहा है। तू स्वयं ऋण ले रहा है और स्वयं ही उसे चुका भी रहा है।

भाइयो ! यह बात समझने योग्य है कि दान देना उधार देना है और पाप करना कर्ज लेना है। इन दोनों का ही बदला मिलता है। जितना-जितना दान-पुण्य करोगे, उतना ही उतना पाओगे और जितना-जितना पाप करोगे, उतना ही उतना चुकाना पड़ेगा। कहा भी है :—

कर्ज विगाना काढ के, खर्च किये बहु दाम ।
जब मुद्दत पूरी हुई, देना पड़सी दाम ॥

तुम कही भी क्यों न चले जाओ, पाप कर्म का ऋण बिना चुकाये छुटकारा नही होगा। पाप का वारंट अमोघ है, वह सर्वत्र घूमता है और पापी की खोज करके उसे गिरफ्तार कर ही लेता है। सरकार के वारंट से कदाचित् बचाव हो सकता है, परन्तु पाप के वारंट से बचाव असम्भव है। अतएव अगर पाप के ऋण-भार से बचना है तो भगवान् ऋषभदेव का उपदेश है कि सब से पहले जीवहिंसा से बचो। कह सकते हो कि गृहस्थी लिये बैठे हैं संसार के सभी काम करने पड़ते हैं, आरंभ-समारम्भ के बिना दुनियां के काम नही होते,ऐसी स्थिति मे जीवहिंसा से बचाव किस प्रकार हो सकता है?

इस सम्बन्ध में, गृहस्थों की स्थिति ध्यान में रखते हुए भगवान् के बतलाया है कि अगर तुम पूर्ण रूप से अहिंसक नहीं बन सकते तो कम से कम निरपराध त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का ही त्याग करो। जिन जीवो ने तुम्हारी कोई हानि नहीं की है, जो द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त अपेक्षाकृत विकसित चेतना वाले हैं, उन्हे मारने की भावना से मारना छोड़ दोगे, तो भी दुनियादारी का कोई भी काम नहीं बिगड़ेगा। श्रावक के योग्य सभी आर्य धन्धा करते हुए अहिंसा की इस मर्यादा का, जो भगवान् ने श्रावकों के लिए बतलाई है, आप बखूबी पालन कर सकते हैं। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, यह पांच प्रकार के स्थावर जीव हैं। इनकी हिंसा के बिना तुम्हारा काम नही चल सकता हो तो भी यतना रक्खो, विवेक के बिना काम मत करो, जिससे कम से कम पाप लगे-कम से कम कर्ज लेना पड़े। इसी प्रकार नौकर, दुकानदारी, आदि-आदि

कामों में भी विवेक रखने से बहुत-सा पाप बच सकता है। कोई आततायी अगर तुम्हारी बहू बेटी पर हमला करता है तो वह तुम्हारा भी अपराधी है। उसकी हिंसा करना अगर अनिवार्य है, तब भी निरपराध की हिंसा से तो बच ही सकते हो! इस प्रकार ध्यान रक्खा जाय, विवेक से काम लिया जाय तो मनुष्य बहुत-सी निरर्थक हिंसा से बच सकता है और हिंसा से जितने अंशों में बचा जायगा, उतना ही ऋण का बोझ कम होगा। इस प्रकार गृहस्थ जीवन में भी मर्यादा के साथ अहिंसा का पालन करना संभव है।

मतलब यह है कि जहाँ तक थोड़े से काम चल सकता हो वहाँ तक अधिक कर्ज नहीं लेना चाहिए। अगर एक रुपया कर्ज लेने से आपका काम चल जाता है तो दस रुपया कर्ज लेने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि अभी सिर पर जितना ज्यादा बोझा लादोगे उतना ही आगे चलकर कष्ट उठाना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। पाप को पाप समझना, अनिवार्य होने पर पाप करके उसके लिए पश्चात्ताप करना और उससे बचने की भावना रखना यह सम्यग्दृष्टि का काम है। जो पाप करके प्रसन्न होता है, पाप को पाप ही नहीं समझता, पश्चात्ताप नहीं करता और पाप से बचने की भावना भी नहीं रखता, समझ लो कि वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि जो काम करता है, वही काम अगर मिथ्यादृष्टि भी करे तब भी दोनों की भावना में बहुत अन्तर होगा। भावना में अन्तर होने के कारण उसके फल में भी बड़ा अन्तर पड़ जायगा। मिथ्यात्वी एक काम का जो फल भोगता है, उसी काम का

सम्यग्दृष्टि को वह फल नहीं भोगना पडता। क्योंकि मिथ्यादृष्टि जो पापकर्म करता है, उसमे उसको आसक्ति या लिप्तता होती है, सम्यग्दृष्टि लाचारी समझकर, रूक्ष भावना से उस काम को करता है। इसी अभिप्राय को सन्मुख रखकर शास्त्र में कहा है:

सम्मत्तदसी न करेइ पावं

—आचारांग

अर्थात्—सम्यग्दृष्टि जीव पाप नही करता।

भाइयो ! संसार मे बैठे हो तो पूरी तरह पाप से नहीं बच सकते, मगर खुश होकर पाप मत करो, हवस के साथ मत करो, पाप करके प्रसन्न मत होओ। बल्कि यह सोचो—'क्या किया जाय, विवश होकर पाप करने पडते हैं ! कौन वह शुभ दिन होगा जब मैं सब प्रकार के पाप से मुक्त हो जाऊँगा !' इस प्रकार विचार करोगे तो हल्के और रूखे कर्मों का बन्ध होगा। कल्पना करो, दो घडे सामने रक्खे हैं। एक कोरा है और दूसरा तेल चुपडा हुआ है। दोनो पर धूल उड-उड़ कर गिरती है। मगर कोरे घड़े पर गिरी हुई धूल झटकारने से ही अलग हो जायगी और चिकने घडे पर जम कर रह जायगी। इसी प्रकार कर्म भी रूखे और चिकने दो प्रकार के होते हैं। रूखे कर्म तपस्या आदि करने से झड़ जाते हैं, मगर राजी हो कर बाधे हुए चिकने कर्म आत्मप्रदेशों के साथ चौंट जाएँगे। वे बडी कठिनाई से झड़ेगे।

समझू डरता पाप से, अनसमझू हरखत ।
वे लूखे वे चीकने, इण विध कर्म बधन्त ।।

भाइयों ! सम्यग्दृष्टि की वृत्ति ऐसी कोमल होती है कि पाप करते समय उसे आत्मग्लानि अवश्य होती है। उसके मन में घृणाभाव उत्पन्न होता है। मगर मिथ्यादृष्टि पाप करके हर्षित होता है। इस भावना-भेद के कारण कर्म भी रूखे और चिकने दो प्रकार के बँधते हैं।

कभी-कभी चिकने कर्म सामुदायिक रूप से बांधे और भोगे जाते हैं। जैसे बहुत से लोग कोई मेला देखने गये और बहुत राजी हुए, किसी ऐसे स्थान पर गये जहां जीवों का वध होता है और वध को देखकर खुशी मनायी, तो ऐसे प्रसगों पर सामूहिक कर्म-बन्ध होता है और सामूहिक रूप मे उनको भोगना भी पड़ता है।

माताजी के स्थान पर बकरो और भैसो का वध किया जाता है। लोग अज्ञानवश होकर समझते हैं कि ऐसा करके वे माताजी को प्रसन्न कर रहे हैं और उनको प्रसन्न करेंगे तो हमे भी प्रसन्नता प्राप्त होगी। ऐसा सोचना मूर्खता है। लोग माताजी का स्वरूप भूल गये हैं और उसको प्रसन्न करने का तरीका भी भूल गये हैं। इसी कारण वे नृशंस और अनार्य तरीके आज भी काम में लाते हैं। सच समझो तो हम साधु लोग माताजी के सच्चे पुजारी हैं। हम उनके पण्डे हैं और प्रतिदिन उनकी पूजा किया करते हैं। हम तो रात-दिन उनका स्मरण किया करते हैं। यह ओघा, पूंजणी और मुंहपत्ती जो हमारे पास है, माताजी की सेवा-पूजा के लिए ही है। उन माताजी की महिमा कम नहीं है। अगर उनका सच्चा स्वरूप समझ कर कोई उनकी ठीक तरह उपासना करे तो उसे किसी चीज की कमी नहीं रहती वह बलदेव बन सकता है और तीर्थंकर भी बन सकता है। वह माताजी

वरदान देती है कि तुम ऐसे न जाओ। उनके आशीर्वाद से धन-सम्पत्ति,पुत्र-पौत्र आदि सभी कुछ प्राप्त होता है हे भाइयों ! तुम भी उन सच्ची माताजी के स्वरूप को समझो और उनको ही उपासना करो। वह कौन-सी माता है ?

थाने मनाऊँ देवी शाशता, म्हारी दया माता ।। ध्रुव ।।

सर्व मनोरथो को पूरा करने वाली और सब सुख देने वाली उन माता का नाम है—दया माता। वह अखण्ड है अविनाशी है और अजन्मा है ! यह दया-माता सच्ची-माता है। कोई कहता है कि मैंने किसी गरीब को पाँच रूपये दिये हैं ! पर मैं कहता हूँ कि तुम देने वाले कौन हो ? असल मे तो तुम्हारे दिल मे दया माता आई थी और उसी के हुक्म से तुम्हें देने पड़े। माताजी के हुक्म के बिना क्या पत्ता भी हिल सकता है ?

या सम देवी नहीं कोई दूजी, हाथा हाथ हजूर ।
तूठां तत्क्षण फलै भावना, दुख जावे सब दूर ।।

देखो, दया माता पधारें तो उन्हे प्रसन्न कर लो। दूसरे देव को प्रसन्न करोगे तो न मालूम कितने समय बाद फल की प्राप्ति होगी, मगर इन माताजी को यह विशेषता है कि सन्तुष्ट होने पर वे तत्काल फल प्रदान करती हैं। इनके समान तीन लोक में और कोई देव या देवी नही है। यह हाथो हाथ फल देने वाली हैं। एक महीना तो दूर, एक मुहूर्त्त की भी देर नही लगती है।

बच्चा पैसा माँगता है, पैसे के लिए हठ करता है, मगर माप उसे डाट देते हैं, 'हट-हट' कर देते हैं। मगर ज्यो ही वह

ज्यादा रोता है और आपके दिल मे दया आ जाती है। बस, उसी समय आप पैसा जेब से निकालते हैं और उसे दे देते हैं। छोटा बच्चा रोता है तो माता सब काम छोड़ झट उसको दूध पिलाने लगती है। यह सब दया-माता का ही प्रताप है। दया-माता प्रसन्न हुई कि उसी समय कामना सिद्ध हुई। दया-माता की कृपा से सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं।

जिसने दया-माता की मान्यता, आराधना, सेवा-पूजा नही की, उनकी क्या स्थिति होती है यह बात किससे छिपी है? ऐसे लोग हर तरह से दुःखी होते हैं वे भीख के लिए गली-गली भटकते फिरते हैं फिर भी पेट भर अन्न नही पाते! "अरे बाबूजी भूखा मरूँ हूँ, रोटी को टुकड़ो दे ओ जी!" की दीनतापूर्ण आवाजें लगाते फिरते हैं। जिन्होने दया-माता का गुणगान नहीं किया, जिन्होंने अपने मनो-मन्दिर में दया देवी को विराजमान नही किया, उन्हे दुःख और दरिद्रता का सामना करना पड़ता है। अतएव अगर अपना भला चाहते हो, सब मनोरथ पूरे करना चाहते हो तो दया-माता की सेवा करो।

लोग पत्थर को सिन्दूर लगाते है और माता कहकर उसकी पूजा करते हैं। परन्तु यह नहीं समझते कि असली माता तो उन्ही के घट मे विराजमान है। अशिक्षित और अपढ लोग ही इस भ्रम मे पडे हो, सो बात नही है, वरन् बहुतेरे सेठ, साहूकार और राजा लोग भी इसी भ्रम मे पड़े हुए हैं। वे असली माता को भूल गये हैं और उलटी मान्यता पकड़ बैठे हैं। इसका इतना दुष्परिणाम आया है कि बयान नही किया जा सकता! 'मेरा बच्चा अच्छा हो जायगा तो बकरा चढ़ाऊँगा, या

पाड़ा चढ़ाऊँगा' इस प्रकार की निर्दयता पूर्ण मनोभावना लोगो की बन गई है ! यह माताजी की मान्यता नही है, मजाक है, आराधना नही विराधना है, माताजी को राजी करना नहीं वरन् नाराज करना है। ऐसे लोग माताजी को जगत् की माता मानते हैं, सब जीव धारियों को उनका पुत्र समझते हैं और फिर भी उनके ही सामने, उन्हीं के निमित्त, उनके पुत्रो के प्राण लेते हैं ? क्या इससे कभी माता प्रसन्न हो सकती है ? क्या कोई भी माता अपने बच्चे का बलिदान चाह सकती है और उससे सन्तुष्ट हो सकती है ? शेरनी जैसी क्रूर समझी जाने वाली माता भी अपनी सन्तान की रक्षा करती है तो क्या सारे ससार की माता उससे भी ज्यादा क्रूर होगी ? वह अपनी सन्तान की रक्षा नही चाहेगी ? अवश्य चाहेगी। यही नही, अगर वह सच्ची माता है तो अपनी सन्तान का घात करने वाले से बदला लिये बिना नहीं रहेगी।

कई लोग कहते हैं—क्या करें, जब बच्चा बीमार हो जाय तो उसको बचाने के लिए ऐसा करना पड़ता है। मगर उन्हे सोचना चाहिए कि एक प्राणी की हत्या से दूसरे प्राणी की रक्षा नही हो सकती। वह बालक, जो अकाल में मर रहा है, पहले ऐसे ही काम करके आया होगा। उसने किसी के प्राण लिये होगे पाप का उपार्जन किया होगा। इसी कारण वह अकाल-मृत्यु का शिकार हो रहा है। वह पाप के फल को भोग रहा है। उस पाप के फल को नवीन पाप करके किस प्रकार रोका जा सकता है ? बकरे के प्राण ले लेने से बालक के प्राण कैसे बच जाएगे ? अगर बालक थोड़ी उम्र लेकर आया है तो वह बचेगा

नहीं, और तुम बकरे के प्राण लेकर पाप के भागी अलग ही बन जाओगे।

मैं यह नहीं कहता कि बीमार बालक का इलाज मत करवाओ और उसे बचाने का प्रयत्न मत करो। मैं तो मानवोचित विवेक से काम लेने की बात कह रहा हूँ। मैं यह कहता हूं कि कीचड को कीचड से धोने का प्रयास मत करो। खून के दाग को खून से धोने का प्रयत्न करना उपहासास्पद है ! इसी प्रकार हिंसा-जनित पाप-कर्म के फल से बचने के लिए हिंसा को अंगीकार मत करो। दया-माता की करूणामयी मुद्रा को अपने सामने रख कर ही कुछ करो। दया को विसार कर काम करोगे तो अच्छा करने चलोगे और बुरा फल पाओगे। बकरा और पाडा जैसे पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या से किसी का कल्याण होना सम्भव नहीं है। यह राक्षसी कृत्य है, अनार्यों का अनुकरण करना है। विवेकवान् आर्यपुरुष ऐसे कृत्य भूलकर भी नहीं करेगा। भगवान् ऋषभदेव के आदेश को स्मरण रक्खो। उन्होंने कहा है कि सभी जीवों को अपना-अपना जीवन प्रिय है। सभी जीवित रहना पसन्द करते हैं। क्या पशु क्या पक्षी और क्या कीड़ा-मकोड़ा, सभी में जिजीविषा है—जीवित रहने की इच्छा है। अतएव उनके जीवन का घात मत करो। तुम बड़े हो और अधिक सामर्थ्यवान् हो तो तुम्हें अधिकार नहीं कि अपने से छोटों के प्राण लूट लो। बड़े भाई का काम छोटे भाई की रक्षा करना है। मनुष्य बडा भाई है, पशु-पक्षी उसके छोटे भाई हैं। उनकी रक्षा करो। कम से कम अपनी ओर से तो उन्हें कष्ट मत पहुँचाओ।

भाइयो ! दया समस्त दुःखों की एक अमोघ दवा है।

अगर आप दया-देवी को दिल में बिठला लोगे तो आपके सब दुःख और सारी दरिद्रता दूर हो जायगी। निश्चित समझो कि दया-माता के विरुद्ध प्रवृत्ति करने से ही सारे दुःख होते हैं। अगर दया-माता का सच्चा स्वरूप समझकर उसकी आराधना करोगे तो वह तुम्हारी रक्षा करेगी और तुम्हे सुख मिलेगा। इसे कभी विस्मरण मत करो। यह असली माता है और अखिल जगत् की माता है। इस माता की सवारी कौन-सी है ?

> ज्ञानरूप सिंह की असवारी, तप-तिरशूलां हाथ ।
> हाक धाक करती दुश्मन पर, करे रिपु की घात ॥

दया-माता ज्ञान रूपी सिंह पर सवार है। भगवान् ऋषभदेव का और अन्य तीर्थंकरों का जो दर्शन है, जो सिद्धान्त है, उनके द्वारा उपदिष्ट जो द्वादशांगी है, और आपके अन्तःस्तल में रहने वाला जो शुद्ध विवेक है, वही ज्ञान है और उसी पर दया-माता की सवारी है। 'पढमं नाणं तओ दया' अर्थात् पहले ज्ञान आता है और फिर दया आकर उस पर बैठ जाती है। इस दया-माता के हाथ में तपस्या का तीखा त्रिशूल है। तपस्या रूपी त्रिशूल से दया-माता अपने शत्रुओं का संहार करती है। दया का शत्रु कौन है? हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, लोभ, काम, क्रोध, मद, मोह आदि अवगुण ही इसके शत्रु हैं। दया-माता तपस्या के त्रिशूल का प्रयोग करके इन सब पाप रूप रिपुओं का समूल संहार कर डालती है।

जहाँ दया की देवी नहीं होती, वहाँ बड़े से बड़े अनर्थ होते हैं। अमेरिका से दया-देवी हट गई तो उसने परमाणु-बम

के द्वारा हजारों लाखों जापानियों के प्राण ले लिये। यह घटना एक सकेत है, इशारा है। इससे यह बात साफ हो जाती है कि जगत् की स्थिति दया पर ही निर्भर है। अगर दुनियां मे दया उठ जायगी तो प्रलय मच जायगा ! दया के अभाव में भाई, भाई के प्राणों का ग्राहक बन जायगा। एक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र का सहार कर डालेगा। कोई सुख-चैन से नही रह पाएगा। दया की बदौलत ही सारे सद्गुण हैं। दया के अभाव मे एक भी सद्गुण नही टिक सकता। अतएव क्या आत्मा के कल्याण के लिए, क्या देश के कल्याण के लिए और क्या जगत् के कल्याण के लिए, दया ही एक मात्र समर्थ साधन है ! दया के बिना ससार का त्राण नही है। शान्ति की सैकडो योजनाएँ बनाई जाएँ मगर वे विफल ही होगी, अगर उनके मूल में दया नही होगी क्योंकि शान्ति का मूल आधार दया ही है।

> अष्ट कर्म का मुण्ड तोड़ कर, धरी रुंड की माल ।
> अष्ट प्रकारे धार विभूति, गले मोतियन की माल ॥

आत्मा को दुख देने वाले आठ कर्म हैं। काम, क्रोध आदि दुर्गुणो के उत्पन्न करने वाले भी यही हैं। अतएव यह आत्मा के दुश्मन हैं। जब दया-माता घट मे आकर विराजमान हो जाती है तो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गोत्र और अन्तराय, इन आठो कर्मों के सिर काट लेता है और आशीर्वाद देती है-जा, तू केवल ज्ञान का भागी हो, तुझे अनन्त दर्शन और निराबाध सुख प्राप्त होगा ! दया-माता इन आठो कर्मों के सिर की माला अपने गले मे पहन लेती है और

नौ तत्त्व रूपी मोतियो का नव लड़ा हार पहनती है। इस दया-माता के भी चार हाथ हैं:—

दानादिक चउ भेद विराजे, भुजा-दण्ड विस्तार ।
विनय-मुकुट सिर ऊपर सोहे, ऐसो कियो सिणगार ।।

दया-माता की चार भुजाएँ हैं। दोनो तरफ दो दो हाथ हैं। पहला दान का, दूसरा शील का, तीसरा तपस्या का, और चौथा भावना का है। जो आदमी दान नही देता, समझ लो कि उसने दया-माता का पहला हाथ तोड दिया है। जो ब्रह्मचर्य नही पालता उसने दूसरा हाथ तोड़ दिया है, तपस्या नही की तो तीसरा हाथ खण्डित कर दिया और जो भावना नही भाता, उसने चौथा हाथ काट डाला है! ऐसा जीव मर कर वनस्पतिकाय आदि में जन्म लेगा, जहाँ उसे हाथ-पैर नही मिलेंगे। इसके विपरीत, जो भाग्यशाली पुरुष दया-माता के चारो हाथों का जतन करेगा, उसे परिपूर्ण अवयवों वाला सुन्दर शरीर मिलेगा और वह ऐसे सुख का भागी होगा कि सपने मे भी दु:ख का सामना नही करना पड़ेगा!

भाइयों! इस दया-माता की महिमा का क्या पूछना है! उसका प्रभाव अपरिमित है उसका माहात्म्य अनन्त है! उसके गुणो का वर्णन करना सभव नही है। दया-माता के मस्तक पर विनय का अर्थात् नम्रता का सुन्दर मुकुट सुशोभित होता है। जिस मनुष्य में नम्रता हो, समझना चाहिए कि उसने दया-माता के मस्तक पर मुकुट चढाया है। नम्रता का मुकुट चढाने वाला इस लोक में और परलोक मे मानव-समाज का मुकुटमणि बन

जाता है। सब के आदर और सम्मान का पात्र होता है। सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। वह सर्वत्र सम्माननीय होता है। अतएव जिसे जो चीज पसंद हो, जो जैसा फल प्राप्त करना चाहता हो वह दया माता की वैसी ही आराधना करे।

कोई पूछे कि दया-माता का मन्दिर कहाँ है? उसका उत्तर यह है—

मोक्ष-मन्दिर की है तू वासी, खासा सुख दातार।
चार तीर्थ थारे आवे यातरी, भरा रहै तव द्वार॥

भाई! इस दया-माता का मन्दिर मोक्ष में है। आप कहोगे कि यह मन्दिर तो बड़ी दूर है! मगर जिसे जरूरत होगी, वह तो जाएगा ही। जिसे धन की आवश्यकता होती है वह देश-विदेश की परवाह नहीं करता। दूर-पास की गिनती नहीं करता। वह तो अपने प्रयोजन को सिद्ध करने की ही भावना रखता है। जिसे मोक्ष चाहिए, उसे पुरुषार्थ भी करना चाहिए। प्रयत्न भी करना चाहिए।

राम ने सुग्रीव से पूछा—लंका कितनी दूर है? तब सुग्रीव ने उत्तर दिया—नाथ! लंका तो बहुत दूर है! सुग्रीव का यह उत्तर सुनकर रामचन्द्र ने कहा—ऐसा क्यों कहते हो भाई? तो सुग्रीव ने सुना दिया—आपने प्रश्न ही ऐसा किया! अगर आप पूछते कि लंका कहाँ है तो मैं कह देता कि—यह रही लंका!

राम कहे सुग्रीव! सुन लंका कितनी दूर?
आलसिया अलगी घणी, उद्यमवन्त हुजूर॥

महाराज ! आलसियो के लिए तो लंका दूर है, पर उद्यमवंतो के लिए दूर नहीं है—पास ही है। इसी प्रकार पुरुषार्थी के लिए मोक्ष भी दूर नही है। बल्कि वह तो लका से भी समीप है। आखिर पूर्ण शुद्ध आत्मा का स्वरूप ही तो मोक्ष कहलाता है और उससे अधिक समीप और क्या हो सकता है ? सच पूछो तो मोक्ष आत्मा से, और सभी चीजो की अपेक्षा समीप है। अलबत्ता उसे प्राप्त करने के लिए पुरुपार्थ करना चाहिए। यही मोक्ष दया-माता का मन्दिर है। जो इस मन्दिर मैं एक बार प्रवेश करेगा, वह ऐसे सुख का भागी होगा कि फिर कभी भी उसे दुःख का सामना नही करना पड़ेगा।

दूसरी माताजी के पास तो लोग कभी-कभी दशहरे आदि के अवसर पर ही जाते हैं, मगर दया-माता की सेवा मे सदैव यात्री आते रहते हैं। उनका दरबार सदा भरा रहता है। देखो, इन दया-माता के हम पन्डे हैं और इनकी उपासना के लिए तुम सब आये हो और प्रतिदिन आते हो। हमारी यह दया-माता अनन्त वरदायिनी है। अगर इन्हे प्रसन्न नही करोगे तो तुम्हारी क्या दशा होगी ? जानते हो, माता रुष्ट हो जाती है तो वह बच्चे को दूध नही पिलाती है। इसलिए हम प्रतिदिन और प्रतिक्षण दया-माता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते रहते हैं। हम गांव २ मे दया-माता का धाम बनाते और चलाते हैं। दया-माता की पूजा मे चारो तीर्थ सम्मिलित होते हैं। दूसरी माताजी के यहाँ तो नवरात्रि के समय ही बाजे बजते हैं किन्तु यहाँ—

सतरह विधि संयम को थारे, बाजा को झणकार।
ध्यान ध्वजा थारे उड़े शिखर पर, लाग रही धूंधकार॥

सत्तरह प्रकार का संयम जिसका साधु और साध्वी पालन कर रहे हैं वही दया-देवी के स्थान पर रात दिन बजने वाले नगाड़े हैं। दया-माता के मन्दिर पर ध्यान रूपी ध्वजा चढ़ाई जाती है। जिसे ध्वजा चढ़ानी हो, वह ध्यान की ध्वजा चढ़ा कर अपने कल्याण की ध्वजा फहरा सकता है। कम से कम चार लोगस्स का सवेरे, दोपहर और शाम को तथा हो सके तो बारह बजे रात को ध्यान करना। जिसे लोगस्स का पाठ न आता हो, उस नवकारमन्त्र का ही ध्यान करना चाहिए। दया देवी को किसी कपड़े की ध्वजा नहीं चाहिए। वह ध्यान की ध्वजा से सन्तुष्ट होगी और फिर क्या है:—

ऋद्धि सिद्धि नवनिधिदाता, भरे अखूट भंडार।
अष्ट पहर थारा मंगल गावे, हो रया मंगलाचार॥

दया-माता सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि देने वाली है, इसके अनुग्रह से नवनिधियों की प्राप्ति होती है। वह ऐसा भंडार भर देती है कि फिर खाली ही नहीं होता। आठ प्रवचनों की आराधना करने वाला कर्मों की कोटी खपाता है और उत्कृष्ट रसायन आने पर तीर्थंकर गोत्र बाँधता है। जहाँ दया-माता है, वहाँ सब प्रकार का आनन्द होता है। किसी प्रकार का दुःख दारिद्रय उसके आस पास भी नहीं फटकता। और फिर दया-माता कैसी है?

भूखे भोजन अंबु प्यासा ने, शकुनि को गगन-विचार।
जहाज समुद्र माही डूबता, तुम शरणो आधार॥

भाइयों ! जैसे भूखे को भोजन का, प्यासे को पानी का, पक्षी को आकाश का, और समुद्र में डूबने वाले को जहाज का आश्रय है, इन्ही से इनकी रक्षा हो सकती है; उसी प्रकार संसार के अनेक विध दुःखों से छुड़ाने की शक्ति दया-माता मे ही है। और:—

रोगी को औषधि, साथ भूला ने,चौपद को निज स्थान ।
भय पामंता जी ने सरे, शरणागत ज्यो जान ॥

कोई आदमी रोग से पीडित हो, मान लो कि उदरशूल से छटपटा रहा हो और उसे उत्तम भोजन, वस्त्र आदि ग्रहण करने के लिए कहा जाय, तो क्या वह उन्हे पसन्द करेगा ? क्या उनके सेवन मे उसकी बीमारी मिट सकेगी ? नही। रोगी को तो औषध से ही सन्तोष हो सकता है। इसी इम प्रकार बीहड वन में अगर कोई रास्ता भूल गया हो तो उसे किसी दूसरे आदमी का साथ पाकर ही सन्तोष होना है, उसी से उसका उद्धार हो सकता है, इसी प्रकार जैसे चोपाये को अपना स्थान पाकर आश्वासन मिलता है उसी प्रकार चार गति, चोवीस दडक और चोरासी लाख जीव योनियो में भटकते हुए, दुःखो से भयभीत हुए प्राणियों के लिए दया—माता ही एक मात्र आधार है। दया-माता सब को सुखी और चिन्ताहीन बनाती है।

साठ नाम सिद्धान्त में थारा, तू जगजीवन माता ।
सदा काल थारी जोत जागती षट्दर्शन गुण गाता ॥

प्रश्न व्याकरणसूत्र के प्रथम संवरद्वार में दया-माता के साठ नाम बतलाये गये हैं। दया-माता ही वास्तव मे संसार के समस्त प्राणियो की माता है, क्योकि दया के प्रताप से ही उनकी रक्षा हो रही है, उनका जीवन सुरक्षित बना हुआ है। जन्म देने वाली माता के हृदय मे भी दया होने के कारण वह अपनी सन्तान का पालन पोषण करती है। अगर मानुषी माता मे से दया निकल जाय तो मानव शिशु की क्या हालत हो जाय ? इस बात पर गहरा विचार करने से दया-माता की महिमा जल्दी समझ में आ जायगी और यह भी समझ मे आ जायगा कि वास्तव में दया ही प्राणी मात्र की असली माता है। कहा भी है—

माता दया हो तुझको प्रणाम,
तेरे बिना है जग मृत्युधाम।
तू ही बचाती अरु पालती है,
दुःखीजनो के दुख टालती है॥

भाइयों ! दया माता की बदौलत ही माता, माता है, अतएव दया जगज्जननी है। प्राणी मात्र इसी माता की सन्तान है। दया माता का दिव्य प्रकाश सदैव फैला रहता है। अनादि काल से समस्त तीर्थंकर दया का प्रभाव प्रकट करते आ रहे हैं। तीर्थंकरो के अतिरिक्त और भी जितने महापुरुष हुए हैं, वे चाहे किसी भी समय किसी भी सम्प्रदाय, मत, पथ या परम्परा के क्यो न हों सबने एक स्वर से दया-माता की गुणगाथा गाई है। सबने दया-माता की महिमा स्वीकार की है। भला कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो जगज्जननी की महा-महिमा को स्वीकार

न करे ? इसीलिए कहा गया है कि छहों दर्शन तुम्हारे गुण गाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

दया धर्म को मूल है, पाप-मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लगि घट में प्राण ।।

कबीरजी कहते हैं—

चार वेद मुख पढ्या, समझ बिना सब झूठ ।
दया धर्म पाल्यो नहीं, तो सब माथा कूट ।।

वेदव्यासजी पुराणों का सार बतलाते हुए कहते हैं—

अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचन द्वयं ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।।

अर्थात्—अगर सारे अठारहों पुराणों का सारा थोड़े में कहना हो तो दो बातों मे ही कहा जा सकता है— (१) परोपकार पुण्य का कारण है और (२) पर-पीड़ा पाप का कारण है।

'अहिंसा परमो धर्मः' यह सभी के द्वारा स्वीकृत सिद्धान्त है। इसमे किसी का मतभेद नही है। यह बात दूसरी है कि अहिंसा को समझने मे किसी से भूल हुई हो और हुई भी है, फिर भी वे मानते तो अहिंसा में ही धर्म है। बाइबिल मे भी कहा है—Thou shalt not kill—अर्थात् तू किसी को मत मार। मुसलमानों के यहाँ लिखा है कि—'जहाँ रहम है वही रहीम है।' इस तरह सभी धर्मों मे दया को स्वीकार किया गया

है। अब यह देखना चाहिए कि एक ओर जब सभी दया को धर्म समझते हैं, तो फिर यह बकरा-ईद कहाँ से आ गई ? और दशहरे के तथा नवरात्रि के अवसर पर बकरे और पाड़े मारने का सिद्धान्त कहाँ से निकल पड़ा ? यह सब जिह्वालोलुप लोगों की ईजाद है। आपको इस चक्कर मे नही पडना चाहिए। सब को निश्चय कर लेना चाहिये कि दया धर्म है तो हिंसा धर्म नहीं हो सकता। जो लोग धर्म के नाम पर हिंसा करते हैं और उस हिंसा को अहिंसा का जामा पहनाना चाहते हैं, और लोगों को यही बात समझाना चाहते हैं वे स्वयं संसार में डूबेंगे और उनकी बात मानने वाले भी डूबेंगे। दया-माता ही बेड़ा पार करने वाली है —

संसार-समुद्र मांय डूबता, तुझ शरणां आधार।
कष्ट पड्या कोई याद करे,तो कर दे बेड़ा पार ॥

संसार के इस अपार और अथाह सागर में डूबने वालो के लिए एक मात्र दया ही आश्रय है। समस्त विश्व में दया के अतिरिक्त और कोई आधार नही है। अतएव अगर संसार-सागर के पार पहुँचना है तो दया-माता का आश्रय लो। दया-माता का स्मरण करने से सभी कष्टो का निवारण हो जाता है। दूसरे जीवो को सुख पहुँचाओगे तो स्वयं सुख पाओगे और यदि दूसरों को पीड़ा दोगे तो स्वयं पीड़ा के पात्र बनोगे। यह दया-माता का निर्णय है और तीन काल तथा तीन लोक में, कभी कही बदल नहीं सकता।

तेरी सेव कियासुं माता ! घणा जीव सुख पाता ।
होरालाल थारे शरणे आयो, दीजे भव-भव साता ॥

हे माता ! तेरी आराधना और उपासना करके अनेक जीवो ने अक्षय साता प्राप्त की है और अनेको ने इस संसार मे रहते हुए भी साता प्राप्त की है। ऐसे पुरुषों की नामावली शास्त्रों ग्रन्थों और पुराणो मे दी हुई है। वह नामावली इतनी विशाल है कि पूरी पढ़ी भी नही जा सकती। मगर पुराने नामो को जाने भी दें और दया-माता के एक आधुनिक आराधक की ही बात कर तो भी दया की महिमा समझी जा सकती है। जब गांधीजी ने यह कहना शुरु किया कि दया करना वीरो का काम है, अहिसा शूरों का शस्त्र है और जब उन्होने दया पकड़ी तब वे दया-माता के पडे बन गए। मशीनगनो से गोलियां बरसाने वाले और बम गिराने वाले अगरेज कुल चार करोड़ थे और उनमे से थोडो ने आकर चालीस करोड़ जनता पर शासन किया, करीब दो सौ वर्षों तक इतने बड़े देश को गुलाम बनाये रखा। मगर जब गांधीजी के दिल मे दया बैठ गई और उसने जोर पकड़ा तो अंगरेजों की सारी शक्ति कहां चली गई? दया-माता का यह अपूर्व चमत्कार था। सच पूछो तो दया से ही सच्चे मर्द बनते हैं!

यह भजन मेरे गुरु हीरालालजी म० ने रतलाम मे पूज्य उदयसागरजी म० की प्रेरणा से बनाया था और जब उन्हे सुनाया वो बहुत प्रसन्न हुए।

भाइयो! कहने का आशय यही है कि अगर आप सब

प्रकार के दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं और सुखी बनना चाहते हैं तो इसका एक ही उपाय है कि दया-माता की मान्यता लो और सेवा करो इन माताजी की कृपा से तुम नर से नारायण बन जाओगे। तुम उसे मना लो, फिर सभी संकल्प सिद्ध हो जाएंगे तुम दया-माता की जितनी ज्यादा रक्षा करोगे, यह उतना ही ज्यादा तुम्हें सुख और सौभाग्य प्रदान करेगी। यही भगवान् ऋषभदेवजी का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को समझ लेना ही भगवान् के आन्तरिक रूप का दर्शन कर लेना है।

भविष्यदत्त चरित—

दया-माता के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण या समझकर भी कदाचित् असावधानी बरतने के कारण पाप-कर्मों का संचय होता है। वह पाप-कर्म बांधते समय तो बुरे नहीं मालूम होते, मगर भोगते समय अवश्य ही बुरे मालूम होते हैं। सेठानी कमलश्री ने किसी समय गफलत में पड़कर कोई पाप-कर्म बांध लिया तो उसका फल यह हुआ कि पति के द्वारा उसका परित्याग कर दिया गया। उसे पति की प्रीति से वंचित होना पड़ा और पति का घर त्याग कर अपमानित भी होना पड़ा।

उधर भविष्यदत्त और बन्धुदत्त ने परदेश जाकर धन कमाने का विचार किया। दोनों ने जब पक्का इरादा कर लिया तो वे आज्ञा प्राप्त करने के लिये चले। बन्धुदत्त पहले धनसार सेठ के पास पहुँचा। उसने पिता को नमस्कार करके कहा—पिताजी! मैं धन उपार्जन करने के लिए परदेश जाना चाहता हूं। अतः आज्ञा दीजिए।

इससे उलटा आदर्श उपस्थित करता है। वह आध्यात्मिक विकास की सर्वोच्च सीमा को प्राप्त करने की शिक्षा देता है। इसी अभिप्राय से आचार्य महाराज ने फरमाया है कि भगवान् अपने भक्त को भी भगवान् बना लेते हैं।

जो भगवान् चिरकाल तक साधना और सेवा करने पर भी अपने भक्त को भक्त ही बनाये रखता हो कभी भगवान् न बनने देता हो, उस भगवान् की आराधना करने से क्या लाभ है ?

भाइयो ! यह विवेचन सुन कर आपको आश्वासन मिलना चाहिए। आप प्रसन्न होंगे कि परमात्मपद पर हमारा भी हक है। निस्सन्देह प्रत्येक जीव परमात्मा बनने का अधिकारी है, मगर आप जानते हैं कि जितनी बड़ी सिद्धि प्राप्त करनी होती है, उतनी ही बड़ी उग्र साधना भी करनी पड़ती है। साधना के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। मुक्ति जीव की सर्वश्रेष्ठ साधना है, अतएव उसके लिए सर्वश्रेष्ठ साधना भी करनी चाहिए। इस साधना के सम्बन्ध मे ही मैं विवेचन करता आ रहा हूं। उसे आप सुन कर रह जाएँगे तो कुछ भी न पाएंगे। पाएँगे तभी जब साधना करेंगे।

साधारणतया कर्म ही मोक्ष–प्राप्ति में बाधक है। कर्म दो प्रकार के हैं–शुभ कर्म और अशुभ कर्म। शुभ कर्म पुण्य कर्म कहलाते और अशुभ कर्म पाप कर्म कहलाते हैं। मुक्ति प्राप्त करने के लिए शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का क्षय करना आवश्यक है। इसीलिए कहा गया है—'पुण्यपाप क्षयो मोक्ष.।' अर्थात् पुण्य और पाप का क्षय हो जाना मोक्ष कहलाता है।

यद्यपि वस्तुस्थिति यही है, फिर भी पुण्य और पाप को एक ही कोटि में नही रखा जा सकता। दोनो में बहुत अन्तर है। पुण्य से मोक्षप्राप्ति के अनुकूल मनुष्य भव आदि सामग्री मिलती है और पाप उस सामग्री की प्राप्ति में बाधा डालता है। अतएव मुमुक्षु पुरुष को सर्व प्रथम पाप से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। पाप से बच कर पुण्य और धर्म का उपार्जन करते-करते जीव जब ऊँची स्थिति पर पहुँच जाता है तो पुण्य भी छूट जाता है और तभी मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है। अतः पुण्य कथंचित् उपादेय भी है।

ज्योतिष शास्त्र मे कई ग्रह माने जाते हैं, पर यों देखा जाय तो दो ही ग्रह हैं—पापग्रह और पुण्यग्रह। जिसने पुण्यग्रह नही कमाया उसके ग्रह अच्छे नही है, यानि पापग्रह हैं ऐसा समझना चाहिए।

भृगुसंहिता ज्योतिष का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, उसमे सवा-लाख कुण्डलियाँ दी हुई हैं। कहते हैं किसी भी मनुष्य की कुण्डली मिलाई जाय तो उससे मिल जायगी। मेरी कुण्डली भी उसमे मिल गई थी। उससे तीन जन्मो की बात निकलती है। धनवान् होना या निर्धन होना भी मालूम हो जाता है।

जोधपुर मे चंडूजी एक नामी ज्योतिषी हो गये हैं। उनके सम्बन्ध मे एक किंवदन्ती सुनी जाती है। जब चंडूजी का जन्म होने वाला था तो उसके पिता ने दाई से कह दिया कि जैसे ही सन्तान का जन्म हो, ऊपर से नीबू फेंक देना। उसके आधार पर मैं सही कुण्डली बनाऊँगा। जब चंडूजी का जन्म हुआ तो

दाई ने नीबू फेंका और उनके पिता ने कुण्डली बनाई। कुण्डली बना कर उसका फलादेश किया तो मालूम हुआ कि बाप अगर बेटे का मुंह देख ले तो उसे गधे की सवारी मिले ! ज्योतिषी इस फलादेश से बहुत घबराये। आखिर उन्होने विचार किया कि यहाँ रहना ठीक नही है। वह बनाई हुई कुंडली को अपने कमरे मे पड़ी छोड़कर चल दिये। उनका पता नही लगा।

इधर लडका बड़ा हुआ और पढ़-लिख कर तैयार हुआ। वह अपने पैत्रिक विषय ज्योतिष मे प्रवीण हो गया। एक दिन सहज ही उसने अपनी माता से अपने पिता के विषय मे पूछा। माता ने बतलाया—तेरे पिताजी, तेरा जन्म होते ही, न मालूम किस कारण बिना कहे-सुने घर छोड़ कर चल दिये हैं। तब से आज तक उनका पता नही चला। न वे लौटे न कभी किसी को मिले ! अब भी पता नही कि वे कहां है ?

लडके ने अपनी कुण्डली खोजी और वह मिल भी गई। कुण्डली देखकर वह अपने पिता के भागने का कारण समझ गया। उसने अपनी माता से पूछा—माँ, यह बतलाओ कि मेरे जन्म के समय पिताजी ने क्या कहा था ? उन्होंने समय ठीक-ठीक जानने की क्या व्यवस्था की थी ? माता ने बतलाया कि दाई ने नीबू फेंका था। लडके ने उसी समय दाई को बुलवाया। दाई के आने पर लडके ने पूछा—दाई मां ! मेरा जन्म होते ही नीबू फेंक दिया था या कुछ देर हो गई थी ? दाई ने उत्तर दिया—मैंने उसी समय नीबू फेंका था, मगर एक जगह वह अटक गया था और इस कारण जरा-सी देर हो गई थी।

दाई की बात सुनकर लडके ने उस समय की एक कुंडली तैयार की। दोनो कुण्डलियो का मिलान करने पर, फल मे जो भिन्नता मालूम हुई, उसे अपनी माता को बतलाते हुए वह बोला—माँ, पहले बनी हुई कुण्डली का फल यह है कि अगर बाप, बेटे का मुँह देखे तो उसे गधे को सवारी मिले। और दूसरी कुण्डली के अनुसार बेटे का मुँह देखने पर बाप को हाथी को सवारी मिले। जरा से समय भेद के कारण कितना अनर्थ हो गया!

अब लडका अपने पिता को तलाश में निकला। भाइयों! कर्म बडे बलवान् है। कहा है—

कर्म—रेख पर मेख धरे, नहीं देखे कोई बलकारी रे।
शाह को रंक रंक को कर दे, छत्तर धारी रे।।
कर्म-गत भारी रे, नही टले कभी सुणज्यो नर-नारी रे।।

जब द्वारिका जलने लगी तो बलदाऊ और कृष्ण को अकेले निकलना पड़ा! भाई, कर्मो की रेखा वज्र की रेखा है। उसे कोई मिटा नही सकता। कर्मों के आगे बडे–बड़े बलवान् भी दुर्बल बन जाते हैं। उनके आगे किसी की नही चलती। कर्म क्षण भर में राजा को रंक और रंक को राजा बना देते हैं। वास्तव में कर्मो की गति बडी विचित्र है! इन कर्मो ने महान् से महान् पुरुषो के साथ भी रियायत नहीं की। रामचन्द्र जैसे मर्यादा पुरुष को सताया, भगवान् ऋषभदेव से भी बदला लिया और महावीर स्वामी को भी कष्ट पहुँचाया! जब ऐसे लोकोत्तर महापुरुष भी कर्मों की क्रूरता से नही बच सकते तो साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है?

कि ह्रास का यह क्रम वढता ही न चला जाय ! जिस जाति या समाज में विद्वानों का आदर होता है, उस जाति या समाज मे विद्वानों की संख्या भी अधिक होती है। मगर हमारे यहां तो आजकल एक मात्र धन ही सब कुछ वन गया है ! जहां देखो वहां धन की ही तूती वोलती है। नताजा यह हुआ है कि सव की निगाह और सव का लक्ष्य धन की ओर ही होता है । मगर आपको समझना चाहिए कि व्यक्ति या समाज का उत्कर्ष अथवा देश और विश्व का कल्याण धन से नही होने वाला है । विद्या और विवेक तथा सदाचार की सम्पत्ति ही मूल्यवान् और वास्तविक सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति से ही उन्नति, प्रगति और भलाई हो सकती है। अतएव भाइयो! कोरे पुद्गलानंदी मत बनो। जड़-पदार्थों को अधिक महत्व न दो। ज्ञान चेतना है उसकी प्रतिष्ठा करो। आज सारा संसार भौतिकता के भवर में फंसा जाता है, उसे चेतना की ओर झुकाने और मोडने का उत्तरदायित्व भारत वर्ष का ही है । भारत ने बड़े-बड़े अवतारी पुरुष, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और ज्ञानी संसार को भेंट किये हैं और आत्मवाद की शिक्षा दी है। वही भारत क्या आत्मवाद को भूल जायगा ? नही, उसे भूल नही जाना चाहिए।

भाइयो ! यदि आप स्वयं ज्ञानवान् नहीं हैं तो ज्ञानवान् बनने का प्रयत्न कीजिए। नही बन सकते हो, ऐसी दुर्बल भावना को अन्तः करण से निकाल कर बाहर कर दीजिए । इतना न बन सके तो कम से कम ज्ञान और ज्ञानवानो का आदर तो कीजिए, जिससे ज्ञान की प्रतिष्ठा वढे और लोगो का ध्यान ज्ञान की ओर जाय और वे ज्ञानवान् बनने का प्रयत्न करे। देखो, राजा वे उन

दोनों विद्वानों का कितना सत्कार किया ? उन विद्वानों का सत्कार होते देख कर दूसरों को भी विद्वान् बनने की इच्छा हुई होगी। इस प्रकार विद्वानों का आदर करने से विद्या की वृद्धि होती है।

तो हाथी पर सवार होकर दोनों विद्वान् जब नगर की ओर जा रहे थे तो दोनों ने एक दूसरे का परिचय पूछा। नवयुवक पण्डित ने कहा—मैं मरुधर प्रदेश का निवासी हूं और पण्डित चंडू का पुत्र हूं।

चंडू यह उत्तर सुन कर चकित रह गया ! उसने कहा—चंडू तो मेरा ही नाम है। क्या तुम मेरे पुत्र हो ?

नवयुवक—पिताजी ! मेरा प्रयास और पर्यटन सफल हुआ। मैं आपकी खोज करने के लिए भटकता फिरता हूं। आज मेरा जीवन धन्य हुआ, आज मेरे नेत्र सफल हुए कि आपके दर्शन पाये !

चंडू - मगर तुम्हारी कुण्डली मे पिता के लिए एक अनिष्ट योग था और इसी कारण मैं गृहत्याग करके चला आया था।

नव०—मैं यह समझ गया था। किन्तु उस कुण्डली में समय की कुछ गड-बड हो गई थी। ठीक समय का पता लगाकर जब मैंने दूसरी कुण्डली बनाई तो पता चला कि उसके अनुसार पिता अगर पुत्र का मुंह देखे तो उसे हाथी की सवारी मिले। यही परीक्षा करने के लिए मैं भी घर से निकल पड़ा।

चण्डू का हृदय गद्गद हो गया। वह हर्ष के मारे नाच

चंडूजी का पिता अशुभ कर्मों का मारा सहसा घर से निकल पड़ा। अब उसका लड़का अपने पिता की खोज मे निकला। लडका आत्मविश्वास का धनी और साहसी था। वह कोई भी चीज लिए बिना ही घर से चल दिया था। मगर कहावत प्रसिद्ध है—

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

अर्थात्—जिसके पास विद्या है उसका सर्वत्र आदर होता है।

उस लडके का पिता घूमता-फिरता किसी नगर में जा पहुँचा था और वहां के राजा के दरबार में, ज्योतिषियो की मण्डली का सर्वेसर्वा बन गया था। एक बार उसने पानी की वर्षा के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी की। उसने यह भी कहा कि एक मच्छ भी गिरेगा और वह बगीचे के एक कुण्ड मे गिरेगा।

पण्डितजी की भविष्यवाणी की बात समस्त नगर में फैल गई। उनकी खोज में निकला हुआ उनका लड़का भी संयोगवश उस समय उसी नगर मे पहुँचा हुआ था। उसके कानो तक भी यह बात पहुँची। उसने गणित करके देखा और कहा कि मच्छ गिरेगा तो सही, मगर आधा कुंड मे और आधा बाहर गिरेगा। लोगो ने इस अपरिचित और नवयुवक ज्योतिषी की बात सुनी और राजा के कानो तक पहुँचाई। राजा ने कहा—अच्छा, नियत समय पर देखेगे किसकी बात सत्य ठहरती है।

निर्दिष्ट समय आया। राजा अपनी मण्डली के साथ बाग

में जा पहुंचा। सचमुच मगर गिरा, मगर आधा कुंड मे और आधा बाहर गिरा। राजा ने कहा—दोनों पण्डितो की बात में यद्यपि थोडा-सा अन्तर है, मगर पडने की मूल बात सत्य है। अतएव दोनो पण्डित प्रशसा के पात्र हैं। राजा में दोनो पण्डितो को पैरो मे सोना प्रदान किया और दोनो को हाथी पर सवार करके राजसभा तक ले गया। दोनों की विद्वत्ता की लोग सराहना करने लगे और राजा की गुणग्राहकता की भी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

प्राचीनकाल मे, भारतवर्ष में, विद्या की ऐसी प्रतिष्ठा होती थी! राजा भी विद्वानो के पैरो में मस्तक झुकाते थे और इसी कारण लोग विद्या प्राप्ति के लिए प्रबल पुरुषार्थ करते थे। भारत मे ऐसे ऐसे प्रचण्ड विद्वान् हो गये हैं कि न केवल भारतवर्ष में ही वरन् समस्त एशिया खण्ड मे उनकी विद्वत्ता की प्रशसा होती थी। विदेशो के जिज्ञासु अनेकानेक कठिनाइयां झेल कर इस देश मे विद्या सीखने आते थे और इस देश के पंडित विदेशो में भारतीय ज्ञान का प्रचार करने के लिए जाते थे। यह उस समय की बात है जब हवाई जहाज नहीं थे, मोटरें नहीं थी, आवागमन के साधन नही थे, सड़कें तक नही! ऐसे विद्वानो की बदोलत ही भारतवर्ष ससार का गुरु कहलाया है। उस समय इतने बड़े बड़े विद्वानो के होने का मुख्य कारण यह था कि विद्वानों की और विद्या की प्रतिष्ठा होती थी। आज वह स्थिति कहाँ है? खेद है कि प्राचीन भारत की वह परम्परा करीब २ मिट चुकी है और इसी कारण प्राचीनकाल के विद्वानो के समान आजकल विद्वान् नही हो रहे हैं। विद्या का ह्रास हो रहा है और ऐसा जान पड़ता है

उठा। भला कौन पिता अपने विद्वान्, सौभाग्यशाली और पितृ-भक्त बालक को सहसा पाकर प्रसन्न न हो उठेगा ?

कहने का आशय यह है कि पूर्वजन्म की सिद्धि ज्योतिष शास्त्र से भी होती है। उससे भविष्य-जन्म का भी प्रायः ज्ञान हो जाता है। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान कम नही है मगर ज्योतिषी बहुत कम सच्चे दिखाई देते हैं। ज्योतिष शास्त्र का इसमें कोई दोष नही है। उसे पूरी तरह जानने वाले और मनन करने वाले हों तो ज्योतिष की सचाई का पता चल सकता है।

ज्योतिष शास्त्र तो सिर्फ पूर्वोत्तर जन्म की अंशत. बात बतला देता है, मगर धर्मशास्त्र इस सम्बन्ध में हमे पूरा ब्योरा बतलाता है। वह अन्तरग और बहिरग कारणो पर भी पूरी तरह प्रकाश डालता है धर्मशास्त्र के अध्ययन से विदित हो जाता है कि जन्मान्तर का कारण कामण और तैजस शरीर है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी बाते हैं। धर्मशास्त्र उन सब को गहराई में उतर कर बतलाता है। आप धर्मशास्त्र को पढे तो सब बातों का पता चले। मगर आपको फुर्सत कहाँ है ? प्रत्येक मनुष्य आज आटे-दाल की चिन्ता मे लगा है ! जिन्हे यह चिन्ता है, उन्हे तिजोरियाँ भरने की फिक्र है ! सब लखपति बनने के मन्सूबे कर रहे हैं और लखपति, करोड़पति बनने के सपने देख रहे हैं! अपने आपको—अपने वास्तविक स्वरूप को समझने की तरफ किसी का ध्यान नही है। आगे की तैयारी करने का खयाल नहीं है। सब मानो यही समझे बैठे हैं कि अनन्त काल तक जीवन कायम रहने वाला है या सम्पत्ति हमारे साथ जायगी। मगर देखते नहीं कि दुनिया से लोग उठते जा रहे हैं, प्रतिदिन

यह क्रम चल रहा है। सारा वैभव यहीं रक्खा रह जाता है और हंस अकेला ही जाता है। फिर भी मोह की प्रबलता के कारण देखते हुए भी लोग अंधे बन रहे हैं, जानते हुए भी अनजान का सा आचरण कर रहे हैं। कभी नहीं सोचते कि हमारा असली कार्य क्या है? आत्मा का शाश्वत कल्याण किसमें है? हम अव्याबाध अखण्ड आनन्द के अधिकारी किस प्रकार बन सकते हैं?

अगर आपको शास्त्रों के अध्ययन के लिए अवकाश नहीं है और उन्हें समझने की योग्यता नहीं है तो कम से कम सन्तों के उपदेश को ही नियमित रूप से सुन सकते हो। उससे भी आपके ज्ञान की वृद्धि होगी। मगर आप सोचते हैं—'साधुओं के व्याख्यान सुनने से क्या लाभ है? सुन लेने मात्र से क्या लाभ होगा? कुछ करते तो हैं नहीं।' इस प्रकार के विचारों को दूर कर दो। सुने हुए को आचरण में लाओ। पूरा आचरण में न आ सके तो जितना संभव हो, उतना ही आचरण करो और जो आचरण में न आया हो उसके लिए भावना रक्खो। यों करते-करते किसी समय आप उच्च आचरण सम्पन्न कर सकेंगे। यदि आज कुछ भी नहीं कर सकते तो भी यह मत सोचो कि सुनने से क्या लाभ है? आप जो कुछ भी सुन रहे हैं वह आपकी अन्तरात्मा के किसी कोने में संचित होता जा रहा है। किसी वक्त यह सुनना काम आएगा। इसे सुनने से कभी जाति-स्मरण हो जायगा तो सब बातें याद आ जाएगी।

मतिज्ञान के चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनमें से धारणाज्ञान असख्य काल तक बना रहता है।

भाइयों! यह सब बड़ी रहस्यपूर्ण बातें है। यहां इतना ही कहता हूं कि किसी भी जन्म में सुनी हुई कोई भी बात अगले जन्म में काम आ सकती है। यहां धारणा कर लोगे और आगे भव में देव बनोगे तो वह बातें याद आएगी। तुमने और अगर कोई बात लिख रक्खी है तो वह याद नहीं रहेगी, मगर जो प्रत्यक्ष याद किया हुआ है, वह सब याद आ सकता है। चौदह पूर्वों का ज्ञान भी रोशन हो जायगा। इसीलिए साधु कहते हैं कि सीखो कंठस्थ करो।

भाइयों! शास्त्र सुनने से लाभ के सिवाय हानि क्या है? कल्पना कर लो कि आगे वह याद न रहा तब भी क्या बुराई है? जितनी देर मनोयोग लगाकर तुमने उपदेश श्रवण किया है, उतनी देर तक तुम्हारी भावना पवित्र बनी रही और उस भावना के बल से पापो का नाश होता रहा और अच्छी पुण्य प्रकृति का बंध होता रहा। अगर आपकी भावना में पवित्रता रही तो निर्जरा हुई। धर्मकथा करने से, सुनने से और धर्मकथा करने वाले को भला जानने से कर्मों की निर्जरा होती है। इसलिए—

पढ़ो तुम सभी ज्ञान-गीता, ज्ञान बिन जन्म जाय रीता। ध्रुव।

भाइयों! अगर जीवन का सच्चा लाभ उठाना है तो ज्ञान का अभ्यास करो। ज्ञान के बिना जीवन रीता है—निष्फल है। ज्ञान से ही प्रकाश मिलता है। ज्ञान ही जीवन को सफल बनाने का सफल साधन है। अतएव जितना भी संभव हो, ज्ञान प्राप्त करते रहो। कहा है—

शशि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो,
फुल सूनो बिन पूत पान बिन तरुवर सूनो।
विप्र शून्य बिन वेद और बन पहुप बिहूनो,
सूनो बाग सावन बिना, घटा बिन सूनी दामिनी।
बैताल कहे विक्रम सुनो, घर सूनो बिन कामिनी ।।

भाइयो ! तुम्हारे पास भले लाखों और करोडों की सम्पदा हो, मगर यदि ज्ञान नहीं है तो समझ लो कि तुम्हारा हृदय अन्धकार से परिपूर्ण है ! तुम दिखने में कितने ही सुन्दर क्यो न होओ, अगर तुम्हारे पास विद्या न हो, तो तुम पलाश के पुष्प के समान हो। पलाश का फूल देखने मे कितना सुन्दर प्रतीत होता है, मगर उसमें खुशबू लेश मात्र भी नही होती ! ऐसे फूल का क्या मूल्य है ? जगल मे खिलता है और मुरझा कर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञान के बिना मनुष्य का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए मैं कहता हूँ कि मनुष्यभव पाया है तो उसे सफल बनाने के लिए प्रयत्न करो, कुछ ज्ञान भी प्राप्त करो। ज्ञान के बिना यह अनमोल जीवन वृथा हो जायगा।

एक बार चित्तौड़ में मेरा चौमासा था। चौमासे में मैं भगवतीसूत्र सुना रहा था। एक अगरेज भी सुनने आता था। उसे हिन्दी भाषा का भी ज्ञान था। सूत्र में जब परमाणु अर्थात् एटम का जिक्र चला तो उसने कहा—आपके यहाँ परमाणु का वर्णन कब से चला आ रहा है ? मैंने उत्तर दिया—असंख्य वर्ष बीत गये हैं, जब भगवान् ऋषभदेव हुए थे। उसी समय से यह

वर्णन चला आ रहा है। अंगरेज ने कहा-हमारे यहां तो सिर्फ चार सौ वर्षों से ही इसका जिक्र है।

उस अंगरेज ने एक दिन परमाणु (एटम) का चित्र लाकर दिखलाया। मैंने उसे बतलाया-देखिए साहब! जिसका फोटू उतारा जा सके, उसे हम परमाणु नहीं मानते। परमाणु तो उससे भी बहुत ही सूक्ष्म है। जिसका चित्र लिया जा सकता है, वह परमाणु नहीं, स्कंध है। अनन्त परमाणुओं के इकट्ठे होकर आपस में मिल जाने पर वह स्कंध बनता है अतएव जिसे आप परमाणु कहते वह परमाणु नहीं है। परमाणु तो इससे अनन्तवां भाग है-अतीव सूक्ष्म है। केवलज्ञानियो ने ज्ञान को खुर्दबीन लगाकर परमाणु को देखा है और वही उसे देख सकते हैं। उन्होंने ही इतना सूक्ष्म ज्ञान प्रकट किया है।

मेरी बात सुनकर उस अंगरेज भाई को आश्चर्य हुआ कि भारतवर्ष मे कितना ज्ञान भरा है! मगर सबसे बडा आश्चर्य तो यह है कि आप भारतीय होकर और केवलज्ञानियों के भक्त होकर भी इस ज्ञान से वंचित रहते हैं!

भाइयों! ज्ञान प्राप्त करोगे तो सिद्धि प्राप्त हो जायगी। ज्ञान वह लोकोत्तर अग्नि है, जिसमें सब कर्म भस्म हो जाते हैं।

> कोटि जन्म तप तपे ज्ञान बिन कर्म झरें जे,
> ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते ॥

अर्थात्—सम्यग्ज्ञान के अभाव मे, करोडो जन्मों तक तपस्या करने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है, ज्ञानी पुरुष

तीन गुप्तियों की साधना करके, क्षण भर में ही उतने कर्मों को निर्जरा कर डालता है! यह सम्यग्ज्ञान की महिमा है! कहाँ करोड़ों जन्म और कहाँ एक क्षण! इसी से समझलो कि ज्ञानी और अज्ञानी में कितना अन्तर है?

भाइयों! सम्यग्ज्ञान प्राप्त करोगे तो सहज ही कर्मों को नष्ट करके मुक्ति के पात्र बन जाओगे। अतएव भगवान् के वचनामृत का पान करो।

ज्ञान की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसके प्रभाव से वर्तमान जीवन भी परम सुखमय बन जाता है। ज्ञानी किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति मे सन्तुष्ट रहता है। कोई भी कष्ट उसके अन्तस्तल तक नहीं पहुँच जाता। ज्ञानी का हृदय ऐसा बन जाता है कि बड़े से बड़ा दु.ख भी उसे व्यथित नही कर सकता ज्ञान के प्रभाव से वह सदैव समभाव रखकर दुःखों को पराजित और परास्त कर देता है। इस प्रकार वह इसी जीवन में परम शान्ति का अधिकारी बनता है। राग और द्वेष, जो अज्ञानी जनो में विषम भावना उत्पन्न करके घोर संताप पहुँचाते रहते हैं, ज्ञानी का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर पाते जिसने पैर मे जूते पहन रक्खे हैं, काँटे उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? इसी प्रकार जिस ज्ञानी ने ज्ञानजनित समभाव धारण कर लिया है, राग-द्वेष के काँटे उसकी कुछ भी हानि नही कर सकते।

भविष्यदत्त चरित:—

कमल श्री सेठानी को ही देखो। उसने सद्गुरुओं का उपदेश सुना था तो वह संकट के समय मे भी अपने चित्त को

स्थिर रखने में समर्थ हो सकी। कोई साधारण अज्ञान स्त्री होती तो पति के द्वारा त्यागी जाने पर झगड़ा करती रोती और अपने जीवन को भारभूत बना लेती। मगर कमलश्री के ज्ञान ने उससे कहा कि ऐसा करने से तुझे कुछ भी लाभ नहीं होगा। तू शान्ति धारण करके धर्मध्यान मे समय व्यतीत कर। जिन कर्मों के उदय से तुझ पर संकट आया है, उन पर विजय प्राप्त करने का मार्ग यही है। अगर राग-द्वेष करेगी तो वृथा दुःख पायेगी, अपनी जिन्दगी को अभिशाप बना लेगी। कमलश्री ने अपने विवेक की यह बात सुनी और मान्य की तो इस हालत मे भी वह सन्तुष्ट और शान्त रह सकी। यह नहीं, उसने सद्व्यवहार और धर्माचारण करके अपने पुत्र भविष्यदत्त को भी सुसंस्कारी और सच्चरित्र बना लिया। वह बड़ा ही नम्र और आज्ञाकारी था।

बन्धुदत्त से परदेशगमन की बात निश्चित करके वह अपनी माता के पास पहुंचा। बोला—माताजी! मेरा भाई बन्धुदत्त धनोपार्जन के लिए परदेश जा रहा है। मैं भी उसके साथ जाना चाहता हूं।

माता—बेटा! मैं तुझे परदेश नहीं भेजना चाहती। परदेश जाने में आगे पीछे की बहुत-सी बातें विचारनी होती है। फिर परदेश जाना कोई हंसी-मजाक नहीं है। कहावत है—'परदेश कलेश नरेशन को।" अर्थात् सब प्रकार का साधन-सामग्री से सम्पन्न राजा भी अगर परदेश जाय तो उसे भी कष्ट उठाना पड़ता है। फिर साधारण जनो की तो बात ही क्या है? उन्हे तो सैंकड़ो तरह की तकलीफें भोगनी पड़ती है।

भविष्यदत्त—माँ तकलीफों से डरने वाला पुरुष अपने जीवन में कभी तरक्की नही कर सकता। तकलीफें सहन किये बिना आज तक कोई ऊँची श्रेणी पर नही पहुँचा। तकलीफें ही मनुष्य को धैर्यवान् बनाती हैं, सहनशील बनाती हैं. सहनशील और तकलीफें झेल कर ही मनुष्य अपनी शक्ति का विकास कर पाता है। इसलिए आप मेरी तकलीफो का विचार मत कीजिए। फिर मैं अकेला तो जा नही रहा हूं। भाई बन्धुदत्त साथ है और भी बहुतेरे लोग साथ होगे।

माता—बेटा ! तुम्हारा भाई बन्धुदत्त साथ जायगा, इसी कारण तो और भी अधिक विचार करने की आवश्यकता है। तू जानता ही है कि बन्धुदत्त मेरी सौत का लडका है मगर तू यह नही जानता कि तेरी सोतेली माता तेरा उत्कर्ष सहन नहीं करती है। वह तेरी भलाई नहीं चाहती फिर बन्धुदत्त भी तो सरल नही है। वह महाकुटिल और दुष्ट लडका है। उस पर विश्वास कर लेना खतरे से खाली नहीं है। इसके अतिरिक्त बुरे की संगति करने से बुराई आ ही जाती है। कहा है—

आंखें जब चार होती हैं, मुहब्बत आ ही जाती है।
बुरे के पास रहने से, शरारत आ ही जाती है ॥ध्रुव॥

मैं जानती हूं कि तू निश्छल है, सरल और भोला है। कदाचित् संगति का असर न भी पड़ा तो भी उसका सहवास तेरे लिए हितकर नहीं होगा। कोई आश्चर्य नहीं कि मौका पाकर वह तेरी जान ले बैठे !

बेटा ! तुझे संसार का अभी अनुभव नहीं है। सौतों में कभी स्नेह नहीं रहता। एक आदमी की एक पत्नी मौजूद थी, फिर भी वह नाता करके दूसरी स्त्री ले आया। उस आदमी को अफीम खाने की आदत थी और शरीर से भी वह कमजोर था। जब शाम के समय वह थक जाता तो पैर दबाने के लिए कहता। दोनों स्त्रियों में पैर दबाने की बात को लेकर झगड़ा होने लगा यह देख कर उसने पुरानी पत्नी को दाहिना पैर और नयी पत्नी को बायाँ पैर बाँट दिया।

एक शाम को वह आदमी थका हुआ आया। नवीन पत्नी किसी काम से घर से बाहर गई थी। अतः उसने अपनी पुरानी पत्नी से पैर दबाने के लिए कहा। उसने दाहिना पैर दबाना शुरू किया। थोड़ी देर बाद उसने दूसरा पैर दबाने के लिए कहा तो वह बायाँ पैर भी दबाने लगी।

छोटी पत्नी की लड़की वहाँ मौजूद थी। उसने देखा कि बायाँ पैर मेरी माँ का है और उसे यह मुक्के मार रही है ! वह दौड़ी-दौड़ी अपनी माँ के पास गई। उसने माँ से कहा—माँ, जल्दी चलो। बड़ी माँ तुम्हारे पैर को मुक्के मार रही है ! अपनी लड़की से यह समाचार पाकर वह डण्डा लिए दौड़ी आई और बोली-मेरे पैर को मुक्के क्यों मारे ? मैं तेरे पैर को डंडा मारूंगी !

पुरानी पत्नी ने सोचा—मैंने इसके हिस्से के पैर को दबा दिया सो ऐहसान तो मानती नहीं और उलटा मेरे हिस्से को डण्डा मारने के लिए तैयार हो रही है ! क्या बढ़िया ऐहसान का बदला चुका रही है ! इस प्रकार सोच कर और उसकी तीखी

बातें सुन कर उसका क्रोध भी उमड़ आया। पास ही मूसल पड़ा था। उसने मूसल उठाकर कहा— जरा मार तो देख मेरे पैर को! मैं तेरे पैर की चटनी बना दूंगी।

दोनों पत्नियों का झगड़ा सुनकर उस अफीमची का नशा उतर गया! उसने देखा, इन दोनो के झगड़े में मेरी खैर नहो! दोनोमिल कर मेरा कचूमर निकाल देंगी! और कोई उपाय न देख वह जोर से चिल्ला पड़ा! अड़ौसी-पड़ौसी भाग कर आये। उन्होने बीच-बचाव किया तब कही वे शान्त हुई। मतलब यह है कि दो वैद्य और दो स्त्रियां बड़ी भयङ्कर होती हैं। कवि ने ठीक ही कहा है:—

> दोय सिंह वन वसे, दोय हस्ति खम्भ बंधे।
> दोय खड्ग एक म्यान, दोए राजा दल सधे॥
> दोय होय परधान जको, मिली राज गंवावे।
> दोय होय घर नार, नित्य उठ कलह मचावे॥
> एक रोगी दो वेद मूल न जीवे जाय मर।
> कवि गद्द कहे सुन राम हर दो-दो भला न एक घर॥

कमलश्री ने कहा- बेटा! सौतों की ऐसी हालत होती है। ईर्षा की आग उनके दिल मे दहकती रहती है। अतएव तुझे सावधान रहना चाहिए। वत्स! कदाचित् तेरा कुछ अनिष्ट हो जाय तो मेरे लिए और क्या आधार है। मेरा तू ही एक मात्र सहारा है। तेरे पिताजी मुझे चाहते ही नहीं हैं। पीहर में पड़ी टुकड़े खा रही हूँ। इसलिए तू परदेश जाने का विचार छोड़ दे।

भविष्यदत्त ने कहा-माताजी ! आपने जो कहा है; यथार्थ है। परन्तु मैं सावधान हूं, गाफिल नही हूं। तुमने मुझे और अधिक सावधान कर दिया है। देखो मां, अगर मेरी तकदीर सिकन्दर है तो कोई बाल भी बांका नही कर सकता। कहा है-

जितने तारे गगन में. उतने दुश्मन होय।
कृपा होय भगवान् की, बाल न बांका होय ।।

माताजी ! आपको सिद्धान्त की बात मैं क्या बतलाऊं ? आप धर्मपरायण हैं और तत्त्व की बात भलीभांति समझती हैं। मनुष्य को जो भी सुख अथवा दुःख होता है, वह अपने किये कर्मों का ही फल है। अगर मेरे अशुभ कर्मों का उदय आने वाला होगा तो वह आएगा ही। मै चाहे कही होऊं, कर्म अपना फल दिये बिना नहीं मानेगे। और अगर पापकर्मों का उदय आने वाला नही है तो फिर डर ही क्या है ? फिर तो कोई बिगाड़ ही क्या सकता है ?

अगर इस बार मैं बन्धुदत्त के साथ चला जाऊंगा तो उसके हृदय की परीक्षा भी हो जायगी और सदा के लिए शंका दूर हो जायगी।

मां, पिताजी तुम्हें नहीं चाहते, इस बात की तुम चिन्ता मत करो। विश्वास रक्खो कि वह दिन दूर नही है, जब पिताजी को अपने व्यवहार के लिए तुमसे क्षमा मांगनी पड़ेगी। अगर उन्हें क्षमा न मांगनी पड़े तो मेरा नाम बदल देना !

अतएव माता ! निर्बलता का खयाल त्याग दो। मन में किसी भी प्रकार की हीनता की भावना मत लाओ। जब मैं छोटा था तब चिन्ता करतीं तो करतीं, अब तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। प्रसन्न भाव से मुझे परदेश जाने की आज्ञा दो। आपके शुभाशीर्वाद से मैं जल्दी ही लौट आऊँगा और वही कार्य करूँगा जिससे तुम्हारे हृदय को हर्ष हो। तुम्हारे धर्म के प्रताप से आनन्द ही आनन्द होगा।

१२-१०-५१]
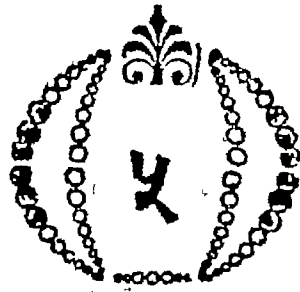
शरीर का सदुपयोग

स्तुति :

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषम्,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवान् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! समस्त दोषों से रहित आपके स्तवन की तो बात ही क्या है, आपकी कथा भी जगत् के जीवों के समस्त पापों को

नष्ट कर देती है। सूर्य तो दूर रहा, सूर्य की प्रभा ही सरोवर में उगे हुए कमलों को विकसित कर देती है।

देखो, भगवान् लोकाकाश के अन्तिम प्रदेशों में, निरंजन पद में विराजमान हैं, यहाँ से करीब सात राजू की ऊँचाई पर हैं और हम लोग यहां हैं। सूर्य और चन्द्रमा वगैरह उतनी दूरी पर नहीं है, जितनी दूरी पर भगवान् हैं। लेकिन स्वच्छ हृदय से अगर भगवान् का स्मरण किया जाय तो स्मरणकर्त्ता के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। जो भगवान् ऋषभदेवजी की कथा सुनता है, करता है और कराता है, उसके घर सुख-शान्ति का वास होता है और उसकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती है। कोई कह सकता है कि भगवान् तो इतनी दूर हैं फिर उनका स्मरण करने से चिन्ताएँ दूर कैसे हो सकती हैं? इसका उत्तर यह है कि सूर्य कितनी ऊँचाई पर है, फिर भी जब वह प्रकाशमान होता है, तो पृथ्वी पर स्थित कमल खिल जाते हैं! सैकड़ों योजन दूर होने पर भी जैसे सूर्य कमलों को विकसित कर देता है, उसी प्रकार भग- वान् अपने भक्तों की आत्मा को आत्मिक गुणों से विकसित कर देते हैं। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्हीं को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि भगवान् वीतराग हैं। वे स्तुति करने वाले पर प्रसन्न नहीं होते और स्तुति न करने वाले पर अप्रसन्न नहीं होते। इसके अतिरिक्त अपनी आत्मा के गुणों का विकास आप ही किया जाता है। कोई किसी की आत्मा को न उठा सकता है, न गिरा सकता है। ऐसी स्थिति

में भगवान् अपनी स्तुति करने वाले भक्तों की चिन्ताएँ दूर करके उन्हे सुखी किस प्रकार बना सकते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि भगवान् किसी को सुख-दुःख नही देते हैं तथापि भगवान् की सेवा करने मे दु.ख दूर हो जाते है। जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक जीव अपने सुख-दु.ख का कर्त्ता स्वयं ही है तथापि निमित्त कारण अलग होते हैं। आत्मिक सुख की प्राप्ति में वीतराग भगवान् निमित्त हैं। भगवान् की विनय-भक्ति और स्तुति करने से हृदय निर्मल होता है और हृदय की निर्मलता ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यो आत्मिक सुख, शान्ति, निश्चिन्तता आदि की वृद्धि भी होती जाती है। यह भगवान् के नाम की महान् महिमा है। इसी अपेक्षा से यहाँ यह बतलाया गया है कि भगवान् जगत् के जीवो के समस्त पापो का नाश कर देते हैं। यह कथन निमित्त कारण की मुख्यता को लक्ष्य में रख कर ही समझना चाहिए।

शास्त्रों में जितना भी कथन है और जो भी वचन बोले जाते हैं, सब पर अनेकान्त दृष्टि से ही विचार करना पड़ता है, क्योंकि वचन नयाश्रित होते हैं। कहा भी है—'जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुन्ति नय वाया।' अर्थात् जितने वचन के मार्ग हैं, उतने ही नय के भेद हैं। वचनो की कोई संख्या नहीं है, अतएव नयो की भी कोई संख्या निश्चित नहीं हो सकती। इस प्रकार नयों के अनन्त भेद होते हैं।

संक्षेप में तात्पर्य यह है कि प्रभु की स्तुति या भक्ति करने से हृदय निर्विकार होता है। हृदय जब निर्विकार हो जाता है तो

उसमें पाप का उदय नही होता। इस कारण प्रभु पाप के नाशक हैं। प्रभु की स्तुति और भक्ति बहुत प्रबल है। वह हमारे अनुभव मे नही आ सकती।

भाइयों! भगवान् ऋषभदेव को हुए असंख्य वर्ष हो चुके हैं, मगर आज उनकी कथा कहते-सुनते हैं तो ऐसा लगता है, मानों अभी हुए हों। कहाँ तक उनकी तारीफ़ करें? अपना कल्याण करना हो तो भगवान् की कथा अवश्य सुनो।

जिन हरि-कथा सुनी नहिं काना,
श्रवण-रन्ध्र अहिभवन समाना।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन्होने भगवान् की कथा नही सुनी, उनके कान साँप के बिल के समान हैं वे कान विषय-विकार रूपी विषधर के प्रवेश करने के लिए हैं। जो कान प्रभु की कथा नहीं सुनते वे किस काम के हैं? उनका होना निष्फल है। इसी प्रकार जिसने गुरुदेव के दर्शन नहीं किये, ससार से विमुख, विषय विकारो से विरक्त, संयम की साधना में सदैव संलग्न, जिन भगवान् के कहे हुए मार्ग पर अग्रसर होने वाले, महाव्रत धारी गुरुओ के दर्शन न किये तो नेत्र निष्फल हैं। हाथ-पैर किस काम के हैं, जो गुरुभक्ति में काम न आये! पैरों से चलकर दर्शन करने न गये और दर्शन होने पर हाथ न जोड़े तो उन हाथों-पैरो-का क्या फल निकला? और वह मस्तक भी किस मतलब का है जो देव और गुरु के चरणो मे झुकता न हो?

देखो, एक आदमी जंगल में मर गया। उसके कलेवर को

भक्षण करने के लिए जंगल के जानवर आए। जंगल में पड़े मुर्दे को जानवर खा जाते हैं। एक शृगाल भी उस कलेवर को खाने के लिए आ रहा था। तब उसे आकाशवाणी सुनाई दी। आकाशवाणी का आशय यह था कि—अरे शृगाल! यह उस निगोड़े का शरीर है जिसने कभी कानो से ईश्वर की कथा नहीं सुनी, आँखो से सद्गुरु के दर्शन नही किये, शरीर से कभी तपस्या नहीं की और हाथो से कभी दान नही दिया जिसने अपना सारा जीवन पाप ही पाप मे बिताया है। उसके पैर कभी धर्मकार्य के लिए नही उठे। उसने जिन्दगी भर शिकार किया है, मांस खाया है, शराब पिया है और मनुष्यो की हत्या की है। इसलिए तू इस पापी का मांस मत खा।

तात्पर्य यह है कि यह शरीर अगर धर्म का आचरण न किया जाय तो पापकुण्ड है। इसलिए भाई! आँखो से कानों से, हाथो से, पैरों से और सारे शरीर से धर्म का आचारण करो। तुम भी कहीं उस आदमी की श्रेणी में मत आ जाना, जिसने अपने शरीर का कुछ भी सदुपयोग न किया हो। शरीर की सार्थकता धर्म-कार्य करने मे है। नहीं तो इसका क्या मूल्य है? कहा है—

गोरो गोरो गात देखि काहे को गुमान करे,
रंग सो पतंग रंग कल उड़ि जायगो।
धुआं केसो धरहर देखतां, न लागे वार,
नदी के किनारे रूख सेंमल उठ जायगो।

बोलता से बोलिये न बोलिए गुमान कर,
यौवन गँवाया पीछे कभी हूँ न पायगो।
मानुष की गंदी देह जीवत ही आवे काम,
मुवां बाद का काग कुत्ता स्यार हू न खायगो॥

अरे जीव ! दर्पण में अपना चेहरा देख देख कर क्यों वृथा घमण्ड करता है ? यह हल्दी और फिटकड़ी का रंग तो तभी तक है जब तक धूप न लगे ! इस शरीर का क्या भरोसा है ? एञ्जिन के धुएँ के गुब्बारे उठते हैं, मगर देखते देखते वह सब कहाँ चले जाते हैं ? उनके गायब होने में ज्यादा देर नहीं लगती। मनुष्य का शरीर भी इसी तरह का है ! सुबह तो बाल संवार कर और छैल भँवर बन कर घूमने गया था और शाम को देखो तो लकड़ियों के साथ—चिता में जल रहा है ! नदी के किनारे का वृक्ष कैसा हरा-भरा होता है ! मगर वह कब तक का ? जब तक नदी में पूर नहीं आता, तभी तक उसकी जिंदगी है ! पूर आया और वह उखड़ कर बह जाता है ! जिस-जिसने जन्म लिया है, सब के लिए यही बात है। सब के साथ यही घटना घटित होने वाली है। कोई मोटा हो या पतला, खूबसूरत हो या बदसूरत, सभी नदी किनारे के पेड़ हैं।

इस छोटी-सी जिन्दगी में किसी के साथ वैर-विरोध मत करो। जिससे बोलो प्रेम से बोलो। अभिमान लाकर मत बोलो। विनय और नरमाई से व्यवहार करो। 'भाई साहब' कह कर बोलो। इस मुख से अमृत झरने दो, विष मत निकलने दो। कभी आवेश में क्रोध में या असावधानी में कोई कठोर वचन

किसी के प्रति निकल जाय तो अपनी जीभ को उपालंभ दो। उससे कहो—अरी जीभ! तुझे खाने को तो मीठे-मोठे और नरम गरम गुलाबजामुन चाहिए, मगर उगलते समय यह क्या उगलती है? तू मीठ को कड़ुवा और कोमल को कठोर क्यों बना लेती है? तुझे खाने को मधुर चाहिए तो बोलते समय मीठा क्यों नही बोलती है? खाना अच्छा चाहिए तो बोलना भी अच्छा चाहिये। अगर तुझ से मीठा नही बोला जाता तो तुझे मीठा खाने का क्या अधिकार है?

भाइयों! इस शरीर में जीभ का बडा महत्त्व है। कहना चाहिए कि मनुष्य की इज्जत-आबरू बहुत कुछ जीभ पर निर्भर है। जीभ के द्वारा मनुष्य बहुत प्रतिष्ठा पा सकता है। जो विनम्रतापूर्ण मधुर वचन बोलता है, सब उसके वश मे हो जाते हैं। उसके वचनो की मिठास से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। इसके विपरीत जिसके मुख से कठोर और रूखे वचन निकलते है, वह सर्वत्र अप्रिय होता है, सर्वत्र अनादर पाता है और उसके मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। कहा है—

> कौवा काको धन हरै, कोयल काको देत?
> मीठे शब्द सुनाय के, जग वश में कर लेत।

कौवा बेचारा किसकी पूंजी हर लेता है? और कोयल किसके घर में सोनें की वर्षा कर देती है? वास्तव में न कौवा कुछ लेता है और न कोयल देती है। फिर भी लोग कौवा से घृणा करते हैं और कोयल को प्यार करते हैं। सारे संसार के साहित्य में कोयल को आदर का स्थान मिला है। क्या संस्कृत

भाषा के, क्या हिन्दी भाषा के और क्या दूसरी भाषाओं के साहित्य में, कोयल का अच्छा स्थान है। इसका कारण यही है कि उसकी वाणी मे मधुरता है। वह कानो को प्रिय लगती है। प्रिय वाणी कानो के द्वारा हृदय को हर्षित कर देती है। वाणी के रूप में एक आदमी के मुख से निकला हुआ अमृत, कानो के द्वारा दूसरे आदमी के हृदय मे प्रवेश करके उसे आनन्दित, पुलकित और प्रसन्न कर देता है!

भाइयो! ऐसी वाणी बोलने में तुम्हारी कौन-सी पूंजी खर्च होती है? मधुर वचन बोलने से कोई हानि तो होती नहीं है, उलटा लाभ ही लाभ होता है। फिर क्यों नहीं मधुर वचन ही बोलते! 'वचने का दरिद्रता?' अगर तुम किसी की धन से सहायता नहो कर सकते, तन से सेवा नही कर सकते, तो वचन से ही उसके चित्त को प्रसन्न कर दो। इसका आशय यह मत समझ लेना कि तन और धन से सेवा करने से बच कर सिर्फ जबान से मीठी-मीठी बातें बना देने के लिए मैं कह रहा हूं। मेरे कहने का आशय यह है कि तन और धन से भी यथाशक्य और यथोचित सेवा तो करनी ही चाहिए, किन्तु कदाचित् ऐसा करना शक्य न हो तो मधुर वचनो के बदले कटुक और कठोर शब्दो का प्रयोग तो करना हो नही चाहिए। स्वच्छ और सरल हृदय से, मधुर वचनों के द्वारा किसी दीन-दुखिया को दिया हुआ आश्वासन भी मूल्यवान् होता है।

संसार में वचनों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। उनका प्रभाव भी बहुत विस्तृत होता है। देखो अयोध्या के एक धोबी ने सीताजी के विषय मे कुछ शब्द कह दिये। उन शब्दों का

कितना असर हुआ ? उनसे कितना बडा अनर्थ हो गया ? द्रौपदी ने एक बार दुर्योधन से हँसी हँसी मे कुछ कठोर शब्द कह दिये थे। 'अन्धे का लडका भी अन्धा है' यह शब्द दुर्योधन की छाती में तीर की तरह चुभ गये। इसका क्या परिणाम निकला ! द्रौपदी सहित पाण्डवो को भीषण यातनाएँ भुगतनी पडी, जंगलों की खाक छाननी पडी, अज्ञात वास करना पडा और फिर महाभारत का युद्ध करना पडा। महाभारत के भयानक संहारक युद्ध में भारतवर्ष की अधिकांश शक्ति नष्ट हो गई। बडे बड़े योद्धा मारे गये भाई ने भाई के गले काटे, शिष्य ने गुरु की जान ली ! हजारो विधवाएँ हुई और लाखों बच्चे निराधार हो गये, अनाथ बन गये ! इस भीषण रक्तपात का मूल शब्द ही थे ! आग का एक कण बढ़ते–बढ़ते प्रचण्ड ज्वालाओ का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार यहां भी धीरे–धीरे बात बढ़ती गई और अन्त में घोर अनर्थ हुआ।

कहने का मतलब यह है कि वचनों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। अतः विचारशील पुरुष सदा सोच-समझ कर ही बोलते हैं। जो विवेक युक्त और मधुर वचन बोलेंगे, व जगत् को अपने वश में कर लेंगे, उसी प्रकार जैसे कोयल अपनी मधुर कूक के द्वारा वश में कर लेती है।

वह मनुष्य कितना मूर्ख है जो केवल अपनी बुरी लत के कारण कठोर शब्द कहकर निष्कारण ही अपने शत्रु बना लेता है ? कठोर वचन से घनिष्ठ मित्र को भी शत्रु बनने में देर नहीं लगती। अतएव भाइयों ! अगर अपना हित चाहते हो, सुख चाहते हो, शान्ति चाहते हो और मनुष्य मात्र को अपना मित्र

बनाना चाहते हो तो सरल से सरल उपाय यही है कि तुम अप्रिय कटुक और कठोर शब्द बोलना त्याग दो। इसी में तुम्हारी जिह्वा की सफलता है।

हे भाई! मनुष्य-शरीर अभिमान करने योग्य वस्तु नही है। मनुष्य-जीवन का सर्वोत्तम भाग यौवन है और यौवन कितने दिनों का है एक कवि कहते हैं—

गिरिनदी वेगोपमं यौवनम्।

अर्थात्—यौवन पहाड़ी नदी के समान है।

जब वर्षा होती है तो पहाडी नदी बड़ी तेजी के साथ बहने लगती है। मगर थोड़ी ही देर में उसका पूर उतर जाता है। यही दशा जवानी की है। जवानी जाते भी देर नही लगती। और जिन्होने अपनी जवानी पकड़ ही पकड मे बिताई है, उन्हें जवानी बीत जाने पर कोई टके सेर नही पूछता! दीवान साहब रिटायर्ड हो चुके हैं। अब बाजार में होकर निकलते हैं तो कोई राम-राम भी नहीं करता! इसलिए जवानी का घमण्ड मत करो।

दो नवयुवक एक पान वाले की दुकान पर आये। वहाँ पास मे एक बूढ़ा खड़ा था। उन्होने दोनो तरफ से उसे धक्के देकर गिरा दिया। बूढ़ा गिर पड़ा और जमीन पर पड़ा-पड़ा हसने लगा। यह विचित्र स्थिति देखकर एक ने पूछा-बाबा! गिर कर भी हँसते क्यो हो? बूढ़े ने उत्तर दिया-जिस समय मैं जवान था, मुझ में इतनी ताकत थी कि तुम दोनो को एक ही धक्के मे गिरा सकता था, मगर वह वक्त निकल गया!

ख्याल आता है मुझे दिलजान तेरी बात का
फिक्र तुझको है नहीं आगे अंधेरी रातका।
यौवन तो कल ढल जायगा दरियाव है बरसात का,
बेर न खावें कोउ एक रोज तेरे हाथ का ।।

बुड्ढा कहता है—हे नवयुवकों ! मुझे तुम्हारा खयाल आता है ! जैसे आज मेरे सामने अंधेरा है वैसे ही तुम्हारे सामने भी आएगा। माथे के ऊपर के काले बाल सफेद हो जाएँगे, पर बालों की वह कालिमा नजर के सामने आ जाएगी। सारे शरीर का रंग बदल जाएगा। जवानी पहाडी नदी के पूर के समान थोड़ी ही देर मे समाप्त हो जायगी और हालत ऐसी हो जायगी कि तेरे हाथ का कोई बेर खाना भी पसंद नही करेगा। इसलिए, भाइयो ! तुम लोग जवानी का घमण्ड मत करो।

बड्ढे की बात सुन कर उन नवयुवकों को खयाल आया-ओह ! इनकी बात सच है ! अवश्य ही एक दिन हमे भी इस अवस्था मे आना पडेगा ! फिर जवानी का क्यो अभिमान किया जाय ? वे दोनो अपनी मूढ़ता के लिए पश्चात्ताप करने लगे। उन्होने बूढे से क्षमायाचना की। बूढ़े ने कहा—भाई यह तुम्हारा दोष नही, यह तो जवानी की करतूत थी ! लोग धक्का खाकर सावधान होते हैं, मगर तुम धक्का देकर सावधान हो गये ! यही खुशी की बात है।

भाइयों ! इसलिए मेरा कहना है कि पुण्य के योग से तुम्हें सुन्दर, सबल और स्वस्थ शरीर मिल गया है, तो अभिमान मत

करो। शरीर में अभिमान करने की बात है भी क्या ? अगर शरीर की असलियत का विचार किया जाय तो यही नतीजा निकलता है कि देह अपवित्र है, अपावन है, कम से कम अभिमान करने योग्य तो नही है। देखो न, कैसा मल का पुतला है यह शरीर ! नाक मे से रेंट झरता है, आखो मे से गीड़ निकलता है, मुँह में से कफ तथा थूंक निकलता है, एक तरफ से मल और एक तरफ से मूत्र पडता है ! भला ऐसा चीज का अभिमान क्या ? जब तक इसमे चेतनदेव विराजमान हैं, तभी तक यह काम का है ! चेतनदेव ने अपना डेरा उठाया कि यह वेकाम हुआ। फिर घर वाले भी इसे ज्यादा देर घर में नही रहने देते ! जल्दी ही श्मशान में ले जाकर भस्म कर देते हैं।

हां, जब तक आत्मारामजी इसमें बैठे हैं यह काम का है। तभी तक इसका सदुपयोग कर लेना चाहिए। इससे जो जो प्रयोजन साधना हो, साध लेना चाहिए। अन्त में तो यह चमड़े की पुतली है:—

> चामड़ा का हाथी घोड़ा चामड़ा का ऊँट ।
> चामड़ा का वाजा वाजे चारों ही खूंट ।
> म्हारो चामड़ा की पुतली भजन करले ।।

जहां देखो चमड़े का ही राज्य है ! चमडे के ही हाथी, घोड़े वैल, गाय और वछड़े आदि हैं। दूध दुहने वाला भी चमड़े का और पीने वाला भी चमड़े का है !

मिट्टी के वरतन को हिफाजत से रक्खा जाय तो दो सौ वर्ष तक चल सकता है, किन्तु इस शरीर को बादाम का हलुआ

खिलाओ तो भी यह रहने वाला नहीं है। फिर इस पर मान-गुमान कैसा ! तुम पीली पगड़ी बाँध कर अभिमान करते हो, लेकिन यह पगडी क्या तुम्हारे बाप की है ? कपास से जाकर पूछो वह क्या कहता है ? वह कहता है कि हमें नोच-नोच कर ले गए और फिर अभिमान करते हैं ! फिर भी मिजाज है तो मत पहनो ! न पहिनोगे तो भूत सरीखे दीखोगे।

तुम कहते हो—हमारे पास सोना है ! मगर जमीन कहती है—मगता कहीं का ! हमारी छाती खोद कर ले गया है और फिर अहंकार करता है !

अगर तुम अपने उत्तम और मूल्यवान् शाल-दुशाले के लिए अभिमान करो तो भेड कहेगी—देखो, गडरियो ने हमारी जामत की उसमे जो बाल निकले, उनसे दुशाला तैयार हुआ और उस पर यह जनाब फूले नही समाते !

भाई तुम्हारे पास तुम्हारा क्या है ? अपनी किस चीज पर तुम इतराते हो ? यह सब तो मांगी हुई या लूटी हुई चीजें हैं। आपके पास अपनी निज की क्या चीज है जिस पर अभिमान कर सको ?

चीजां पांचों ही पराई लाड़ा मरोड़ घनी ।
पगड़ो मोड़ तुर्रा जामो परायो,घोड़ो पराई लाड़ा मरोड़ घनी ॥

पगड़ी मौड़, तुर्रा, भग्गा और घोड़ी—सभी कुछ मांग कर लाया है, मगर दूल्हा राजा चलते हैं ऐसे अकड़ कर कि मत

पूछो बात ! मगर मांगी हुई चीजों पर पकड़ कैसी ? क्या समझदार को यह शोभा देती है ?

ससार के प्राणियो ! मागी हुई चीजो पर ऐंठने वाले बीदराजा को तुम मूर्ख कहोगे। ठीक है, पर जरा अपने सम्बन्ध में भी तो सोच देखो ! अपना मुंह भी तो काच में देख लो ! तुम अपनी जिस सुन्दरता का अभिमान करते हो, क्या वह तुम्हारी है ? अगर तुम्हारी है तो तुम्हारी इच्छा के बिना, बुढ़ापा आने पर वह क्यो चली जाती है ? अरे भाई, तुम स्वयं पराये पुद्गलों पर ऐंठ रहे हो और दूसरे की ऐंठ पर हँस रहे हो ! कहावत है—परघर कूदे तीन जना, वकील, वैद्य और दलाल ! वैद्य, वकील और दलाल पराये घर के भरोसे कूदते है ! तुम पराये भरोसे मत कूदो। जरा गम्भीरता से सोचो—संसार की कोई भी चीज अपनी नही है। यहाँ तक कि शरीर भी अपना नहीं है।

आप कहेगे—साहब, शरीर तो हमारा ही है। बचपन से ही इसकी हिफाजत की है। लड्डू, जलेबी, दूध, रबडी आदि-आदि खिलाया है, कोट बूंट, आदि पहनाये हैं। किसी प्रकार की कसर नही रक्खी ! नहलाया, धुलाया, सुगन्धित इत्र, सेन्ट और तेल से पूजा की। जहा कही जाते हैं, इसे लाद कर ले जाते हैं। फिर भी यह शरीर हमारा नही तो क्या पराया है ? बात ठीक है, निस्सन्देह तुम शरीर के गुलाम बने हुए हो। सब प्रकार से इसकी चाकरी करते हो। धर्मक्रिया करने में देर भले हो जाय, मगर शरीर का शृङ्गार करने में देर नही करते हो। इस शरीर के पीछे तुमने अपना सारा जीवन बर्बाद कर दिया है। इसीलिए तुम समझते हो कि यह शरीर मेरा है। मगर इस बेईमान से

इतना तो कहो कि मैंने सारी जिन्दगी तेरी गुलामी की है तो एक बात तू मेरी भी मान ले। और वह छोटी सी बात यह है कि मस्तक पर एक भी सफेद बाल मत आने देना ! क्या तुम्हारा शरीर तुम्हारी इतनी-सी बात मान लेगा ?

'नहीं, महाराज ! नही मानेगा !'

तो फिर भाई, क्यों इसके पचड़े में पड़े हो ? क्यों इसके पीछे अपना अनमोल जीवन गँवा रहे हो ? क्यो आत्मा को भूल रहे हो ? शरीर के ऊपर अपनी आत्मा क्यो निछावर कर रहे हो ? सामायिक करो, पौषध करो, ईश्वर भजन करो, दान दो, शील पालो, स्वाध्याय करो, धर्मोपदेश सुनो, माला जपो। जब जानते हो कि यह हमारा नही है तो फिर क्यों इसकी गुलामी कर रहे हो ? कब तक गुलामी करते रहोगे ? धन्य है उन मुनिराजो को जो—

अवि अप्पणो वि देहमि नायरन्ति ममाइये।

—दस. अ. ६

अपने शरीर में भी ममत्व का भाव नही रखते। जिन्होंने अपने शरीर को भी पराया समझ लिया है। ऐसे मुनिराज भी शरीर को खुराक तो देते हैं, परन्तु देते हैं इसी उद्देश्य से कि यह आत्म कल्याण मे सहायक बना रहे। और यही कारण है कि जब वे देखते हैं कि शरीर अब आत्मार्थ की साधना मे उपयोगी नही रह गया है, तब वे सहर्ष उसका उत्सर्ग कर देते हैं।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ॥
—उत्त. अ. १९ गा. १२

यह शरीर अनित्य है अशुचि है, अशुचि से ही बना हुआ है और अशुचि से बडा हो रहा है। चूंकि यह अशुचि से ही बना है, इसी कारण पचास घडो के जल से स्नान करा दिया जाय और सौ वार कुल्ला कर लिया जाय और दो घड़ी बाद ही सूंघा जाय तो बदबू ही निकलेगी ! अशुचि होने पर भी यह सदा ठहरने वाला नही है। थोडे दिनों का ठिकाना है। और थोड़े दिनो तक भी कहां ठीक तरह से ठहरता है ? यह तो नाना प्रकार के दु.खो और क्लेशो का घर है। रेल के आने का समय और जाने का समय तो निश्चित होता है, मगर इस शरीर के जाने का कोई भी समय निश्चित नही है। ऐसी स्थिति मे बुद्धिमान् पुरुष वही है जो यह सोच लेता है कि इस शरीर से जो भी आत्म-कल्याण साधा जा सके, साध लेना चाहिए। इस काची काया का क्या ठिकाना है ?

काया काचीरे कर, धर्मध्यान मैं कहूँ छूँ साचीरे ॥टेर॥
देखी सुन्दर काया कर, जामें जीव रह्यो राचीरे ।
भीतर भंगार है बाहर कलि, या लीजे जाचीरे ॥ १ ॥

सचमुच यह शरीर बिलकुल कच्चा है, काच से भी कच्चा है कच्ची मिट्टी के वर्त्तन से भी ज्यादा कच्चा है। कच्ची मिट्टी का वर्त्तन ठोकर लगने पर ही नष्ट होता है, मगर इसके नष्ट होने से

ठोकर लगने की जरूरत भी नहीं होती। जजसाहब कुर्सी पर बैठे-बैठे ही ढेर हो जाते हैं और सेठजी मसनद का सहारा लिये ही लेटे रह जाते हैं! जब यह शरीर इतना कच्चा है तो इससे धर्म ध्यान कर लेना ही सच्चा है। शरीर के ऊपरी भाग की सुन्दरता को देख-देख कर मनुष्य राजी होता है कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है! मगर भीतर तो पोलमपोल है! उसकी ओर यह कभी ध्यान ही नही देता! अगर उस ओर ध्यान दिया जाय तो अहकार चूर-चूर हो जाय!

गुलाब मोगरा का अत्तर डारी, मूंछां बट्ट लगावे रे।
केसर चन्दन को तिलक लगा, सैलों में जावेरे॥

तू गुलाब और मोगरे का इत्र लगाता है और मूछो मे बट लगाता है! और फिर अधिक सुन्दरता का प्रदर्शन करने के लिए केसर और चन्दन की टीकी लगाता है।

सियाला में बादाम का हलवा, उन्हाले भांग ठंडाई रे।
चौमासा में खावे मिठाई, बागां में जाई रे॥

इस नन्ही-सी, मगर अनेक अनर्थों की मूल जीभ को प्रसन्न करने के लिए तथा शरीर को पुष्ट और सबल बनाने के लिए शीतकाल मे बादाम का हलुवा खाता है, गर्मी के मौसम में भग और ठडाई घोट-घोट कर पीता है और जब चौमासा वर्षाकाल आता है तो मंडोर (जोधपुर का समीपवर्त्ती एक रमणीय स्थान) जाकर माल उडाता है! मगर मित्र! इसे चाहे जितना खिलाओ, पिलाओ, सर्दी-गर्मी से बचाओ, कितनी ही सावधानी

से इसकी रक्षा करो, मगर नहीं टिकेगा, नहीं टिकेगा। यह एक दिन छोड देना पड़ेगा।

सनत्कुमार चक्रवर्त्ती की प्यारी देह पलटावेरे।
काया के वश हो वन का हाथी दुख उठावेरे॥

सनत्कुमार चक्रवर्ती का रूप कितना सुन्दर और मोहक था! उन्हे अपने रूप का अभिमान आ गया। देखते—देखते वह रूप कुछ का कुछ हो गया! तो भाई, शरीर के बदलते क्या देर लगती है?

जोधपुर—नरेश सरदारसिंहजी ने आदेश दिया कि फाग की ऐसी तैयारियां करो जैसी कभी न हुई हो। ऐसी सवारी निकाली जाय कि पहले कभी न निकली हो। जिन्होने महाराणा के घर मे तोरण बाधा और सीसोदिया वश की कन्या का पाणि-ग्रहण किया, उनके पुण्य मे क्या कमी थी? उन्होने रुपयों को पानी की तरह बहा कर फाग की तैयारी करवाई। मगर उन्हे या और किसी को क्या खबर थी कि वे फाग नही खेल सकेंगे और फाग की सवारी निकलने से पहले ही कालूसिहजी (यमराज) की सवारी आ धमकेगी? राजा के मन की मन मे ही रह गई और उसी दिन उनकी सवारी दूसरे ही रूप मे निकली।

भाइयों! इस शरीर का क्या ठिकाना है। यह तो अभी है और अभी नही है। इसलिए इससे कर लिया सो काम और भज लिया सो राम! और कहा है—

इस काया का क्या विश्वास, पानी बीच पताशा रे।
होली जैसे देवे फूंक, जावे जब श्वासा रे॥

पानी में शक्कर के पताशे को गलते क्या देर लगती है? जैसे लोग होली को फूंकते हैं, वैसे ही कुटुम्बी जन श्वास निकलते ही फूंक देंगे।

उत्तम मनुष्य की काया ऐसी, फेर, ले कब पाछी रे।
दया दान तप करणी करले, याही आछी रे।

जो पुरुष काया के स्वरूप को सही तौर पर समझ चुके हैं, जो विवेकवान् हैं और आगे की बात सोचने वाले हैं, वे इस काया से खूब सार निकाल लेते हैं। शरीर से जो भी लाभ उठाया जा सकता है, वह उठा लेते हैं। भाइयो! अगर आप भी ज्ञानवान् हैं तो तत्त्व की बात समझो। अभी जिस विषय पर मैं कह रहा हूं, वह कोई गूढ विषय नहीं है वह ऐसा नहीं है कि जिसे आप समझ न सकते हों। यह ऐसी बात है जिसकी सत्यता प्रत्यक्ष से प्रमाणित हैं। इसकी सचाई के प्रमाण खोजने के लिए कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिदिन इसकी पुष्टि करने वाले प्रमाण मिलते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में प्रमाद करना उचित नहीं है। शरीर से जितना भी लाभ उठाया जा सके, उठालो और जल्दी ही उठालो। फिर यह अवसर जल्दी नहीं मिलने का!

प्रश्न हो सकता है, कि शरीर की सफलता क्या है? इससे वास्तविक लाभ क्या उठाया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है कि "दया दान तप करणी करले, याही

आच्छीरे" बस इसी मे जीवन की सार्थकता है। खान-पान और भोगोपभोग करने मे जो अपने शरीर की सफलता समझेंगे, उन्हे घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा, उनका भविष्य अमगलपूर्ण होगा।

भाइयो ! मूल बात यह चल रही थी कि भगवान् की भक्ति करने मे ही इस शरीर की सार्थकता है। कान आँखे, हाथ, पैर और समस्त शरीर भगवान् भक्ति करने के लिए ही मिले हैं। अगर इन्हे पाकर भगवान् की विशुद्ध भक्ति नही की तो आपको पछताना पडेगा। आपको कहना होगा—

काचमूल्येन विक्रीतो हन्त ! चिन्तामणिर्मया।

अफसोस ! मैंने हाथ आये हुए चिन्तामणि को काच की कीमत मे बेच दिया !

अतएव शरीर का पूरी तरह उपयोग कर लो। खूब धर्म करो। भगवान् की कथा सुनो, सुनाओ। भगवान् के नाम रूपी मत्र मे ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उसके प्रभाव से चिन्ता रूपी डाकिन और दुःख-क्लेश रूप भूत-प्रेत सहसा भाग जाते हैं। भगवान् का नाम अलौकिक मत्र है। वह समस्त रोगो को दूर करने के लिए अमृत-रसायन है। प्राचीन काल के उदाहरणो को याद करो। भगवान् की भक्ति करके बडे बड़े पापियो ने भी अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया ! अर्जुन माली और प्रभव का वृत्तान्त मैं तुम्हे सुना चुका हूँ। वे परमसुख के अधिकारी किस प्रकार बने ? उन्होने इसी परम रसायन का सेवन किया था। तुम भी इसका सेवन करो।

भविष्यदत्त चरित—

भविष्यदत्त की माता कमलश्री स्वयं भगवद्भक्ति करके अपना समय व्यतीत करती है। भविष्यदत्त ने जब परदेश जाने के लिए बहुत आग्रह किया और जब उसे मालूम हुआ कि इसे रोकना अब उचित नही है, तो उसने कहा—बेटा ! तेरा उत्साह प्रशसनीय है। मेरा हृदय तो नही चाहता कि तू परदेश जाय, किन्तु यदि तेरी तीव्र इच्छा है तो मैं रोकना भी उचित नहीं समझती। परन्तु एक बात गाठ में बाध लेना। वह यही कि भगवान् को मत भूलना। प्रभु की भक्ति करते रहना।

बेटा ! शीघ्र सकुशल वापिस लौट आना और अपनी दुखिया माता की सुधि लेना देखना, बन्धुदत्त तेरा भाई है। वह कदाचित् गलत रास्ते से जाय तो भी उसे छेह मत देना। अपनी ओर से सदैव उसे प्यार करना। और-और परिवार मिल जायगा, मगर भाई मिलना कठिन है। भाई के समान संसार मे और कोई नही है। इस सम्बन्ध मे तुम राम और लक्ष्मण का आदर्श अपने सामने रखना। राम की माता कौशल्या थी और लक्ष्मण की माता सुमित्रा। दोनो सौतेले भाई थे, ठीक उसी प्रकार, जैसे तुम और बन्धुदत्त हो। मगर उनमे आपस मे कितना प्रेम था ? जब रामचन्द्रजी वनवास के लिए अयोध्या त्याग कर जाने लगे तो लक्ष्मण से अयोध्या मे नहीं रहा गया। उन्होने अपने भाई के प्रेम के कारण वनवास जाने का निश्चय किया और अन्त तक उनका साथ दिया। वे दोनो दो शरीर एक प्राण की कहावत चरितार्थ करते थे। इसी प्रकार तुम दोनो भी यही व्यवहार करना।

एक बार फिर याद दिलाती हूं, बेटा ! परदेश में देव, गुरु और धर्म ही तुम्हारे लिए मंगलकारी और शरणभूत होगा। अतएव तुम इन तीनों के शरण मे ही रहना। अरिहन्त देव, पाच महाव्रतों का पालन करने वाले गुरु और दयामय धर्म को अपने अन्त करण मे सदैव जागृत रखना। पल भर के लिए भी मत भूलना।

भाइयों ! भविष्यदत्त की माता उसे देव, गुरु और धर्म को स्मरण रखने की प्रेरणा कर रही है। यह प्रेरणा क्या भविष्यदत्त के लिए ही है ? या आपके लिए भी है ? आज कई लोग व्यापार के लिए बाहर जाते हैं तो अपने धर्म को ही भूल जाते हैं। सामायिक-प्रतिक्रमण करना भी छोड देते हैं। मगर यह उनकी भयानक भूल है। दुनिया छूट जाय तब भी धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए।

गुजराती और काठियावाड़ी भाई चाहे कितनी ही दूर क्यों न चले जाएँ परन्तु अपने धर्म को नहीं छोडते हैं। जब हम दक्षिण मे गये तो सेवबा में छह घर काठियावाड़ी गृहस्थो के थे। उन्होने हमें एक दूसरे मकान में ले जाकर ठहराया। मैंने उनसे पूछा— धर्मध्यान करने के लिए यहाँ कोई अलग मकान नही है ? तब उन्होने कहा—हमारा ऐसा भाग्य कहां है महाराज ? हमे बहुत लज्जा मालूम होती है, मगर करें क्या ?

चार वर्ष बाद हम उस गांव मे दूसरी बार गये तो क्या देखते हैं कि धर्मध्यान करने के लिए दो मंजिला मकान तैयार है ! पुरुषों के लिए अलग और महिलाओं के लिए अलग गुंजाइश है।

कहने का आशय यह है कि जहा चाह है वहा राह है। धर्म की वास्तविक लगन हो तो कोई कठिनाई आडी नहीं आती। कई भाई कहते हैं—महाराज! क्या करें सामायिक करने की फुर्सत ही नही मिलती है। लेकिन मैं कहता हू कि ऐसा कहने वाले मगर महाराज को भुलावे मे नहीं डालना चाहते तो स्वयं भुलावे मे पडे हुए है। वे धोखे मे है। असली बात उन्हें मालूम नही है। वह यह कि सामायिक करने की लगन ही उनके दिल में नहीं लगी है। हृदय मे सामायिक करने की प्रबल भावना यदि जाग उठे तो समय कहां भाग गया है? वह मिलेगा क्यो नही, उसे तो मिलना ही पड़ेगा। मैं भारत के बहुत से प्रान्तों में घूमा हूं और बहुत लोगो से मिलने और बातचीत करने का अवसर मिलता रहता है। अपने इतने भ्रमण-शील जीवन में मैंने एक भी आदमी ऐसा नहीं देखा जिसे भोजन करने का समय न मिलता हो। किसी ने यह शिकायत मेरे सामने नहीं कि—'महाराज! क्या करें, भोजन करने का समय नही मिलता, और इस कारण भोजन किये बिना ही रहता हूं।' इस प्रकार भोजन करने का समय तो सभी को मिल जाता है, मगर धर्मध्यान करने का समय नही मिलता। इसका कारण क्या है? असली कारण यही है कि भोजन को उन्होने आवश्यक समझा है, मगर भजन को आवश्यक नहीं समझा है। शरीर को खुराक देना उनके लिए अनिवार्य है, मगर आत्मा को खुराक देना अनिवार्य नही है। वे समझते हैं कि अगर भोजन न किया तो व्यापार करना व्यर्थ हो जायगा मगर वे यह नही समझ पाते कि अगर धर्मध्यान, भगवद्-भजन न किया तो सारा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा!

भाइयों! पुद्गलानन्दी मत बनो। तुम शरीर नही हो,

आत्मा हो। जरा आत्मा की तरफ भी देखो। इसे भूले रहोगे तो आगे चलकर तुम्हारी क्या दशा होगी? भजन को भोजन से अधिक न समझ सको तो कम से कम भोजन के समान आवश्यक तो समझो।

इसीलिए भविष्यदत्त की माता ने उससे कहा—बेटा! परदेश जाते हो तो जाओ, मगर धर्म को साथ रखना। धर्म ही वास्तव में कल्याणकारी है। धर्म से यह लोक सुखमय बनता है। धर्म के प्रताप से ही ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं। धर्म समस्त मंगलो का मूल है। धर्मो रक्षति रक्षितः। तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।

पुत्र! धर्म की रक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण बात शील की है। छोटी, बराबरी की या बड़ी स्त्री हो तो उसे अपनी बेटी, बहिन और माता के समान समझना।

बहुत से लोग परदेश जाते हैं कमाई करने के लिए, मगर शील न पालने के कारण गांठ की पूंजी गँवा बैठते हैं। धनसम्पत्ति तो गवाते ही हैं, तनसम्पत्ति से भी हाथ धो बैठते हैं और अन्त में जीवन को भी गंवा देते हैं। कई-एक दुराचार के कीचड़ में फंसकर बम्बई की खाडी मे डूब मरते हैं. कई जीते जी ही नारकीय वेदनाए भोगते हैं। भयंकर बीमारियाँ खरीद लेते हैं और वे ऐसी चिपटती हैं कि प्राण लेकर ही पीछा छोडती हैं।

कमलश्री कहती है—बेटा भविष्यदत्त! एक बात की ओर और तेरा ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। तू कमाई करने के लिए ही परदेश जा रहा है, मगर याद रखना कि न्याय-नीति से

ही कमाई करना।अनीति के सौ रुपयों से नीति का एक पैसा भी अधिक सुख, सन्तोष और शान्तिदायक होता है। नीति की सम्पत्ति आत्मा को सन्तोष प्रदान करती है जब कि अनीति की कमाई आत्मा को सन्तोष पहुंचाती रहती है। नीति से अगर एक पैसा भी तुम्हारे पास आएगा तो वह तुम्हारा होकर रहेगा। अनीति से आया हुआ विपुल द्रव्य भी तुम्हारा होकर नहीं रहेगा और आएगा तो गांठ की पूंजी को साथ लेकर चला जायगा। इसलिए गृहस्थ के लक्षण बतलाते हुए सर्वप्रथम न्यायोपात्तधनः कहा गया है। अर्थात् गृहस्थ का सर्वप्रथम लक्षण यह है कि गृहस्थ न्याय–नीति से धन का उपार्जन करे। कहा है—

अन्यायोपार्जितं वित्तं, दशवर्षं हि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे, समूलं हि विनाश्यति ॥

अन्याय का धन दश वर्ष तक ठहरता है। ग्यारहवां वर्ष लगने पर मूल-पूंजी को भी साथ लेकर नष्ट हो जाता है। इसलिए हे पुत्र! तू नीति का त्याग मत करना। कदाचित् ऐसा अवसर आ सकता है जब तुझे ऐसा प्रतीत हो कि अनीति का आचरण करने से बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल सकती है और नीति पर कायम रहने पर कुछ भी नहीं मिल सकता। तो ऐसी स्थिति मे भी तू नीति पर ही दृढ़ रहना। अन्त मे इसका परिणाम सुखदायी ही होगा, इस बात में सन्देह मत करना।

बेटा! व्यापारी का आदर्श दूसरों को कष्ट पहुंचा कर अपनी तिजोरियां भरते रहना नहीं है। गरीबों को चूसना व्यापारी का कर्त्तव्य नहीं है। जनता के अभाव को दूर करने के लिए व्यापार

की प्रथा चलाई गई थी। एक जगह कोई चीज आवश्यकता से अधिक होती है और दूसरी जगह इतनी कम होती है कि उसके अभाव मे जनता को भारी कष्ट भुगतना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे व्यापारी एक जगह से दूसरी जगह वस्तुएं पहुँचा कर सब को सुविधा कर देता है और उसी मे से अपने निर्वाह के लिए उचित मुनाफा ले लेता है। मान लीजिए -जोधपुर रियासत मे, सांभर मे नमक बहुत बनता है और अनाज नही होता और दूसरी जगह अनाज बहुत पैदा होता है, मगर नमक नहीं होता। अगर जहां की चीज वही रहे और इधर-उधर न भेजी जाय तो परिणाम क्या होगा? लोगो को कितनी असुविधा होगी? सांभर के लोग नमक फांक कर अपना काम नहीं चला सकते और दूसरे लोग नमक के बिना काम नही चला सकते। दोनो के पास एक २ चीज जरूरत से ज्यादा है और दोनो को दूसरी चीज की आवश्यकता है। बस, इसी आवश्यकता की पूर्ति करना व्यापारी का कार्य है।

इस भावना के साथ व्यापार करने वाला समाज की बड़ी सेवा करता है। इसके विपरीत अगर व्यापारी स्वार्थी बन जाता है तो व्यापार मे अनीति का प्रवेश होता है। समाज की व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होती है और जनता व्यापारियों को अपना शत्रु समझने लगती है। आज यही विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसी कारण व्यापारियों का व्यापार सरकार अपने हाथो में ले रही है। भारत के व्यापारी अगर समय रहते सचेत न हो गये तो उन्हे बहुत पछताना पड़ेगा।

भविष्यदत्त की माता बहुत समझदार थी। उसने अपने पुत्र को जाते समय इस प्रकार का उपदेश दिया। आज—

कल बेटी जब ससुराल जाती है तो माता पिता उसे 'सीख' देते हैं। मगर वह सीख क्या होती है? कपड़े-लत्ते और गहने! मगर सच्ची 'सीख' यह नही है । सच्ची 'सीख' यही शिक्षा है जो भविष्यदत्त की माता उसे दे रही है!

जब कभी मैं विचारता हूँ तो समाज की वर्त्तमान स्थिति आश्चर्यजनक मालूम होती है। न जाने लोगों का मानस कैसा हो गया है कि पैसे के सिवाय और किसी चीज का महत्त्व ही लोग नही समझते! सर्वत्र पैसे-पैसे की ही पुकार है! जहां देखो वहाँ पैसे की ही भूख है! और पैसे का ही सम्मान-सत्कार है। कोई गरीब विधवा अपनी लडकी को अत्यन्त सुसंस्कार प्रदान करती है, सदाचारिणी बनाकर और उत्तम से उत्तम शिक्षा देकर सुसराल भेजती है, तो उसकी कोई कीमत नही है। अगर वह यह सब न करे और दहेज में सम्पत्ति दे द तो उसकी कीमत समझी जाती है। लोगों में 'मिलनी' होती है तो पैसों की, 'सीख' दी जाती है तो पैसों की! मानो आज का समाज एक मात्र पैसे का ही पुजारी बन गया है उसके सामने और किसी भी वस्तु का कोई मोल नहीं है।

भाइयो! विचार तो करो कि इस पैसा-प्रधान मनोभावना से तुम्हारा सुख बढा है या घटा है? जीवन में शान्ति का संचार हुआ है अथवा अशान्ति की आग ही सुलगती जा रही है? अरे, पैसा देव नही, दानव है, इससे तुम्हे सुख नहीं मिलेगा, बल्कि यह तुम्हारे सुख को छीन लेगा। मगर यह बात तुम्हारे गले कहां उतर रही है? आंखों देखते भी जो अनजान बना रहता है, उसका कोई क्या करे?

धन्य है भविष्यदत्त जिसे ऐसी धर्मशीला माता मिली ! बहिनों ! जब तुम्हारा पुत्र परदेश जाता है तो तुम उसे क्या शिक्षा देती हो ? गोखरू और करधनी बनवाकर ले आने की फरमाइश करती हो कि भविष्यदत्त की माता की तरह उसे जीवन को आदर्श बनाने की सीख देती हो ? याद रक्खो, यह चरित तुम्हे इसीलिए सुना रहा हूँ कि कमलश्री के चरित से तुम कुछ शिक्षा ले सको। उसका चरित आदर्श है और तुम उससे शिक्षा लोगी, उसी ढाचे मे अपने जीवन को ढालोगी तो निहाल हो जाओगी। इसे याद रखना। जब तुम्हारा बेटा, भाई या पति अथवा कोई भी सम्बन्धी परदेश जाने लगे तो उसे ऐसी ही सत्शिक्षा देना। इससे उसका जीवन उत्तम और आदर्श बनेगा और फलस्वरूप तुम्हे भी सुख शान्ति प्राप्त होगी। अगर इसके विरूद्ध जैसे-तैसे धन कमा लाने की प्रेरणा करोगी और नीति-अनीति को भुला देने की बात कहोगी तो वह भी बर्बाद होगा और तुम भी बर्बाद हो जाओगी, साथ ही सारे समाज को भी हानि उठानी पड़ेगी।

माता कमलश्री की शिक्षा सुनकर भविष्यदत्त ने कहा— माताजी ! समय-समय पर आप सदाचार की जो शिक्षा मुझे देती रही हैं और आज फिर आपने जिन बातो को याद दिलाई और सीख दी है, उन सब के लिए मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ। आप विश्वास रखिए, जब तक मेरे दम मे दम है, मैं अपने धर्म का परित्याग नही करूँगा। जमा खातिर रखना मां, मेरे चित्त मे पाप नही आने पाएगा। मैंने सातो कुव्यसनो का त्याग कर दिया है। आपने एक दिन पहले ही कहा था—

जुवा खेलना मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार ।
चोरी पर रमणीरमण, सातों व्यसन निवार ।।

सो मैंने इन सातों को छोड़ दिया है। मैं समझ गया हूँ कि यह सातों दुर्व्यसन मनुष्य-जीवन को नष्ट कर देने वाले हैं! इनमे से एक-एक व्यसन के वशीभूत होकर बड़े बड़े पुरुषो ने महान् कष्ट और संकट झेले हैं। युधिष्ठिर धर्मराज कहलाते थे और अजात-शत्रु भी कहलाते थे, मगर जुआ खेलने के कारण अपना राज्य खो बैठे और वनवास करने को विवश हुए। राजा नल का भी यही हाल हुआ। उसने भी अपना राज्य गँवा दिया।

इसी प्रकार मांस खाना भी घोर आपत्तियों का कारण है। मांस-भक्षण बड़े से बडा पाप और अत्याचार है। हाय! मनुष्य जिस पेट को चार रोटियों से भर सकता है, उसी पेट के लिए पचेन्द्रिय जीवो का घात करने में संकोच नही करता! वह मांस भक्षण करके जगली जानवरों की कोटि में चला जाता है! अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे प्राणी के जीवन को लूट लेना कितना भारी अत्याचार है!

मदिरा-पान भी घोर दुर्दशा का कारण है! मदिरा-पान करने वाले की हालत कितनी बुरी होती है यह कौन नही जानता! शराबी आदमी नशे मे ऐसा बेभान हो जाता है कि उसे अपनी बहिन-बेटी तक से परहेज नही रहता। यदुकुल का और साथ ही द्वारिका का नाश करने वाली यह मदिरा ही तो है! लोक मे निन्दा, परलोक के दुःख, इस के प्रताप से होता है! शराबी का

घर बर्बाद हो जाता है। दुनिया उससे घृणा करती है। कोई भला आदमी उससे बात भी नहीं करना पसन्द करता !

वेश्यागमन की बुराइयाँ तो प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। वेश्या-सेवन कितना घोरतर अनैतिक आचार है ? कितना निन्दनीय कृत्य है ! जिन्दगी को घोर दुःखमय बनाने वाला दुर्व्यसन है ! जिन लोगों को वेश्यागमन की गन्दी आदत हो जाती है वे गर्मी, सुजाक आदि भीषण व्याधियों के शिकार हो जाते हैं और गल-गल करके मरते हैं। वे जीवन भर भयंकर यातनाएँ भुगतते हैं और दूसरे लोग उनके प्रति सहानुभूति के दो शब्द तक नहीं कहते। परलोक में, नरक में जाने पर तपी हुई तांबे की पुतलियों से उन्हें आलिंगन कराया जाता है !

पाँचवाँ दुर्व्यसन शिकार है। शिकार खेलना बड़े का छोटे के प्रति बड़े से बड़े अत्याचार का प्रतीक है। अफसोस, कितने क्रूर मनुष्य हैं वे लोग जो चलते-फिरते प्राणियों का जीवन लूट लेते हैं ? उनका मनोविनोद कितना पैशाचिक है ! वे मनुष्य के रूप में साक्षात् यम की मूर्त्ति हैं ! बेचारे जंगल में रहने वाले और जैसे तैसे अपना पेट पालने वाले जानवर ऐसे निर्दय लोगों के हाथों मारे जाते हैं। मनुष्य यह नहीं सोचता कि मैं विद्या बुद्धि और शक्ति में बड़ा हूँ और यह जानवर मेरे छोटे भाई हैं ! अधिक साधनसम्पन्न होने के कारण मेरा कर्त्तव्य है इनकी रक्षा करना है, न कि इनके प्राण लेना। निरपराध जीवों की हत्या करना घोर पैशाचिक कर्त्तव्य है।

चोरी नामक दुर्व्यसन के विषय में अधिक कहने की आव-

श्यकता नही है। इसका फल तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है चोरी करने वाले को इसी जन्म मे वध-बन्धन आदि के कष्ट भोगने पडते है। कारागार की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। कदाचित चोर पकड मे न आवे तो भी उसका चित्त सदैव अशान्त, सशंक व्याकुल और भयभीत रहता है। उसे पल भर भी चैन नहीं, सदैव पकड़े जाने का डर बना रहता है। कभी न कभी वह पकड में आ ही जाता है और तब उसकी बडी दुर्दशा होती है। चोर परधन के रूप मे पर के प्राणों का हरण करता है, क्योंकि लोगों को धन प्राणों के समान प्रिय होता है।

परस्त्रीगामी पुरुष अपने कुल को कलंकित करता है। समाज में अशान्ति, अधर्म, अनीति और पाप का प्रसार करता है। घोर अनर्थ उत्पन्न करने वाले इस दुर्व्यसन के विषय मे जितना कहा जाय, उतना ही थोडा है।

भाइयों! भविष्यदत्त ने इन सातों कुव्यसनों का परित्याग किया था। इहलोक और परलोक को सुधारने के लिए इनका त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हे त्यागे बिना कोई सद्-गृहस्थ नही बन सकता। अतएव आप लोगों में से जिन्होंने इनका त्याग न किया हो, वे त्याग कर दें। इनमें से एक भी कुव्यसन अगर रह गया तो सम्यग्दर्शन आना ही मुश्किल है।

भविष्यदत्त ने आगे कहा—माताजी! मनुष्यजन्म की महिमा, सभी शास्त्र गाते हैं। गीता, भागवत, उत्तराध्ययन, भगवती तथा इस्लामधर्म के शास्त्र—सभी एक स्वर से मानव-जीवन को अनमोल बतलाते हैं, सभी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा

करते हैं, सभी इसे दुर्लभ बतलाते हैं और कहते हैं कि मनुष्य की जिन्दगी बार-बार मिलने वाली नही है। अतएव बड़े पुण्य के योग से मिले हुए इस जीवन को मैं व्यर्थ नही गँवाऊँगा।

माता! जब तक इस शरीर में प्राण हैं, मैं अपना धर्म छोड़ने वाला नहीं हूँ। इस प्रण को मैं अपने प्राणों के समान समझूँगा और इसकी रक्षा करूँगा। मैं प्राणों के समान ही इसे निभाऊँगा।

अपने पुत्र के मुख से यह शब्द सुनकर माता को कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह कहना कठिन है। अपनी सन्तान को नीतिपरायण और धर्मनिष्ठ देखकर माता-पिता को अपूर्व आनन्द और सन्तोष होता है। कमलश्री को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उससे कहा-बेटा तेरा उत्तर सुनकर मैं निहाल हुई। मैं तुझे धन्यवाद देती हूँ। तेरा मन और तेरी भावना पवित्र है। मुझे विश्वास है कि तेरी यह पवित्रता स्थायी रहेगी।

भाइयों! आप भी अपने मन को पवित्र रक्खो। भविष्यदत्त की माता का आचरण आदर्श था, वह धर्मशीला थी तो अपने पुत्र को वह जी खोलकर उपदेश दे सकी। अगर उसका खुद का जीवन धर्ममय न होता तो उसे ऐसा उपदेश देने का साहस ही न होता। कदाचित् वह उपदेश देती भी तो पुत्र पर उसका प्रभाव न पड़ता। पुत्र मन ही मन सोचता-आप गुरुजी बेगन खावे, औरो को उपदेश सुनावें! स्वयं तो धर्म का आचरण नही करते बनता और मुझे शिक्षा देने का साहस किया जाता है! इस पर से आपको बहुत कुछ सीखना चाहिए। अगर आप

चाहते हैं कि आपकी सन्तान बुराइयों से बचे तो सबसे पहले आप स्वय बुराइयों से बचो। अगर आप सन्तान को न्यायनिष्ठ बनाने की इच्छा रखते हैं तो स्वयं न्यायनिष्ठ बने। सारांश यह है कि जैसा आप व्यवहार करेंगे, वैसी ही सन्तान बनेगी। याद रखना कि आपकी सन्तान पर आपके मौखिक उपदेश का उतना असर नहीं पड़ेगा, जितना आपके व्यवहार का पड़ेगा। इस बात को ध्यान में रखकर आप चलेंगे तो आपका जीवन भी उन्नत बनेगा और आपकी सन्तान का भी भला होगा।

माता ने अपने पुत्र को धन्यवाद दिया। आप अपने मन को और व्यवहार को पवित्र बनाएंगे तो मैं भी आपको धन्यवाद दूंगा। जिसका मन पवित्र होता है उसे देवता भी धन्यवाद देते हैं।

इस घटना का स्मरण करने पर गांधीजी की जीवन कथा याद आ जाती है। गांधीजी जब विद्याध्ययन के लिए विलायत जाने लगे तो उनकी माता ने भी पहले पहल मनाई की थी। जब गांधीजी ने जाने का आग्रह किया तो वह उन्हे बेचरजी स्वामी नामक जैन मुनि के पास ले गई और मांस खाने, मदिरा पीने और परस्त्रीगमन का त्याग करवाया। उसके बाद उन्हे परदेश जाने की आज्ञा दी। इन प्रतिज्ञाओं का गांधीजी ने दृढ़ता के साथ पालन किया और परिणाम उसका यह हुआ कि वे महात्मा के रूप में विश्व मे विख्यात हुए।

महाभारत मे भी एक ऐसा ही जिक्र चलता है। गंगारानी, राजा शान्तनु की पत्नी थी। वह अपने पुत्र गांगेय को लेकर मुनि-

राज के पास गई और कहा—महाराज ! इसे उपदेश दीजिए, जिससे इसका जीवन पवित्र और उन्नत बन सके। मुनिराज ने गांगेय को उपदेश दिया। उस उपदेश का पालन करने के कारण ही गांगेय भीष्म पितामह के रूप मे प्रसिद्ध हुए। जीवन भर अविवाहित रहकर भी वे 'पितामह' कहलाए। उनके त्याग की कथा आज भी रोमांच खड़ा कर देती है। भारतवर्ष आज भी बड़ी श्रद्धा के साथ उनका इतिहास पढ़ता है।

इस सब घटनाओ से क्या नतीजा निकलता है ? यही कि बालक को बचपन से ही अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिये। वह शिक्षा तभी सफल हो सकती है जब माता-पिता का जीवन व्यवहार उस शिक्षा के अनुरूप हो। इसलिए भाइयो ! अपनी और अपनी सन्तान की भलाई के लिए सद्व्यवहार करो, बुरे रास्ते पर मत चलो। धर्म और नीति को मत त्यागो।

अन्त में सन्तुष्ट होकर कमलश्री ने कहा–बेटा, खुशी से जाओ। प्रसन्नतापूर्वक अनुमति देती हूं। अन्त में इतना और कहती हूं कि नमस्कार मंत्र हजारो विघ्नो को दूर करने वाला है। इसे याद रखना।

भविष्यदत्त ने मस्तक झुका कर माता का यह आदेश भी स्वीकार किया। उसने कहा–माताजी, तुम्हारा बेटा तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता है। माता ने आशीर्वाद दिया-बेटा, चिरंजीव रहो और जगत् में यश फैलाओ।

इस प्रकार माता से विदाई लेकर भविष्यदत्त, बन्धुदत्त के पास आया पाँच सौ दूसरे बड़े-बड़े लोग भी साथ हो गये। जहाज तैयार हो गया। भविष्यदत्त और बन्धुदत्त अपने पिता से विदा लेने गये। विदा देते समय पिता ने क्या कहा, यह आगे बतलाया जायगा।

जोधपुर
१३-१०-४८
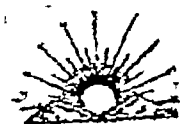
नमस्कार-मंत्र की महिमा

स्तुति :

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवन मयेद—
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविन्दुः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवान् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! आपके गुणग्राम करने से पापों का नाश हो जाता है, ऐसी श्रद्धा रख कर मैं आपकी स्तुति आरम्भ कर रहा

हूं। यद्यपि मेरी बुद्धि अल्प है फिर भी इस श्रद्धा के कारण ही स्तुति करने में प्रवृत्त होता हूं। एक छोटी-सी जल की बूंद जब कमल के पत्ते पर स्थित होती है तो मोती जैसी मालूम होती है। वह सत्पुरुषों के चित्त को हरण कर लेती है। इसी प्रकार मुझ मे तो कोई विशेषता नहीं है, मगर इस स्तुति का आपके साथ सम्बन्ध होने के कारण यह भी सत्पुरुषो के चित्त को आकर्षित कर लेगी। मतलब यह है कि स्तुति अगर मनोहर हो जाय तो यह स्तुत्य भगवान् की ही विशेषता है। इसमें (स्तुति करने वाले) की कोई विशेषता नहीं समझना चाहिए।

हे प्रभो ! आपके गुणग्राम करने वाला पुरुष स्वयं गुणवान् बन जाता है। कोई आदमी पहले बहुत दुराचारी हो, बदमाश हो, बाद मे भगवान् का भजन करने लगे तो लोग कहते हैं—यह पहले बहुत दुराचारी था, किन्तु अब अच्छा हो गया है। तो भगवान् का भजन करने के कारण ही वह गुणी बन गया और उसके अवगुण दूर हो गए। पहले उसकी सर्वत्र निन्दा होती थी और भगवान् का भक्त बन जाने पर सर्वत्र प्रशंसा होने लगती है। शास्त्रो मे ऐसे अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं कि बड़े-बडे दुरात्मा भी प्रभु मे परायण होकर महात्मा बन गये और जगत् मे पूज्य समझे गये। प्रभव चोर का चरित मैं बतला चुका हूं। एक दिन ऐसा था कि उसके नाम से लोग काँपते थे घृणा करते थे और उसे पाप का अवतार समझते थे। मगर वही प्रभव जब जम्बूस्वामी के संसर्ग मे आकर भगवान् की शरण मे पहुँचा तो बडा महात्मा बन गया। वह भगवान् महावीर के पाट पर परम्परा से बैठा और जगत् स्मरणीय और पूजनीय पद पा

लिया। अर्जुन माली की कथा भी आपको सुना चुका हूँ। अन्य शास्त्रों मे भी इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। वाल्मीकि ऋषि पहले अव्वल दर्जे के लुटेरे थे, मगर भगवान् का भजन करके वे भी महर्षि कहलाये। मतलब यह है कि भगवान् के नाम में कुछ ऐसा अपूर्व चमत्कार है कि उसके जपने से और प्रभु की शरण ग्रहण करने से पापी जीव भी पुण्यात्मा बन जाता है।

किसी-किसी धर्मक्रिया का फल देर से मिलता है और परोक्ष रूप मे मिलता है, मगर भगवान् का गुणग्राम करने से उसी समय फल मिल जाता है। यहाँ इस हाथ दे उस हाथ ले की कहावत चरितार्थ होती है। इस प्रकार भगवान् का गुणग्राम तत्काल सुफल देने वाला है। भगवान् ऋषभदेव का गुणग्राम करने वाला दुर्जन भी उसी समय सज्जन और महात्मा बन जाता है। जिनके गुणग्राम और नामस्मरण मे चमत्कार है, ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयों! भगवान् की महिमा का गान करने से महान् फल प्राप्त होता है। यह बात प्राचीन काल के ऋषि, मुनि, भक्त, महात्मा—सभी एक स्वर से कहते आ रहे हैं। यह बात दूसरी है कि कोई भक्त किसी नाम से परमात्मा भजन करे और कोई किसी नाम से, क्योंकि परमात्मा के अनेक नाम हैं और इसलिए अनेक नामों से उनकी स्तुति की जा सकती है किन्तु इस बात में ज्ञानियों मे कोई मतभेद नहीं है कि परमात्मा का नाम स्मरण करने से महान् और लोकोत्तर फल प्राप्त होता है। इस विषय में विश्व के ज्ञानियों का एक सरीखा मत होने पर भी कुछ लोग कहते हैं कि-हूं, परमात्मा का नाम रटते-रटते तालु सूख गया, जीभ

घिस गई, मगर फल तो कुछ हुआ ही नहीं ! अतएव भगवान् के नाम का स्मरण और कीर्तन निष्फल है।

ऐसा कहने वालों की बात पर विचार करना है। यह इसलिए नही कि उनके कथन में सचाई का अंश है मगर इसलिए कि वे भ्रम में पड़े हुए हैं और उनके भ्रम को दूर कर देना हमारा कर्त्तव्य है जिससे वे अपने भ्रम को पहचान लें और कम से कम दूसरों को उस भ्रम में न डाल सकें।

बात यह है कि अगर आप किसी वृक्ष को बो कर उससे फल प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको कई बातों का ध्यान रखना होगा। सबसे पहले आपको बीज और भूमि की परीक्षा करनी होगी और दोनों योग्य हुए तो उसे बो कर सींचना और उसकी सार-सम्भाल करनी होगी। इनमे से अगर एक बात से भी आप चूक गये तो फल प्राप्त नहीं होगा। चतुर किसान या माली इन बातों को नजरन्दाज नहीं करते। वे देख लेते हैं कि बीज कहीं दूषित सड़ा घुना तो नही है ? और जब बीज ठीक मालूम होता है तो वे जमीन की परीक्षा कर लेते हैं। भूमि अगर ऊसर हो तो अच्छे से अच्छा बीज भी उग नहीं सकता। अतएव बीज बोने से पहले जमीन को उपजाऊ बना लेना आवश्यक है।

भगवान् की भक्ति करना भी एक प्रकार की खेती करना ही है। इससे आत्मा की खुराक तैयार होती है—आत्मा को भोजन मिलता है। अतएव इस खेती को बोने से पहले भी बीज और खेत की परीक्षा कर लेना चाहिए। भगवान् की भक्ति रूपी खेती के लिए हृदय रूपी खेत उपजाऊ होना चाहिए। उसमें लालसा

राग-द्वेष, विकार आदि के विषैले कीड़े या पत्थर-कंकर नहीं होने चाहिए। यह सब हुए तो वे बोये हुए बीज की शक्ति को नष्ट कर देते हैं। परिणामस्वरूप बीज उगता नहीं है। तब लोग कहने लगते हैं कि भक्तिरूपी बीज तो उगता ही नहीं है! वे यह नहीं सोचते कि इसमे बीज का दोष नही, भूमि का ही दोष है। इसके विपरीत जो हृदय रूपी खेत को साफ-सुथरा करके, निर्दोष बना कर, पवित्र भावना के साथ भगवान् की भक्ति करते हैं, उन्हें कभी निष्फलता नही होती। उन्हें तत्काल ही फल प्राप्त हो जाता है। पेट की खेती करने वाले को तो समय आने पर फल मिलता है, मगर आत्मा की खेती करने वाला तत्काल ही फल प्राप्त कर लेता है।

भाइयों! जब खेती के योग्य खेत बनता है तो एक बीज के हजार बीज हो जाते हैं। खेत पथरीला, रेतीला न हो। उसकी मिट्टी मुलायम हो। उसमें खराब चीजें और व्यर्थ की झाड़ियां न हो और फिर पानी बरसे और ठीक मौके पर बीज डाला जाय तो अच्छी उपज होती है। इसी प्रकार अपने चित्त रूपी खेत में से काम, क्रोध आदि के कंकर-पत्थर चुन-चुन कर फेंक दो, जीवदया की भावना से उसे मुलायम बनाओ, कामना की जह-रीली झाड़ियों को उखाड़ कर फेंक दो। इस प्रकार चित्त को शुद्ध बना कर भगवद्भजन रूपी बीज बोओ। उससे फल की प्राप्ति होगी। भगवद्भजनरूपी बीज कितना ही अच्छा क्यों न हो, यदि चित्त रूपी खेत अच्छा नही है, तो वह निष्फल हो जायगा। मगर इसमें बीज का दोष नहीं, खेत का ही दोष है। अतएव जो लोग यह कहते हैं कि भगवान् का भजन करने पर

भी कोई लाभ नहीं होता उन्हें इस कथन की ओर ध्यान देना चाहिए।

जब कोई बीमार होता था तो प्राचीनकाल के वैद्य, पहले दवा न देकर जुलाब देते थे। आज भी कई रोगों में, कई वैद्य ऐसा ही करते हैं। जुलाब से जब पेट शुद्ध हो जाता है तो दूसरी दवा दी जाती है। ऐसा करने से दवा आनन-फानन अपना असर दिखलाती है। मगर पेट मे मल भरा हो सफाई न हो तो दवा—जैसा चाहिए वैसा असर नहीं करती। असली बात यह है कि शुद्धि किये बिना काम नही चलता है। जिनका हृदय शुद्ध था, उन्हें भगवान् के भजन से तत्काल फल मिल गया। क्या देर लगती है फल मिलने में।

इसलिए भाइयों! दूसरों की पंचायत में न पडकर तुम अपनी ही ओर देखो। दूसरे के अवगुण देखने के लिए नजर मत फैलाओ, देखने हैं तो अपने ही दोष देखो। आज किसी की कोई बुराई देखकर तुम हँसी करते हो, प्रसन्न होते हो और दुनिया में उसका फैलाव करते हो। मगर इससे तुम्हें क्या लाभ होगा, यह भी कभी सोचते हो? दूसरे के दोषों का ढोल पीटकर ही क्या तुम गुणी बन जाना चाहते हो? नहीं, दूसरे के दोष देखना और उन्हें फैलाना तो स्वयं एक महान् दोष है। इस दोष का सेवन करके तुम दोषी ही बन सकते हो, गुणी नही बन सकते।

सन्त जन तुम्हें सावधान करते रहते हैं कि-देखो, सावधान रहो। जागते रहो। तुम्हारे अनजान मे कहीं कोई चोर न घुस जाय और वह तुम्हारे सद्गुणों की सम्पत्ति को हरण न कर ले

जाय। इसलिए निरन्तर अपने चित्त पर पहरा रक्खो। होशियार रहो। पाप मत करो। बुरे रास्ते पर मत जाओ। मगर तुम उनकी बात सुनकर भी अनसुनी कर देते हो और जब माल चला जाता है तो पछताते हो। फिर भगवद्भजन को भी दोष देने लगते हो। सारांश यही है कि अगर आप भगवान् ऋषभदेव के भजन का पूरा फल प्राप्त करना चाहते हैं, तो हृदय को कोमल और शुद्ध बनाइए। शुद्ध हृदय से भजन करने वाले का उद्धार हुए बिना नहीं रहता।

एक राजा था। वह भोजन करने बैठा उसी के महल के पास होकर एक चोर माल लेकर निकला। चोर को भोजन की खुशबू आई और उसका मन चलायमान हो गया। चोर ने ऐसा अंजन आंज रक्खा था कि उसे कोई देख नहीं सकता था, मगर वह सब कुछ देखता था। अतएव वह उसी जगह जा पहुँचा, जहां राजा भोजन करने बैठा था। कोई भी उसे देख नहीं पाया। वह राजा के थाल में, उसी के साथ भोजन करने बैठ गया और भोजन करने लगा। राजा साहब एक कौर खाते और फुलका चट हो जाता है। इस प्रकार बहुत कम भोजन राजा के पल्ले पड़ा, मगर राजा यह सोचकर कि मैं और भोजन करूँगा तो नौकर मुझे खाऊ समझेंगे रुक गया। मन मसोसकर रह गया और थोड़ा-सा खाकर उठ बैठा। वह चोर उस दिन से वहीं टिक गया और प्रतिदिन राजा के साथ भोजन करने लगा। राजा रोज-रोज भूखा रहने लगा और इस कारण दुबला हो गया।

राजा को दुबला देख कर एक दिन उसके मन्त्री ने एकांत में कहा—अन्नदाता! मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूं। आपको

निश्चिन्त, सन्तुष्ट और प्रसन्न रखना मेरा कर्त्तव्य है। मैं ऐसा नालायक नही हूं कि इधर की बात उधर कर दूं। अगर कोई गुप्त बात होगी तो विश्वास रखिए कि वह गुप्त ही रहेगी।

भाइयों! किसी की गुप्त बात को प्रकट कर देना एक बड़ा नैतिक अपराध है। जिसके सम्बन्ध की कोई गुप्त बात जाहिर हो जाती है, उसे मार्मिक पीड़ा पहुचती है। इस कारण शास्त्र में भी ऐसा करने का निषेध किया गया है। बहुत लोग कुतूहलवश दूसरों के रहस्य को प्रकाशित कर देते हैं, कोई-कोई ईर्षाद्वेष से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं और कई लोग अपनी जानकारी प्रकट करने के लिए ऐसा करते हैं। मगर यह एक जघन्य कृत्य है। शिष्ट पुरुष ऐसा करना घृणित समझते हैं। मनुष्य को गम्भीरता रखनी चाहिए। अगर कोई किसी के सामने, विश्वास रख कर अपनी गुप्त बात प्रकट कर दे या किसी दूसरे स्रोत से मालूम हो जाय, तो उसे फैलाना उचित नहीं है। ऐसी बातों को मन में ही रखना चाहिए।

तो मन्त्री ने राजा से कहा—विश्वास रखिए, अगर कोई रहस्यमय कारण होगा तो वह प्रकट नही होगा। आप अपने दिल की बात बतलाइए। आपकी चिन्ता का क्या कारण है? आप दिनोंदिन दुबले क्यो होते जाते हैं?

राजा ने कहा—मन्त्रीजी! दुबला होने का कारण यह है कि मैं भूखा रहता हूं। मैं भोजन करने बैठता हूं और एक कौर उठाता हूं कि तब तक सारा फुलका सफाचट हो जाता है।

और-और चीजों का भी यही हाल होता है मैं लज्जा के वश होकर अधिक मांगता नहीं हूँ।

अपने दुःख की बात दूसरों के सामने कह दी जाती है तो दुःख कम हो जाता है। घर में पति, पत्नी से और पत्नी, पति से अपने—अपने हृदय की बात कह देते हैं तो उन्हें शान्ति मिलती है।

राजा की बात सुनकर चतुर मन्त्री के प्रतिदिन घटने वाली इस घटना के रहस्य को समझने की कोशिश की। उसे ध्यान आया कि आंखों में खास तरह का अजन लगा लेने वाला आदमी दूसरों को दिखाई नही देता है। हो न हो, ऐसी ही कोई बात यहाँ होनी चाहिए। यह सोचकर उसने पता लगाने का निश्चय किया। दीवान ने राजा साहब के जीमने के कमरे में दो मटके रखवाए और उनमे अधसूखे छाणे भरवा दिये। फर्श पर बड वृक्ष के सूखे पत्ते बिछवा दिये और ऊपर से जाजम बिछवा दी।

इतनी सब व्यवस्था करके उसने राजा साहब से कहा—अन्नदाता, आज चोर का पता चल जायगा। जब वह कमरे में आएगा तो सूखे पत्तों की चर्र-मर्र की आवाज होगी। उसके बाद आधे सूखे और आधे गीले छाणो में आग लगा दी जायगी। खिड़कियां चारो तरफ की बंद कर दी जाएंगी। चोर के आंखों में अंजन लगाया होगा तो आंखों से आंसू निकलने के कारण अंजन छूट जायगा और चोर दिखाई देने लगेगा। आशा है, इस व्यवस्था से चोर जल्दी ही पकड़ में आ जायगा।

भोजन का समय हुआ । राजा साहब रोज की तरह भोजन करने बैठे और चोर भी रोज की तरह भोजन में हिस्सा बंटाने के लिए आ पहुँचा । चोर जब आया तो उसके पाँव पड़ने से सूखे पत्ते चर्र-मर्र हुए । पास ही छिपे हुए दीवान ने समझ लिया कि चोर महाशय का पदार्पण हो गया है । राजा और चोर ने भोजन करना आरम्भ किया और उधर अधगीले छाणों में से धुआ निकलना आरम्भ हुआ । धुंआ चोर की आंखो में लगा । आंखो से पानी निकला और अजन छूट गया । चोर की कलई खुल गई । वह दिखाई देने लगा । फिर उसकी गिरफ्तारी मे क्या कसर थी ? उसी समय पुलिस ने उसे पकड़ लिया और हथकड़ियां डाल कर हिरासत में ले लिया । तीन दिन काल-कोठरी में रखने के बाद उसे शूली पर चढ़ा देने का हुक्म हुआ । चोर बहुत कष्ट पाता हुआ और अपनी करतूत के लिए पछताता हुआ, रोता-बिलखता शूली पर लटका है ।

भाइयों! पाप करने वालों की ऐसी ही दशा होती है । बहुत-से लोग, इसी चोर की तरह समझते हैं कि हमें पाप करते कौन देखता है ? हमारा पाप छिपा रह जायगा और इसलिए पाप का फल भी नही भोगना पड़ेगा । मगर यह बहुत बड़ी मूर्खता है । जैसे इस चोर का पाप प्रकट हो गया और यह मृत्यु दण्ड का पात्र बना, उसी प्रकार एक न एक दिन सभी के पाप प्रकट होने वाले हैं । कम से कम ज्ञानी की दृष्टि से किसी के पाप नहीं छिप सकते । लोक मे कहावत है—दीवार के भी कान होते । इसका अर्थ यही है कि पाप को कोई कितना ही छिपाना चाहे, छिपता नहीं-प्रकट हो ही जाता है ।

अतएव आवश्यक यह है कि मनुष्य अपने पाप को छिपाने के लिए जितना प्रयत्न करता है, उतना उस पाप से बचने के लिए करे। इधर राम-राम और उधर हराम का काम मत करो।

प्राचीन काल मे मृत्यु दण्ड देने की पद्धति आज सरीखी नहीं थी। एक खभे पर तीखी कील होती थी और उस पर अपराधी को लटका दिया जाता था। अपराधी कई दिनो तक कष्ट पाता-पाता मरता था।

वह चोर इसी प्रकार शूली पर चढा दिया गया। साथ ही राजा ने घोषणा करवा दी कि गम्भीर अपराध करने वालों को ऐसा दंड भोगना पडता है। जो आदमी इस अपराधी की सहायता करेगा, उसे भी दड भोगना पडेगा। चोर की देख रेख करने के लिए खुफिया पुलिस तैनात करदी गई थी।

उसी शहर में जिनदास नामक एक सेठ रहता था। वह अपने लड़के के साथ जगल मे गया था। वापिस लौटते समय पुत्र ने अपने पिता से कहा—जिधर चोर को शूली पर लटकाया गया है, उधर होकर चलिए। मेरी इच्छा चोर को देखने की है। पिता ने कहा—बेटा, अपन दयाधर्मी हैं। उस चोर को देखेंगे तो अपने चित्त में बडी व्यथा होगी। उसकी कुछ सहायता तो कर नही सकेंगे। फिर जाने से लाभ ही क्या है ?

मगर बालक जिद पकड गया तो दोनों उधर होकर चले। जब वे दोनो चोर के पास से गुजरे तो चोर ने अत्यन्त दीनता दिखलाते हुए कहा—सेठजी ! मरने को तैयार बैठा हूं, मगर पानी मे जी अटक रहा है। पानी पिलादो तो शान्ति के साथ प्राण त्याग सकूंगा।

चोर की करुणा जनक बात सुनकर सेठ का अन्तःकरण द्रवित हो गया। सेठ सम्यग्दृष्टि था और सम्यक्त्व के पाँच लक्षणो में अनुकम्पा भी एक लक्षण है। जिसका अन्तरग सम्यक्त्व से सुशोभित होता है, उसमें अनुकम्पा की भावना खूब उग्र होती है। जैसे शूरवीर पुरुष जब समर-रस में डूब जाता है, वीर रस से परिपूर्ण हो जाता है तो उसे अपने प्राणों की परवाह नहीं रहती। वह अपनी मृत्यु से भयभीत न होता हुआ युद्ध मे जूझ पड़ता है। दयावीर भी ऐसे ही शूरवीर होते हैं। अनुकम्पा-रस में डूब जाने वाला धर्मनिष्ठ पुरुष भी अपनी मृत्यु की परवाह नही करता। अन्तःकरण मे उद्‌भूत हुई प्रबलतर अनुकम्पा भावना को चरितार्थ करने में उसे कोई भी संकट यहां तक कि मृत्यु भी रोक नहीं सकती। इस सचाई को सिद्ध करने के लिए शास्त्रों के अनेक उदाहरण पेश किये जा सकते है। कई उदाहरण तो इतने प्रसिद्ध हैं कि आप उन्हे सुन भी चुके होगे। मेघकुमार के पूर्वभव वाले हाथी ने खरगोश की अनुकम्पा के लिए घोर यातना सहन की थी और अन्त मे मृत्यु का भी आलिगन किया था। मेतार्य मुनि ने एक पक्षी के प्राणो की रक्षा के लिए अपने प्राणो का सहर्ष उत्सर्ग कर दिया था। राजा मेघरथ ने कबूतर के प्राण बचाने के लिए अपना सारा शरीर समर्पित कर दिया था। धर्मरुचिजी अनगार ने कीड़ियों पर करुणा करके जहरीले शाक का भक्षण कर लिया था! कहाँ तक कहे, आर्यसाहित्य मे ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे वीररस हृदय मे एक प्रकार का जोश उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार अनुकम्पारस भी एक अनूठा-सा उत्साह उत्पन्न कर देता है। दोनो रसों में यह एक समानता है।

किन्तु इस समानता के साथ दोनो में एक बड़ी असमानता भी है और वह इन दोनो रसो को बहुत भिन्न बना देती है। वह यह कि युद्ध का रस दूसरे के प्राण लेने के लिए प्रेरित करता है, जब कि अनुकम्पा रस दूसरे के प्राण बचाने के लिए प्रेरित करता है।

तो जिनदास सेठ के हृदय में अनुकम्पा का भाव उत्पन्न हो गया। उसने अपने लड़के से कहा—बेटा यह बेचारा प्यास से बेचैन हो रहा है। अपने पास पानी नही है। तू यही खड़ा रह, मैं पानी लेकर आता हू। यह कहकर जिनदास सेठ पानी लेने रवाना होने लगा। इसी समय उसे खयाल आया कि मैं जा रहा हू, मगर लौटने से पहले ही इसके प्राण निकल गये तो क्या होगा? इसका परलोक सुधारने के लिए भी कुछ उपाय करना चाहिए। यह सोचकर वह फिर चोर के पास गया और उससे कहा—देखो, भाई! मैं तुम्हारे लिए पानी लेने जाता हूं, मगर तब तक तुम इस मन्त्र का जाप करते करना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। मत्र यह है:—

णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

मंत्र बतलाकर सेठ चला गया। चोर को यह मंत्र याद नही रहा तो वह वार-वार कहने लगा:—

आणू ताणू कुछ नही जाणूं।
सेठ वचन प्रमाणूं ॥

इस प्रकार उसने सेठ के वचन को ही प्रमाण मान कर जाप किया। उसी पर आधार रक्खा। मन मे भावना करते-करते उसे गहरा विचार आया और पश्चात्ताप आया। वह सोचने लगा—आह! मैंने चोरी जैसा अनैतिक कार्य किया और बहुत पापो का आचरण किया! इस नश्वर शरीर के लिए मैंने घोर अनर्थ किये, फिर भी आज यह जा रहा है! इस प्रकार विचार करते—करते और "आणू ताणू" आदि जपते-जपते उसने प्राण त्याग दिये!

इधर सेठजी जल्दी—जल्दी पानी लेने गये, मगर जब पानी लेकर लौटे तो देखा कि चोर के प्राण चले गये हैं! सेठ के मन में उदासी आई। सोचने लगे बेचारे को पानी नहीं पिला सका! मगर मन मसोस कर रह गये। उन्होने अपने लड़के से कहा—चलो बेटा! इसकी आंखे फट गई हैं, मालूम होता है, इसका जीव आँखो में से निकला है।

सेठ चला गया और घर जा कर पाँच सामायिक लेकर बैठ गया। उधर चोर के पास बैठी खुफिया पुलिस ने राजा से चोर के मरने का वृत्तान्त कहा और यह भी कह दिया कि जिनदास सेठ उसे पिलाने को पानी लाया था। राजा ने आज्ञा दे दी-अच्छा जाओ और जिनदास को हथकडियाँ डाल कर ले आओ! उसे भी शूली पर चढा दो।

इतनी सारी कार्रवाई होते-होते काफी समय बीत गया था। उधर वह चोर अन्तर्मुहूर्त्त में ही स्वर्ग मे शय्या पर बत्तीस वर्ष के नवयुवक के रूप मे उत्पन्न हो गया। उठ कर बैठा था कि

उसकी हाजिरी में मौजूद देवों ने उसे पूछा—स्वामिन् ! आपने क्या पुण्य किया था कि आप हमारे स्वामी बने हैं ? अपने मातहत देवों का प्रश्न सुन कर उसने उपयोग लगाया और जाना कि मैंने तो बहुत पाप किये थे, मगर उस धर्मात्मा सेठ की कृपा से मैं देवता बन गया। अन्तिम समय में उसने मेरी बड़ी मूल्यवान् सहायता की है। उसने अपने अवधिज्ञान से यह भी देखा कि सेठ मेरी सहायता करने के अपराध में पकड़ा जाने वाला है और उसे भी शूली पर चढाने की तैयारी हो रही है!

यह सब देख कर उस देव ने अपने अधीनस्थ देवों से जिनदास के उपकार का वर्णन किया। कहा—अगर मैं सेठ की सहायता के लिए न जाऊँ तो बड़ी कृतघ्नता होगी। जिसने मुझे नरक के कीड़े से देव बनाया, उसकी सहायता करना मेरा परम और प्रथम कर्त्तव्य है।

देवता की गति कितनी वेगवती होती है यह आपको मालूम है? एक चुटकी बजाने में आपको जितनी देर लगती है, उतनी-सी देर में देवता एक लाख योजन लम्बे-चोड़े जम्बूद्वीप के सात बार चक्कर लगा सकता है। तो फिर उसे आने में क्या विलम्ब लग सकता था? पहले जमाने मे लोग बैल-गाड़ियो या रथो में चलते थे। अब मोटरें और रेलें हो गई हैं। इनके साथ ही हवाई जहाजो ने और भी गजब कर दिया! महीनों का सफर अब घन्टो मे पूरा हो जाता है। यहाँ से विलायत जाना अब घन्टो की बात है। मगर देवता की गति की तीव्रता को हवाई जहाज भी नहीं पहुँच सकते।

देवता तत्काल वहां आया और एक बुड्ढे का रूप बना कर सेठ के द्वार पर बैठ गया। राजा के सिपाही सेठ को गिरफ्तार करने पहुँचे। सेठ को आवाज दी। तब बूढे ने कहा—चुप रहो, हल्ला मत करो। सेठजी अभी सामायिक कर रहे हैं!

पुलिस भला बूढे की बात सुनती? सिपाहियों ने उसे डाँट बतला कर चुप रहने के लिए कहा और सेठ को फिर आवाज लगाई। कहा – महाराजा का हुक्म है, बाहर निकलो। सेठ! जल्दी बाहर आओ!

बूढे ने उनकी बात काटकर कहा—देखोजी, मैंने कह दिया है कि सेठजी अभी सामायिक कर रहे हैं। वे इस वक्त नही आ सकते।

पुलिस के जवानो को गुस्सा आ गया और उन्होंने सेठ के घर के किवाड़ तोड़ डालने की तैयारी की। तब वह बूढा दरवाजे के पास सो गया। एक सिपाही ने गुस्से में आकर, बूढे की टाग पकड़ कर, घसीट कर, दूर कर देने का उपक्रम किया। टाग पकड़ कर ज्यो ही उसने खीचना चाहा, टाग बढती ही चली गई! द्रौपदी के चीर की तरह बूढे की टांग बढती देख कर सिपाही भयभीत हो गये! उन्होने राजा के पास जाकर यह वृत्तान्त सुनाया। राजा ने अपने दीवान को भेजा। दीवान ने आकर देखा-यहा की रगत ही कुछ और है! हजारो आदमी वहा इकट्ठे हो गए। कोलाहल मच गया। दीवान को समझ मे न आया कि क्या किया जाय और क्या न किया जाय?

उधर सेठ की सामायिक पूरी हुई और वह बाहर निकला। उसने पूछा—क्या मामला है? आप सब ने यहां आने का क्यों कष्ट किया है? दीवान बोला—महाराज की आज्ञा के विरुद्ध आपने चोर की सहायता की है। यद्यपि यह ठीक है कि आप उसे पानी नही पिला सके, मगर यह भी ठीक है कि आप उसे पानी पिलाना चाहते थे और यदि वह मर न गया होता तो अवश्य पिलाते! यह महाराज की आज्ञा का उल्लघन है। इस अपराध में आप गिरफ्तार किये जाते हैं।

दीवान ने फिर कहा—और वह आपका बूढ़ा नौकर कहाँ गायब हो गया? पुलिस के काम मे रूकावट डालने के अपराध मे उसे भी गिरफ्तार करना होगा।

सेठजी ने उत्तर दिया—दीवान साहब! चोर को चोरी करने मे सहायता देना तो अनीति में सहायता देना है और यह कार्य हमारे धर्म से भी विरूद्ध है। सो मैंने किया नही है। मगर चोर के आत्म कल्याण मे सहायता देना तो कोई अनीति नही है, अपराध नही है। फिर भी महाराज का आदेश है तो आप उस आदेश का पालन कर सकते हैं। मुझे गिरफ्तार कर सकते हैं। मगर मेरे यहां कोई बूढा नौकर ही नही है। मैं नहीं जानता कि बूढा कौन था, कहां से आया था और कहाँ चला गया है?

इतने मे स्वयं राजा साहब भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होने सेठ से पूछा—सेठजी! क्या कोई करामात है?

सेठ ने कहा—नहीं, अन्नदाता ! मेरे पास कोई करामात नहीं है। मैं कुछ जानता नहीं। अलबत्ता, णमोकारमंत्र मैं जानता हूं। उस पर मेरी परिपूर्ण श्रद्धा है। उसे भले ही करामात समझ लें !

इसी समय आकाश में बाजे बजने लगे। देवता ने अपने दिव्य रूप में आकाश में स्थित होकर कहा—राजन् ! तुम्हारी शक्ति नहीं कि सेठ का बाल भी बांका कर सको। सेठ मेरा परम उपकारी है। इसने डूबते को सहारा दिया है। णमोकार मंत्र के प्रभाव से मुझे देवलोक में पहुँचाया है। तुम सेठ को सजा दोगे उससे पहले ही मैं तेरी सारी पृथ्वी को समुद्र में डुबा सकता हूं।

राजा का हृदय पहले ही बदल गया था। देव की धमकी सुन कर वह कांप उठा। उसने कहा—मैं अब सेठ को कोई सजा नहीं देना चाहता !

भाइयो ! यह धर्म का प्रताप है। यह अनुकम्पा का चमत्कार है और यह णमोकार मंत्र की महान् महिमा है ! सेठ के हृदय में अनुकम्पा न जागी होती और उसे चरितार्थ करने का सेठ ने उद्योग न किया होता तो यह चमत्कार न हुआ होता। धर्म की ऐसी प्रभावना होने का अवसर ही न आया होता। खेद है कि हमारे कई भाई अनुकम्पा करने में एकान्त पाप समझते हैं और ऐसी ही प्ररूपणा भी करते हैं। किसी प्यास से तड़पते हुए दुखी मनुष्य को पानी पिला देने में उन्होंने पाप की कल्पना कर ली है ! कहा जा सकता है कि एक जीव की अनुकम्पा करने के निमित्त पानी के असंख्यात जीवों की हिंसा करना कैसे उचित

कहा जा सकता है ? परन्तु ऐसा कहना तो उनका बहाना मात्र है। वे तो अचित्त पानी या छाछ पिला देने में भी एकान्त पाप बतलाते हैं। अगर पानी के जीवो की हिंसा होने के कारण ही पानी पिलाना एकान्त पाप हो, तो अचित्त पानी पिलाने में क्यों पाप कहते हैं ? छाछ पिला देने मे भी क्यो पाप मानते हैं ? सच बात तो यह है कि हिंसा का बहाना लेकर वे दूसरे को साता या शान्ति पहुँचाने मे ही पाप मानते हैं।

यह मान्यता जैनधर्म से ही नहीं, दुनिया के तमाम धर्मों से विरुद्ध है, यहां तक कि मानवीय कर्त्तव्य से भी विरुद्ध है। कोई आदमी गिर पड़ा है, कोई बालक कूप में गिर पड़ा है, कोई आग मे फँस गया है, तो उसे बचाना मनुष्य का कर्त्तव्य है, दया धर्म है परन्तु कुछ लोग इसे भी एकान्त पाप कहते हैं। यह उनका घोर अज्ञान है। शास्त्र इस मान्यता का समर्थन नहीं करते। अपनी आत्मा और अपने अनुयायियों की आत्मा का कल्याण करने के लिये उन्हें अपनी इस मान्यता को पलट लेना चाहिए। किसी एक व्यक्ति की असावधानी के कारण जो भ्रमपूर्ण धारणा बन जाय, उसे बदल डालने मे बुराई नही, भलाई ही है।

देखो, जिनदास सेठ ने चोर को णमोकारमन्त्र दिया और उस पर अनुकम्पा की तो कितना धर्मोद्योत हुआ। लोगों की इस मन्त्र पर आस्था बैठी। वास्तव मे णमोकारमन्त्र का प्रभाव अद्भुत है:—

सुमर लो मन्त्र बडा नवकार ।
यह है भव–जल तारणहार ।।

भाइयों ! इस महामन्त्र में चौदह पूर्वों का सार भरा हुआ है। इसके जाप के प्रभाव से सभी प्रकार के विघ्न, संकट, क्लेश आदि दूर हो जाते हैं। ताल (मालवा) के एक सेठ खूबचन्दजी ने मुझे अपनी बीती बात सुनाई थी। वे एक वार चम्बल नदी की ओर से आ रहे थे तो एक भूत उनके पीछे लग गया। जब उन्हें यह मालूम हुआ तो णमोकारमन्त्र का जाप शुरू किया और तत्काल उनका संकट टल गया। ऐसा एक नही, हजारो उदाहरण हैं। जो शुद्ध भाव से णमोकारमंत्र का जाप करता है, उसका वेडा पार हो जाता है। भले ही कोई कितना ही पापी क्यो न रहा हो, अगर शुद्धभाव में आ जाय तो यह मन्त्र उसे देव-लोक में भेज देता है। यह संसार के समस्त मंत्रो का सार है। कहा है:—

मंत्रों मे मंत्र नवकारमंत्र, तंत्रों में तंत्र हरे दुःख तन का।
जो लेवे धार हो पल में पार, करदे उद्धार पापी जन का।टेर।

णमोकार मंत्र फिर कैसा है ?

जगत् में सार जड़ी पंच नवकारमंत्र,
वार-वार गायिये औ पल न भुलाइए।
सोवत उठत मुख जोवत प्रदेश माही,
रण में भुजंग सिह देख न डराइए॥
संकट न पड़े कोई व्यन्तर न छलि सके,
आग मे न जले भव-सागर तिर जाइए।

कहत विनोदीलाल जपत हूँ तीनों काल,
ऐसो नवकारमंत्र मन बीच ध्याइए ॥

भाइयो ! यह है णमोकारमन्त्र की महिमा ! इसकी महान् महिमा से शास्त्र भरे पड़े हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के समय की बात है। बनारस में एक तापस आया था। मोटे-मोटे लक्कड लगा कर धूनी तापा करता था। उसने वहाँ की जनता पर खूब रौब जमा लिया था। उस समय पार्श्वनाथजी दीक्षित नहीं हुए थे, कुमार-अवस्था में थे। एक बार वे भी तापस के पास चले गये। उन्हे जन्म से ही विशुद्ध अवधिज्ञान था। अवधिज्ञान का उपयोग करके उन्होने जान लिया कि एक लक्कड़ मे सांप है और वह आग में भुनसा जा रहा है। कुमार ने तापस को सावधान करते हुए कहा —तापसजी ! आपकी यह कैसी तपस्या है ? आप लक्कड़ के साथ नाग को जला कर तपस्या करते हैं? क्या इस हिंसामय कृत्य से आपकी आत्मा का उद्धार हो जायगा ? यह तो अज्ञान-मय काय क्लेश मात्र है।

तापस को अभी तक सम्मान, श्रद्धा और भक्ति ही मिली थी। कुमार ने उसे उपालम्भ दिया और उसकी तपस्या को अज्ञानमय बतलाया। तापस क्रोध से कांपने लगा। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने कुमार की बात को गलत साबित करने के लिए उसी समय कुल्हाड़ा उठाया और लक्कड़ को फाड़ दिया। मगर लक्कड के फटते ही उसमे से भुनसा हुआ सांप निकल पडा। बाबाजी का चेहरा उतर गया। लज्जा का पार न रहा ! लोग जो वहा मौजूद थे, पार्श्वकुमार की प्रशसा करने लगे। मगर

पार्श्वकुमार का ध्यान अपनी प्रशंसा की ओर नहीं था, उनका ध्यान झुलसे नाग की ओर था। वे जान गये कि नाग अब बच नहीं सकता। अतएव उन्होने उसके पास जाकर उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। नाग थोड़ी देर में मर गया, परन्तु मन्त्र श्रवण करने के प्रभाव से धरणेन्द्र की पदवी का अधिकारी हुआ!

अमरकुमार को आग की भीषण ज्वालाओं में झोंक दिया गया था, तब उसकी रक्षा करने वाला णमोकर मन्त्र ही था! इसी मन्त्र के प्रताप से उसका बाल भी बाका न हुआ।

इस प्रकार णमोकार मन्त्र परम कल्याणकारी अलौकिक मन्त्र है। इसी मन्त्र के प्रभाव से रक्त चोर देवगति पा सका था। उस देवता ने आकाश में स्थित होकर राजा से कहा—मैंने तो इस महामन्त्र को ठीक तरह जपा भी नही था, सिर्फ सेठ के मुंह से सुना था। फिर भी उसमे भावना रखने के कारण मेरा कल्याण हो गया!

देववाणी सुनकर राजा चकित हो गया। उसने कहा—अब हम सब को छोड़ कर इसी महामन्त्र का इष्ट स्वीकार करते हैं। इसके बाद राजा ने सेठ जिनदास का भी खूब सम्मान किया। समकित सूत्र मे यह जिक्र चला है।

तात्पर्य यह है कि हृदय को निर्मल करके ईश्वर का नाम लिया जाय तो बेड़ा पार हो ही जाता है। अतएव सब से पहले अपने हृदय रूपी क्षेत्र को शुद्ध करो और उसे ईश्वर-भजन करने योग्य बनाओ। यही जीवन का सब से बडा लाभ है। ऐसा करने में ही जीवन की सफलता और कृतार्थता है। फिर आप भगवान्

ऋषभदेवजी की स्तुति करके निष्कलंक आत्म स्वरूप को भी प्राप्त कर सकेंगे ।

भविष्यदत्त चरित—

सेठानी कमलश्री ने अपने पुत्र को विदेश यात्रा की विदाई के समय इसी णमोकार मंत्र को स्मरण रखने की सूचना की । भविष्यदत्त स्वयं ही सुसंस्कारवान् था । उसने अपनी माता के इस पवित्र आदेश को स्वीकार किया ।

अब भविष्यदत्त और बन्धुदत्त दोनों प्रस्थान करने के लिए तैयार हो गए । दोनों साथ-साथ अपने पिता धनसार सेठ के पास पहुंचे । पिता ने कहा—बेटा ! तुम दोनो की यह जोडी देख कर मेरी प्रसन्नता का पार नही रहता । दोनो ही मेरे लिये दोनो नेत्रो के समान हो । ससार मे भाई का सुख एक मूल्यवान् देन समझी जाती है । अतएव दोनो खूब प्रेम से यात्रा करना । सदा एक दूसरे के सुख का ध्यान रखना । आप असुविधा उठा कर दूसरे के सुख के लिए उद्यत रहोगे तो दोनो ही सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न रह सकोगे । दोनों एक दूसरे के अनुकूल रहोगे तो तीसरा तुम्हारे प्रतिकूल रहकर भी कुछ नही बिगाड़ सकेगा । दुर्भाग्य से दोनो में अगर फूट हो गई तो उसका लाभ तीसरा उठाएगा और तुम दोनो घाटे मे रहोगे । अतएव मेरी इस चेतावनी को ध्यान मे रखना और दो शरीर एक प्राण होकर रहना ।

दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि तुम जो भी व्यापार करो उसमे नैतिकता का पूरा ध्यान रखना । अनीति का लेश

मात्र भी प्रवेश मत होने देना। अनीति करके कोई सुख नहीं पा सकता। अनीति द्वारा उपार्जन किया हुआ द्रव्य तो चला हो जाता है, साथ मे प्रतिष्ठा को भी ले जाता है, गाँठ की पूंजी को भी ले जाता है और कभी-कभी प्राणों का गाहक भी बन जाता है। लोभ मे अंधे होकर बहुत से लोग नीति-अनीति का खयाल नहीं रखते, कइयो की बुद्धि तो इतनी मलीन हो जाती है कि वे अनीति को अनीति न समझकर नीति हो समझ लेते हैं। परन्तु आगे चलकर इसका परिणाम अत्यन्त दारुण होता है। अतएव सदैव इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारे व्यापार मे अनीति फटकने ही न पावे। एक बार अनैतिकता आ जाने पर फिर उसका निकलना कठिन होता है। दीर्घदृष्टि और विवेकशील व्यक्ति अनीति को घुसने का अवसर ही नही देते। याद रखना, नीति का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और अनीति का भंडार भी अनर्थो का भंडार है।

पुत्रों! जहाँ कही जाओ, अपनी कुलीनता का ध्यान रखना। मेरी प्रतिष्ठा को बढाना। मेरे यश को द्विगुणित करना। इसी मे तुम्हारा यश और तुम्हारी प्रतिष्ठा है। जैसे तुम मेरे धन के उत्तराधिकारी हो उसी प्रकार मेरे धर्म और यश के भी उत्त-राधिकारी बनना। सर्वत्र ऐसा व्यवहार करना कि लोग तुम्हारे पिता के नाम को याद करे।

तीसरी बात धर्म के विषय में हैं। संसार के जीवो को जितने भी सुखदायक सयोग प्राप्त होते हैं। उन सब का मूल धर्म ही है। धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। जैसे पत्ते फूल, फल आदि का आधार वृक्ष की जड़ है, उसी प्रकार धन-सम्पत्ति, यश,

वैभव, सुख आदि सब का आधार धर्म है। अतएव मेरा अनुरोध है कि तुम धर्म का कभी विस्मरण मत करना। परनारी से दूर रहना, भक्ष्य और अभक्ष्य का ध्यान रखना, णमोकारमन्त्र का जाप करना। अपने समस्त कार्यों मे धर्म को ओतप्रोत रखना।

चौथी बात यह है कि तुम्हारे साथ अन्य अनेक व्यापारी जा रहे हैं। वे सब तुम्हारे विश्वास पर ही जाने को तैयार हुए हैं। उनकी सुख-सुविधा का सदैव ध्यान रखना। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होना चाहिए। बड़े का कर्त्तव्य हैं कि वह स्वयं असुविधा भोग कर भी अपने आश्रितों की सुविधा का खयाल रक्खे। इसी मे बड़े का बडप्पन है। तुम्हारे निमित्त से उन्हे चार पैसे प्राप्त हो जाएँगे तो वे जन्म भर तुम्हारा यश गाएँगे। उन लोगो के खान-पान का भी ध्यान रखना। साथियों को जिमा कर जीमना। विनम्र व्यवहार करना। तुम उनके आश्रयदाता हो, ऐसा सोच कर अहकार मत करना, अन्यथा उनके प्रति किया हुआ सारा उपकार व्यर्थ हो जायगा। उन लोगो को अपने व्यवहार से कभी हीनता का भान नही होने देना चाहिए।

बस, इस समय इतनी ही बातें कहना चाहता हूं। इन्हीं में सब आवश्यक बातो का समावेश हो जाता है। इन्हे याद रक्खोगे तो सुखी होओगे। मेरी शुभ कामना है कि तुम सफल-मनोरथ होकर सकुशल सानन्द शीघ्र लौटो।

अपने पिता की सीख सुनकर दोनों भाई रवाना हुए। उन्हे विदा देने के लिए उनके सब कुटुम्बीजन समुद्र के किनारे

जहाज के पास तक गये। आखिर वे जहाज पर सवार हुए। लंगर खोल दिया गया, जहाज चल पड़ा।

कुटुम्बीजन लौट आये और जहाज समुद्र में चल पड़ा। एक योजन, दो योजन और दस योजन चला। चलते-चलते मेनागिरि पहाड़ आया। सब ने कहा—यह पहाड़ बहुत सुन्दर है, अतएव पहला विश्राम यही करना चाहिए। यही तय हुआ। जहाज रोक दिया गया। सब लोग किनारे पर आये और कोई इधर, कोई उधर घूमने चले गये। भविष्यदत्त भी एक ओर चला गया।

बन्धुदत्त को अपनी माता की बात याद आई। उसने सोचा कि मैंने पहली मंजिल पर ही भविष्यदत्त का सफाया कर देने का माताजी को आश्वासन दिया है। यह सोचने पर उसके हृदय मे कपट आया। फिर पिता का उपदेश भी उसे स्मरण आया। पिता ने अन्तिम समय मे प्रेमपूर्वक रहने का आदेश दिया है! इस प्रकार माता और पिता ने परस्पर विरोधी आदेश दिया है? किसका पालन किया जाय और किसकी अवहेलना की जाय? वह थोडी देर तक सोच-विचार मे पड़ा रहा।

भाइयो! ऊँचा उठना कठिन होता है और नीचे गिरना सरल होता है। मनुष्य अच्छाई की ओर कठिनाई से जाता है और बुराई की ओर अनायास ही मुड़ जाता है। बन्धुदत्त ने सोचा-भविष्यदत्त जीवित रहेगा तो पैत्रिक सम्पत्ति का आधा भाग उसे मिलेगा और आधा भाग मुझे मिलेगा। अगर उसका जीवन समाप्त हो जाय तो मैं अकेला ही समस्त सम्पत्ति का

स्वामी बन जाऊँगा ! अतएव मेरा हित भविष्यदत्त का सफाया कर देने मे ही है ।

इस प्रकार सोच कर बन्धुदत्त थोडी देर बाद ही जहाज पर लौट आया और उसने जहाज की घण्टी बजाने का आदेश दिया। घण्टी बजते ही सब लोग भी लौट आये, सिर्फ भविष्यदत्त रह गया। इसी समय बन्धुदत्त ने जहाज रवाना कर देने की आज्ञा दे दी। किसी ने याद दिलाया कि भविष्यदत्त अभी तक नहीं लौटे हैं। परन्तु बन्धुदत्त ने कहा—नही, सब आ गये हैं, जहाज को जल्दी रवाना कर दो। क्षण भर का भी विलम्ब मत करो।

घण्टी सुनकर भविष्यदत्त भी जहाज की ओर लपका आ रहा था। मगर जब वह आकर पहुँचा तो क्या देखता है कि जहाज रवाना हो चुका है। जब वह आया, उसे जहाज कुछ ही दूरी पर दिखाई दिया। भविष्यदत्त अत्यन्त व्यग्र और व्याकुल होकर जहाज को देखने लगा। उसके देखते-देखते जहाज आखो से ओझल हो गया।

भविष्यदत्त विषाद से घिर गया। उसे समझते देर नहीं लगी कि यह सब बन्धुदत्त के कपट का ही परिणाम है। उसे अपनी माता का कथन याद आ गया। वह समझदार व्यक्ति था। मन ही मन सोचने लगा मेरा भाई मुझे धोखा देकर चला गया है। उसे विचार ही नही आया कि मैं अपने भाई को यहां छोड़ कर जा रहा हूं तो उसकी क्या हालत होगी? हाय स्वार्थ ! धन के लिए मनुष्य इतना निष्ठुर हो सकता है ! हृदयहीनता की हद हो गई !

भविष्यदत्त फिर सोचने लगा-लेकिन इसमें भाई का क्या दोष है ? यह तो असल मे मेरे ही पूर्वकृत कर्मों का दोष है। इस स्थिति के लिए मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ। कर्म का फल भुगतते समय दूसरो को दोष देने से कोई लाभ नहीं होता। लाभ नही होता, बल्कि हानि होती है। दूसरों को उत्तरदायी ठहराने से उनके प्रति द्वेष भाव उत्पन्न होता है और उस द्वेष के कारण फिर नये अशुभ कर्म बंधते हैं। अतएव अपने कर्मों के फल के लिए अपने आपको ही उत्तरदायी बनाना चाहिए। इससे एक प्रकार का सन्तोष प्राप्त होता है।

सचाई भी यही है। एक जीव, दूसरे जीव को सुखी अथवा दुखी नहीं बना सकता। सुख और दु:ख अन्कुर हैं और शुभ तथा अशुभ कर्म उनके बीज हैं। जहाँ बीज होता है वहीं अन्कुर उगता है। इस न्याय से जहां—जिस आत्मा मे सुख या दुःख उत्पन्न हुआ है, उसी आत्मा मे उसका कारण हो सकता है, अन्यत्र नही। दूसरा जीव हमारे कर्मोदय मे निमित्त हो सकता है, मगर उस कर्म का असली कर्त्ता तो वही जीव है। वही अपने सुख-दु.ख का उपादान है। यही सत्य है, तथ्य है और जिनदेव का उपदेश है।

भाइयों ! भविष्यदत्त इस प्रकार के सोच-विचार में पड़ गया। वह फिर सोचने लगा—मेरी ममतामयी माता ने परदेश गमन न करने के लिए बहुत कहा था। बहुत समझाया था। परन्तु मैं हठ करके चल पड़ा। माता की आज्ञा का एक प्रकार से उल्लघन किया। यह उसका परिणाम है ! हाय न जाने अब कब माता के दर्शन होगे ? जब माता को मेरी स्थिति का पता

चलेगा तो उसकी क्या स्थिति होगी ? वह कर्मों की मारी, पीहर मे बैठी हुई है। उसकी आशाओं का आधार एक मात्र मैं ही हूँ। यह आधार टूट गया तो उसे कितनी निराशा होगी ? उसके संकट का पार नही रहेगा। हाय माता !

भविष्यदत्त फिर विचारता है—इस सुनसान जंगल में मेरा क्या होगा ? मैं अनजान हू और अकेला हूँ। मेरे पास जिंदा रहने के लिए कोई साधनसामग्री भी नही है। किस प्रकार जीवित रहूँगा और किस प्रकार मेरा उद्धार होगा ?

हे कर्म ! तू ने मुझे बड़ी ही विषम स्थिति में डाल दिया है ! तूने इस सुनसान जंगल मे मुझे छोड़ दिया ! कहां हस्तिनापुर कहां मेरे माता-पिता और कहा मेरे सगे-सम्बन्धी रिश्तेदार हैं ! उन सबसे मैं बिछुड गया ! तूने मुझे सबसे अलग कर दिया ! पर हे कर्म ! तेरा भी क्या अपराध है ? मैंने पहले दूसरे जीव के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार किया होगा ! उसी का फल मुझे भोगना पड़ रहा है। हाय, न जाने किस जन्म के और कौन से दुर्व्यव-हार का फल मुझे भोगना पड़ रहा है !

भविष्यदत्त फिर सोचने लगा—मुझे अपने लिए क्या चिन्ता है ? यह जीवन तो एक न एक दिन समाप्त होने को ही है। मगर माता की क्या हालत होगी ? किसी तरह एक बार मैं अपनी स्नेहशीला माता के दर्शन कर पाता और उन्हे दो शब्द कह देता तो फिर शान्ति के साथ अपने प्राणो का त्याग कर देता ! फिर दिल में कोई कांटा न रह जाता ! मेरी दुखिया माता को भी कुछ तसल्ली हो जाती ! मगर अब क्या उपाय है ? हे

देव ! तूने क्यो इतनी निष्ठुरता धारण की है ? मुझ पर न सही, मेरी माता पर तो रहम कर ! वह भोलीभाली, निष्कपट और धर्मशीला है। मेरे पापों का फल क्या उसे भी भोगना पड़ेगा ?

आह देव ! भाई बन्धुदत्त का हृदय तूने पाषाण का बना दिया ! वह धन के लोभ मे पड़कर, ईर्षा से अन्धा होकर इतना जघन्य कृत्य करने को तैयार हो गया ! सच है—भाई सरीखा मित्र और भाई सरीखा शत्रु दूसरा नहीं हो सकता। दोनों के ज्वलन्त उदाहरण इतिहास मे भरे पडे हैं राम और लक्ष्मण की सज्जनता देखो। कैसी—कैसी भयानक विपत्तियो के समय भी लक्ष्मण ने अपने भाई राम का साथ न छोडा ! राजमहल और अयोध्या का ऐश्वर्य त्याग कर वन मे वास किया, पैदल भटकते फिरे, प्राणों पर संकट झेल कर रावण से लड़े ! धन्य हैं धन्य हैं उदाराशय लक्ष्मण जैसे बन्धु ! उन्होने अपने भाई के सुख के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया। अन्त मे राम की मृत्यु का असत्य समाचार सुनकर लक्ष्मण ने अपने प्राण दे दिये। ससार के इतिहास मे भ्रातृप्रेम का यह चमकता हुआ उदाहरण बन्धुदत्त को दिखाई नही दिया !

कृष्ण और बलदेव की अलबेली जोड़ी भी क्या कम शानदार थी ? उनका स्नेह कितना गम्भीर और परिपूर्ण था। अन्त तक दोनों ने अपने प्रेम को निभाया। दुनियां मे नाम कर गये। मगर मेरे भाई बन्धुदत्त को यह उदाहरण भी याद न आया ! वह मेरी सहायता न करता, मेरे प्रति प्रेम प्रदर्शित न करता, मेरे लिए संकट न सहता, त्याग न करता, तब भी कोई बात नही थी। मगर उसने तो मेरे साथ इतना क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया ! उसने

मेरी जिन्दगी पर ही चोट की ? हाय, उसे कौरव याद आये। उसने दुर्योधन का अनुकरण किया ! वह भाई होकर भाई का शत्रु बना ! उसने विचार नहीं किया कि दुर्योधन को अन्त मे क्या नतीजा भोगना पडा था ! मगर स्वार्थ, लालच और द्वेष से जिसके नेत्र बन्द हो जाते है, उसको हित-अहित नही सूझता । वह कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विचार नहीं कर सकता !

बन्धुदत्त को अगर धन इतना प्रिय था तो वह पूरा का पूरा अपने पास रहने देता ! मैं क्या उससे हिस्सा मांगने बैठा था ? मगर उसने मेरे प्राणो का मूल्य ही कुछ न समझा !

इस प्रकार सोच कर भविष्यदत्त एक बार तो रो पड़ा । उसके रोने की ध्वनि जगल मे चारो ओर फैल गई, मगर वहा सान्त्वना देने वाला कोई नहीं था। फिर उसने विचार किया—रोना कायरता का लक्षण है और कायरता को ही बढाने वाला है। इससे कुछ भी लाभ नही होगा। आखिर तो प्रयत्न करना होगा। जो आपत्ति माथे पर आ पडी है, उससे उद्धार पाने का एक मात्र उपाय यही है कि हृदय को मजबूत करके पुरुषार्थ किया जाय। कायरता धारण करने से विपत्ति दूर नही हो सकती, संकट टल नहीं सकता, उद्धार हो नही सकता।

भाइयो ! बहुत-से लोग कठिनाई आने पर घबरा जाते हैं, अधीर हो जाते हैं, उनकी उस अधीरता से लाभ तो कुछ होता नही, हानि ही होती है। अधीरता उनके साहस को नष्ट कर देती है। विपत्ति से छुटकारा पाने की उनकी विचारशक्ति चली जाती है। इसीलिए नीतिकार कहते हैं—विपत्ति मे धैर्य रखना चाहिए।

कठिन से कठिन प्रसंग में जिसने धीरज को नहीं खोया, वह उस प्रसंग मे विजयी हो सकता है। अपने धर्म के सहारे वह संकटों के समुद्र को पार कर सकता है। मगर जो विपत्ति के समय अधीर हो जाता है, कायर बन कर रोने बैठ जाता है वह विपत्ति के साथ संघर्ष करने की अपनी शक्ति को भी खो देता है। ऐसे मनुष्य का उद्धार होना अत्यन्त कठिन होता है। सच्चा मर्द वही है जो मुसीबत में भी अपनी मर्दानगी को कायम रखता है। हे पुरुष ! तू प्रत्येक परिस्थिति मे अपने पौरुष पर विश्वास रख। दीनता मत धारण कर। हृदय को बलवान् बनाये रख। कदाचित् कायरता आ जाय तो अपने प्रबल विचारों से उसे दूर कर दे-तत्काल उस कायरता को निकाल बाहर कर दे।

भविष्यदत्त धीर, गम्भीर, धर्मनिष्ठ और सुशील नवयुवक था। उसने यही सोचा कि अब अधीर होने से काम नहीं चलेगा। फिक्र करने से लाभ नही होगा, लाभ होगा तो पुरुषार्थ से ही होगा। इस प्रकार सोचता-सोचता वह वहां से चल पडा। चलते-चलते उसे एक गुफा दिखाई दी। णमोकार मन्त्र का जाप करके वह उस गुफा मे घुस पड़ा। वह गुफा बहुत लम्बी थी, परन्तु भविष्यदत्त बढ़ता ही चला गया। चलते-चलते उसे एक नगर नजर आया। नगर को देख कर उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। उसने सोचा—बन्धुदत्त तो मुझे जगल में छोड गया था, मगर णमोकार मन्त्र का प्रभाव मुझे इस नगर मे ले आया ! हे मन्त्र राज ! तुम्हारी महिमा अपार है। जो तुम्हारा आधार पकड़ता है, उसे आनन्द ही आनन्द होता है।

१४-१०-४८ }

मन ! सुन रे !

स्तुति :

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त लोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! आपकी स्तुति करने से जन्म-जन्मान्तर में अर्थात् अनेक जन्मो मे बन्धे हुए पापों का क्षण भर में नाश हो जाता है ।

जन्म-जन्मान्तर के पाप क्षण भर मे किस प्रकार नष्ट हो सकते हैं ? इस प्रश्न का यहां एक उदाहरण देकर उत्तर दिया गया है। सन्ध्या के पश्चात् जब सूर्य अस्त होता है तो सारे संसार में चारो ओर अंधकार में समस्त विश्व छिप जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि अंधकार के सिवाय और किसी वस्तु का अस्तित्व ही नही है। मगर पूर्व दिशा में जब सूर्य का उदय होता है तो वह अत्यन्त सघन और सर्वव्यापी अन्धकार सहसा नष्ट हो जाता है और सुनहरा प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है। सूर्योदय होते ही अन्धकार का कही पता नही चलता और सकल विश्व प्रकाश से परिपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् आदिनाथ की स्तुति करने से जन्म जन्म के पापो का क्षण भर मे ही नाश हो जाता है।

भगवान् की स्तुति करने से पापों का किस प्रकार नाश हो जाता है, यह बतलाने के लिए जो उदाहरण यहां दिया गया है, वह अत्यन्त सुगम है। इस कारण कि वह हमारे जीवन में प्रतिदिन घटित होता रहता है। प्रत्येक मनुष्य इस उदाहरण से भलीभांति परिचित है। तो जिस प्रकार सूर्य की किरणें फैलते ही अंधकार का नाश होना निश्चित है, उसमें किसी भी प्रकार की शका को कोई स्थान नही है। इसी प्रकार भगवान् की स्तुति करने से जन्म-जन्मान्तर के पापो का नाश होना भी निश्चित है। सूर्य किसी के कहने से अन्धकार को नष्ट नही करता, बल्कि उसका स्वभाव ही ऐसा है कि उसका उदय होने पर अन्धकार ठहर ही नही सकता इसी प्रकार भगवान् की स्तुति का प्रभाव ही ऐसा है कि उसके सामने पाप नही ठहर सकते।

अन्धकार मलीनता का प्रतीक है। अतएव आत्मिक मलीनता को पापो को—अन्धकार के रूप मे वर्णन किया जाता है।

भाइयों ! यहाँ आचार्य महाराज ने 'भवसन्ततिसन्निबद्धम्' यह पाप का विशेषण दिया है। इसका शब्दार्थ है—'जन्म-जन्मान्तर में बन्धा हुआ।' आशय यह है कि अनेक जन्मो में बांधे हुए पाप प्रभु की स्तुति करने से नष्ट हो जाते हैं। इस कथन के द्वारा यह भी सूचित कर दिया गया है कि आत्मा इस जन्म में नया नहीं उत्पन्न हुआ है। वह जन्म-मरण की लम्बी परम्परा को भोगता हुआ चला आ रहा है। न मालूम कितने जन्म पहले के पाप आत्मा के साथ आते हैं और इस जन्म में किये हुए पाप न जाने कितने जन्मो तक आत्मा के साथ जाएँगे।

कई लोग समझते हैं कि पुण्य और पाप की बातें ढकोसला मात्र हैं। वे कहते हैं—जघन्य पाप करने वाले भी चैन की बन्शी बजाते हैं, मौज करते हैं और इस मनुष्य जीवन में ही स्वर्गीय सुखो का अनुभव करते हैं। जिनकी आत्मा पापो में डूबी रहती है, उनमे से कई धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार आदि सभी दृष्टियो से सुखी दिखलाई देते हैं। इसके विपरीत, धर्म का आचरण करने वाले, परमात्मा की प्रार्थना, स्तुति करने वाले बहुत-से लोग दीनता, दरिद्रता और दुःख मे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इससे यही नतीजा निकलता है कि पुण्य-पाप की बातें निस्सार और निराधार है।

ऐसा समझने वाले अज्ञानी जीवो को इस स्तुति में दिया हुआ 'भवसन्ततिसन्निबद्धम्' पद विशेष रूप से चिन्तनीय है।

इस पद से स्पष्ट कर दिया गया है कि जीव मौजूदा भव के पुण्य-पाप को मौजूदा भव में ही भोगता हो सो बात नहीं है। आज अधर्म का सेवन करने वाला अगर सुखी है तो उसका सुख अधर्म का फल नहीं है, बल्कि पूर्व जन्म के किसी धर्म-पुण्य कृत्य का फल है। और कोई धर्मात्मा, धर्म का आचरण करता हुआ भी अगर आज दुखी दिखाई देता है तो यह उसके धर्म का परिणाम नहीं है। यह उसके किसी पूर्व जन्म के पाप का ही फल समझना चाहिए। वह आज जो धर्माचरण कर रहा है, वह व्यर्थ नही जाने वाला है। जैसे पूर्व जन्म के पापो का फल इस जन्म में भोगा जाता है, उसी प्रकार वर्त्तमान जन्म के पुण्य-धर्म का फल आगामी किसी भव में उदय में आएगा। 'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' जो कर्म उपार्जन किया है, उसका फल बिना भोगे नहीं छूट सकता।

आचार्य महाराज ने यह बात स्पष्ट करके आत्मा को नित्यता को भी प्रकट कर दिया है। जन्म बदलते हैं, मगर आत्मा नहीं बदलता। आकाश कभी अन्धकार से परिपूर्ण हो जाता है और कभी प्रकाश से भरा होता है पर आकाश तो वहीं का वहीं है! अन्धकार के समय दूसरा और प्रकाश के समय दूसरा नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा सदैव एक सरीखा रहता है। जन्म और मरण प्रकाश और अन्धकार के समान है तथा आत्मा आकाश के समान है, जो नित्य और अविनाशी है।

भाइयों! अगर सावधानी के साथ विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि संसार में जन्म-मरण का दुःख ही सबसे बडा दुःख है। किसी आदमी को सब सुख मिल जाएँ, किसी बात की

कमी न रहे और उसे कहा जाय की अब तुझे मरना है, तो उसके वह सारे सुख उसी समय विलीन हो जाते हैं। मृत्यु के दुःख के सामने संसार का बड़े से बड़ा सुख भी शून्य रूप बन जाता है। यही नहीं दुखी से दुखी मनुष्य और यहां तक कि पशु भी मरना नही चाहता। अस्सी वर्ष का बूढ़ा है। शरीर बेकार हो गया है। आधे अंग में लकवा मार गया है। देखकर लोग कहते हैं कि अब इसका मर जाना ही सुधर जाना है। ऐसी यातनामय जिन्दगी से मृत्यु हजार गुणी अच्छी है। परन्तु इस बूढे से पूछो कि क्या सचमुच ही वह मरना चाहता है ? नहीं, वह घोर और दारुण यन्त्रणा भोगते समय भी जीवित रहने की ही अभिलाषा करता है। वह रोग से छुटकारा पाने के लिए औषध का सेवन करता है और चाहता है कि किसी प्रकार चंगा हो जाय। इसी से समझा जा सकता है कि मृत्यु जीवधारियो के लिए अत्यन्त अनिष्ट है।

इतना होते हुए भी मनुष्य की एक नहीं चलती। उसे अन्त में मरना ही पड़ता है। मरने के सिवाय दूसरा कोई विकल्प ही नही है। फिर भी मनुष्य मोह-ममता मे फँसा हुआ है। जानता है कि आखिर सब कुछ छोड़-छाड़ कर मरना पड़ेगा, फिर भी ईश्वर का भजन नहीं करता, पापों का नाश करने के लिए धर्म का आचरण नही करता, हृदय मे वैराग्य को धारण नही करता और त्याग भावना को पुष्ट नही करता। कोई विरले ही महापुरुष ऐसे निकलते हैं जो संसार की सम्पदा को लात मार कर चल देते हैं और भगवान् ऋषभदेव की शरण में जाकर जन्म-मरण को जीत कर अजर-अमर पदवी प्राप्त करने के लिए उद्यत होते हैं।

किसी की जेब में से एक रुपया गिर जाता है तो वह बड़ी

दूर तक जाकर उसे तलाश करता है। जब तक मिल नहीं जाता तब तक उसे चैन नही मिलती। उस एक रुपये की ममता को जीत लेना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है। जब संसार के जीवो की यह स्थिति है तो जिसके पास लाखों–करोडो रुपयों की हीरे–पन्ने की खानें हों, असीम वैभव हो और अपरिमित भन्डार भरा हो, उनका ममता त्याग देना कितना कठिन है ?

चक्रवर्ती राजा के वैभव का क्या पूछना है ? उसके महलों के फर्श रत्नों से जडे होते हैं और बयालीस खण्ड के महल होते हैं। चौंसठ हजार रानियां होती हैं। वे चोहह रत्नो और नौ नीधियों के स्वामी होते हैं। बत्तीस हजार मुकुटबंद राजा और बत्तीस हजार छोटे-छोटे राजा उनकी सेवा मे रहते हैं और एक-एक कन्या उन्हे भेंट करते हैं। दासों और दासियों की तो कोई गिनती ही न पूछिए।

लोग आश्चर्य करेंगे कि एक राजा की चौसठ हजार रानियां ! मगर आश्चर्य करने वालो को स्मरण रखना चाहिए कि आज की परिस्थिति के साथ उस समय की परिस्थिति की तुलना नही की जा सकती। उस समय की समाज—व्यवस्था आज की समाज व्यवस्था से भिन्न थी। आप जिस काल का वृतान्त पढते या सुनते हों, उस काल को ध्यान मे रखकर ही उसके सम्बन्ध मे आलोचना करनी चाहिए। इस दृष्टिकोण को अपनाये बिना हम पुरातन कालीन समाज के प्रति यथोचित न्याय नहीं कर सकते। हजारों—लाखों वर्षों पुराने रीति–रिवाजों को आधु–निकता की कसौटी पर कसना न तो उचित ही है और न लाभप्रद है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात, जो ध्यान में रखनी चाहिए, यह है कि यह वर्णन किसी साधारण पुरुष का नही है। उस समय का भी कोई सामान्य पुरुष चौसठ हजार स्त्रियो का स्वामी नहीं होता था। यह तो असाधारण शक्ति से सम्पन्न, लोकोत्तर बल के धारक चक्रवर्त्ती का वर्णन है। चक्रवर्त्ती विशालतम साम्राज्य के अधीश्वर ही नही होते, बल्कि आश्चर्यजनक शक्ति के भी स्वामी होते हैं। ऐसे असाधारण पुरुष दस कोडा कोडी सागरोपम जितने लम्बे समय में सिर्फ बारह ही होते हैं

चक्रवर्त्ती मे असाधारण बल ही होता हो सो बात नहीं है, बल्कि उनमें दैवी बल और चमत्कार भी होता है। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए:—

एक बार नारदजी कृष्णजी के पास आये। कृष्णजी की सोलह हजार रानियां थीं। नारदजी को न जाने क्या सूझी कि कृष्णजी से कहने लगे—आपके रनवास में सोलह हजार रानियां हैं। आप उन सबको किस प्रकार सुखी और सन्तुष्ट रख सकते हैं? तब कृष्णजी ने उत्तर दिया—आप रनवास में पधारिये और देखिए कि क्या हाल है! नारदजी सब रानियों के पास गये और देखकर चकित रह गय कि प्रत्येक रानी के महल में श्रीकृष्णजी मौजूद हैं। कोई भी रानी ऐसी नहीं, जिसके पास वह मौजूद न हो।

श्रीकृष्णजी तो चक्रवर्त्ती भी नही थे, सिर्फ अर्धचक्रवर्त्ती थे। जैसे उनमें अनेक रूप बना लेने की शक्ति थी, वैसे ही चक्रवर्त्ती में भी अनेक रूप बना लेने की शक्ति होती है। ऐसी

स्थिति में अगर वे हजारों रानियों के स्वामी होते हैं तो आश्चर्य की कौन—सी बात है ?

अगर कहा जाय कि अनेक रूप बना लेने की बात सत्य नहीं मानी जा सकती तो ऐसा कहना बेहूदी बात है। जिस शास्त्र में चक्रवर्त्ती की चौसठ हजार रानियां होने का उल्लेख मिलता है, उसी शास्त्र मे चक्रवर्त्ती के अनेक रूप बनाने का भी उल्लेख मिलता है। तब क्या यह न्यायसंगत है कि शास्त्र की एक बात सही मानकर चौंसठ हजार रानियाँ होने को बुरा समझा जाय और दूसरी बात को गलत मान कर अनेक रूप बनाने की बात को अस्वीकार कर दिया जाय ? नहीं, उचित यही है कि जिस शास्त्र की एक बात सही मानी है, उसकी दूसरी बात भी जिसका उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है, सही मानी जाय।

यह सब पूर्वोक्त ऋद्धि चक्रवर्त्ती की पूर्वजन्म की तपस्या का फल है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे गौतम स्वामी, भगवान् महावीर से प्रश्न करते हैं कि— भगवान् ! चक्रवर्त्तियों को कौन सा आचरण करने के कारण इतनी बडी ऋद्धि प्राप्त होती है ? भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! उन्होने पूर्वजन्म में बडी भारी तपस्या की है और उसी के फलस्वरूप उन्हे ऐसी ऋद्धि प्राप्त होती है। यह उनके पूर्व जन्म के धर्माचरण का परिणाम है।

चक्रवर्त्ती राजा ऐसी विशाल ऋद्धि के अधिपति होते हैं। मगर वे तीर्थङ्कर देव के मुखारविन्द से झरने वाली सुधा के समान देशना को सुनते हैं, तो वैराग्य के रस मे डूब जाते हैं और अपने मस्तक का मुकुट उतार कर फेंक देते हैं। वे तिनके

की तरह समस्त साम्राज्य को त्याग देते है, विषयभोगों को विष के समान समझकर ठुकरा देते हैं और लोकोत्तर शान्ति प्राप्त करने हेतु भिक्षुक-जीवन अंगीकार कर लेते हैं। जरा इस त्याग भावना की तुलना अपनी भावना के साथ तो करो ! आप से एक रुपया का मोह नहीं छूटता और वे छह खण्ड के राज्य को लात मार देते हैं ! इसका कारण यही है कि वे जानते हैं—अगर साम्राज्य मे आसक्त बने रहे भोगोपभोगों के कीचड़ में फंसे रहे, दुनिया के आनन्द मे मगन रहे तो 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं' करना पड़ेगा, अर्थात् जन्म-मरण का चक्र चालू ही रहेगा। अजर-अमर पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकेगा।

इस विवेचन से आप समझ सकते हैं कि चक्रवर्त्ती के सर्वोत्कृष्ट वैभव से भी अधिक सुख मोक्ष मे है। ऐसा न होता तो चक्रवर्त्ती अपने सुख को तुच्छ समझ कर मोक्ष-सुख पाने के लिए क्यो उद्यत होते ? चक्रवर्ती से अनगार और भिक्षुक क्यो बनते ? मगर उन्हे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो जाता है, भगवान् की स्तुति और भक्ति करने से उनके पापों का अन्धकार नष्ट हो जाता है, वे प्रकाश में आ जाते हैं। वे साधु बनकर निकल जाते हैं और परमात्मा के ध्यान मे मगन हो जाते हैं। उनमे अपूर्व समता-रस उत्पन्न हो जाता है। कदाचित् किसी क्रूरकर्मा अनार्यशील पुरुष ने उन्हे मारा-पीटा या सताया और इस बात की खबर वहां के राजा को लगी और उसने उस पुरुष को पकड़वाकर उन मुनि के सामने पेश किया और पूछा—महात्मन् ! इसने आपको कष्ट पहुँचाया है, तो उसके बदले इसे क्या दण्ड दिया जाय ? तब मुनि समता-रस का पान

करते हुए कहते हैं—राजन् ! इस पुरुष ने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। मेरी कोई हानि नही की है। यही नही, बल्कि यह मेरा उपकारक है। यह मेरे कर्मों की निर्जरा में सहायक हुआ है। इसने मुझे कर्म के भार से कुछ हलका कर दिया है। इस बेचारे मे मेरा विगाड करने की शक्ति ही नही है। वस्तुतः कोई किसी का कुछ बिगाड़ नही सकता। अगर यह मेरी आत्मा को पतित कर सकता होता तो मेरा बिगाड करने वाला कहलाता। मगर ऐसा तो हो नहीं सकता। आत्मा जब गिरता है तो अपने ही आचरण से गिरता है और यदि उठता है तो अपने ही कर्त्तव्य से उठता है। इस पुरुष ने अगर शरीर को कुछ हानि पहुँचाई भी हो तो उससे मुझे क्या प्रयोजन है? शरीर मैं नहीं हूँ और मैं शरीर नही हूँ। अतएव हे राजन् ! मेरा इस व्यक्ति पर पूर्ण क्षमाभाव है और चाहता हूँ कि आप भी इसे क्षमा कर दें।

भाइयों ! जिस महापुरुष के अन्त करण मे इस प्रकार का क्षमाभाव भर गया हो, जिसने निन्दा—स्तुति, सम्मान-अपमान, शत्रु-मित्र आदि में पूरी तरह समभाव धारण कर लिया हो, उसे अगर मोक्ष नही मिलेगा तो किसे मिलेगा? वही तो मोक्ष का सच्चा अधिकारी है।

महल मनोहर पौढ़ता, फूलों की सेज बिछाय,
ते कँकरीली भूमि पर सोता समधर काय,
वे गुरु मेरे उर बसो ॥ध्रुव॥

वह चक्रवर्त्ती राजा फूलों की सेज पर सोता था और फूलों की पांखुड़ी से पाखुड़ी जमाई जाती थी। कदाचित् पांखुड़ी

पर पांखुडी आ जाती तो वह उसके शरीर में चुभती थी और उसे व्याकुल बना देती थी। ऐसा सुकुमार और कोमल था उनका शरीर !

आप सोचते होगे कि भला यह भी कोई सुकुमारता है ! मगर इसमें आश्चर्य की कोई बात नही है। शरीर को कोमल से कोमल और कठोर से कठोर भी बनाया जा सकता है। लखनऊ का नवाब वाहेदुल्ला मखमल पर चलता हुआ क्या कहता था ?

खाक में नाज मिला उनका जो कहा करते थे।
फर्श मखमल पै मेरे पांव छिले जाते हैं ॥

नवाब साहब भी ऐसे ही लोगों में थे। मखमल के फर्श पर चलने पर भी उनके पैर छिलते थे ! लखनऊ में आज भी उसके खानदान के लोग मौजूद हैं। वे शाम को भी छाता लगा कर निकलते हैं और पूछने पर कहते हैं कि अब आसमान से भी शबनम बरसती है और इससे हमे जुकाम हो जायगा ! दूध में मलाई जम गई और हाथ की उगलियों से वह इकट्ठी की तो उगलियों में बांयटा आ गया।

कहते हैं नवाब साहब को पकड़ने के लिए अंग्रेज आये। किसी ने उसे सूचना दी कि अग्रेज आपको गिरफ्तार करने आ रहे हैं, आप यहां से भाग जाइए। नवाब बोले-भागूं कैसे पैरों मे जूतियां नहीं हैं ! सूचना देने वाले ने बतलाया-वे यहां पड़ी हैं, पहन लीजिए। तब उत्तर मिला—मेरे बड़प्पन में फर्क आता है। कैसी सुकुमारता और कैसी शान !

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले चक्रवर्ती, राजा आदि, जिनके शरीर पर १००८ प्रशस्त लक्षण होते हैं, सारे वैभव को छोड़ कर साधु बन जाते हैं। साधु बन जाने पर वही कंकर-पत्थर वाली जमीन पर सोते हैं और तनिक भी कष्ट नहीं मानते। पूर्ण समभाव में लीन रहते हैं।

अरे! इस रेत और धूल से कहां तक बचोगे? आखिर तो इसी में मिलना है। सभी इसी मे मिले हैं और सभी इसी में मिलेंगे। बड़े-बड़े धूल में मिल गये तो तुम किस गिनती मे हो? फिर क्यों धूल और मिट्टी से घबराते हो? क्यों नगे पैरों चलने से डरते हो? देखो, चक्रवर्ती राजा भी जन्म-मरण के घोरतर दुःखों से छुटकारा पाने के लिए साधु बनते हैं। फिर तुम्हारे पास कौन-सा वैभव है कि तुम उससे चिपटे हो और जन्म-मरण के दुःख से बचने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करते? लखनऊ का नवाब अपना बडप्पन चला जाने के डर से स्वयं उठाकर जूते नहीं पहन सकता और उसके बदले अपने शत्रुओ के हाथो गिरफ्तार होना सहन कर लेता है। इसे क्या बुद्धिमत्ता कहते हो? नही, तुम नवाब की इस मूर्खता पर हँसोगे परन्तु अपने ऊपर क्यो नही हँसते? संसार के इस निस्सार और तुच्छ वैभव के मोह में तुम जन्म-मरण के महान् दु.ख को सहन करने के लिये तैयार हो, क्या यह उक्त नवाब की मूर्खता से कुछ कम मूर्खता है? बुद्धि और विवेक की सफलता अपना हित-अहित सोचने मे ही है। उसे सोचो और हित के लिए प्रवृत्ति करो। अवसर चूके और चूके। फिर ऐसा अवसर कब मिलेगा, कौन जानता है?

यह मौका जाता है अमोलक, दिल चाहे तो जतन कर कर,
प्रभु-भजन का अमृत प्याला, पीना हो तो पी भर भर ।।
कई तो आगे हो चुके, जो फूलों की सेज बिछाते थे,
पता नही उन पुरुषों का, जो पैरों से जमीं धुजाते थे।
लाखों जनो का मुजरा लेते, सिर छत्र चँवर ढुलवाते थे,
कालबलि से हार गये जो औरों पर अकड़ाते थे ।
चौथमल कहे वीर प्रभु भज, भव-सागर से तर तर तर ।

भाइयो ! जरा नजर फैला कर देखो ! इस विशाल भूमण्डल पर कितने प्रकार की जीवयोनियाँ मौजूद हैं ? आप गिनती करने चलेंगे तो गिनते-गिनते थक जाएंगे और फिर भी इनका पार न पाएंगे । वर्षा ऋतु मे असख्य तरह के कीट पैदा हो जाते हैं, उनका रूप-रग, आकार-प्रकार सभी कुछ विलक्षण होता है। जरा विचार तो करो कि उन अनगिनती जीवयोनियों में जन्म लेने से आप बच गये हैं और किसी प्रबल पुण्य के उदय से मनुष्य भव पा सके हैं। यह आपकी कितनी बडी विजय है ? इतनी बडी विजय को आप जरा-सी असावधानी के कारण पराजय मे परिणत मत होने दो । इस सफलता को विफलता मत बनाओ। इस दुर्लभ अवसर को व्यर्थ न जाने दो । यह अमोलक अवसर है । वार-वार मिलने वाला नही है । इसे विषय भोगों में नष्ट न करो । धन सम्पत्ति के लिए इस जीवन को नष्ट कर देना हीरो के बदले कोयला खरीदना है, कल्पवृक्ष को उखाड कर धतूरा बोना है ! चेतो, विचार करो । प्रभु का भजन करो, स्तवन करो और जन्म-जन्मान्तर के पापों का नाश कर डालो । यह जन्म

पूर्वकृत पापो को नष्ट करने के लिए है, पापों को बढ़ाने के लिए नही है । यहां से टिकिट कटने के बाद न जाने क्या अवस्था होगी ? जरा निगोद की व्यवस्था तो देखो । एक श्वास में १७॥ बार वहां जन्म-मरण करना पड़ता है ।

तुम्हे ऐश्वर्य मिला है तो उसके अभिमान में ऐंठना ठीक नही है । कितना ऐश्वर्य है तुम्हारे पास ? चक्रवर्त्ती वासुदेव और बड़ें २ सम्राटो के ऐश्वर्य के आगे तुम्हारे ऐश्वर्य की क्या गिनती ? वे भी खाली हाथ चले गए तो तुम क्या लेकर जाने वाले हो ? तुम्हे दो नेत्र मिले हैं तो दोनों का सदुपयोग करो । एक नेत्र से इस लोक को देखते हो, वर्त्तमान को देखते हो तो दूसरे नेत्र से परलोक को भी देखो । भविष्य पर भी एक नजर रक्खो । दुनियादारी के काम करते हो तो थोड़ा—बहुत धर्म भी करो । दिन रात घर की तो दो घड़ी हर की भी याद किया करो । इस जिंदगी का कुछ तो लाभ उठालो । कोरे जाओगे तो आगे क्या करोगे ? इतनी चेतावनी देने पर भी क्या आपका विवेक जागृत नही होता ?

भाइयो ! लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि जो बात बीते बूंद से सो नही आवे होद से । अर्थात् मौके पर अल्प परिश्रम से जो काम हो सकता है, वही काम मौका चूक जाने पर बहुत परिश्रम करने पर भी नहीं हो सकता । इस पर एक दृष्टान्त लीजिए।—

दिल्ली के बादशाह के पास एक इत्र वाला आया । उसने बढ़िया से बढिया रूहे गुलाब की एक सींक बादशाह को दी । बादशाह सींक ले रहा था तब उसमे से एक बूंद जमीन पर गिर गई । बादशाह ने उंगली से पोंछ कर अपनी दाढ़ी से वह इत्र

लगा लिया । यह देख दरबार के सब सभासद और बीरबल हँस पड़े ! बादशाह समझ गया कि यह लोग इस बात पर हँसे हैं कि मैंने जमीन पर गिरा हुआ इत्र लगा लिया । यह लोग मुझे कंजूस समझ कर हँस रहे हैं । तब बादशाह ने इस प्रभाव को दूर करने के लिए इत्र बेचने वाले गंधी से कहा—यह इत्र तेरे पास कितना है ? गंधी बोला—हूजूर मेरे पास करीब दस हजार का मौजूद है । बादशाह ने उसे आदेश दिया—अच्छा, सारा इत्र मेरे महल के हौज में डाल दे ?

इत्र हौज में डलवा दिया गया और गंधी को कीमत चुका दी गई । इसके बाद बादशाह ने बीरबल को हुक्म दिया—दस-पन्द्रह मछलियां पकड़वा कर उस हौज में डलवा दो । ऐसा ही किया गया । बादशाह किस मतलब से ऐसा करवा रहे हैं, यह बात तो बीरबल की समझ में नहीं आई, मगर बादशाह का हुक्म टाला नहीं जा सकता था । अतएव हौज में मछलियां डाल दी गई मछलियां उस इत्र में तड़फने लगीं ।

बादशाह बीरबल को लेकर हौज के पास गया । उसने बीरबल से कहा—देखो, मछलियां कैसी किलोलें कर रही हैं ! बीरबल ने उत्तर दिया—जहाँपनाह ! यह किलोलें नहीं कर रही हैं, बल्कि यह मौका चूक गई हैं, इसलिए पकड़ी गई हैं ! बीरबल ने साथ ही कहा—हुजूर ! बूंद की बात हौज से भी नहीं आती है ! जो मौका निकल गया सो निकल गया । लाखों रुपया खर्च करके भी वह फिर नहीं लाया जा सकता । बीरबल का उत्तर सुनकर बादशाह लज्जित हुआ । उसने मन ही मन विचार किया दस हजार रुपये भी पानी में गये और बात भी नहीं बनी !

तात्पर्य यह है कि उचित अवसर पर जो काम कर लिया जाय, वही ठीक है। बादशाह ने एक बून्द इत्र के लोभ में पड़ कर दस हजार रुपये खर्च किये, फिर भी उसकी कजूसी की बात तो लोग समझ ही गये। उस प्रभाव को वह मिटा नही सका। अवसर हाथ से निकल जाने पर फिर पछ-तावा ही शेष रह जाता है। वह अवसर फिर हाथ आने वाला नहीं। आपका बचपन चला गया है, अब लाख प्रयत्न करके भी आप उसे वापिस नही ला सकते। अपनी समस्त सम्पत्ति के बदले भी आप बचपन नही पा सकते। इसी प्रकार जिसकी यौवनावस्था चली गई है, वह चाहे सिर पटक कर मर जाय, फिर भी यौवन को वापिस नही प्राप्त कर सकता। तीन लोक का राज्य देने पर भी जिन्दगी का एक क्षण, जो बीत चुका है, नहीं मिल सकता। कदापि नही मिल सकता। इसी से समझ लो कि इस जीवन का कितना मूल्य है! अफसोस है कि जिस जीवन का एक-एक पल तीन लोक की सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान् है, उसी जीवन के वर्ष के वर्ष व्यर्थ व्यतीत कर रहे हो! अरे, इससे बडी नादानी और क्या हो सकती है? मगर 'यदतीत-मतीतमेव तत्' जो बीत गया सो बीत गया, जो कुछ शेष है उसे तो सार्थक करो, उसका तो सदुपयोग करो। अपनी समस्त शक्तिया और सम्पूर्ण समय अगर परमात्मभजन और आत्म-कल्याण मे लगा सको तो भाग्यशाली समझे जाओगे। इतना न कर सको तो भी कुछ समय भगवान् ऋषभदेव के भजन मे लगाओ। आपके पुराने पापों को काटने के लिए भगवान् का नाम दिव्य शस्त्र है। इसी शस्त्र से जन्म-मरण के बन्धन काटे जाते हैं।

मन सुन रे ! यह अमोलक घड़ी श्रावक की हाथ से जावे ।
मन सुन रे ! यह गया वक्त नही लौट कदापि आवे ।।

हे मन ! सुन ले, इस नग्न सत्य को सुन ले । जीवन की यह अनमोल घड़ियाँ जा रही हैं, एक के बाद दूसरी, बिना रूके निरन्तर चली जा रही है और जो घडी जा रही है, वह दोबारा हाथ आने वाली नही है। इसके बीत जाने पर अगर सावचेत भी हुआ तो पछताना पड़ेगा । बादशाह की तरह बून्द से चूक गया तो फिर तेरा प्रयोजन सिद्ध होने वाला नही है । इसलिए हे भव्य, अगर तेरे अन्तर मे विवेक है, और वह विवेक जागृत है तो समझ जा ! प्रमाद बहुत कर चुका है, और अप्रमत्त बना । सावधान हो । अपनी आत्मा की तरफ देख ।

बार-बार सद्गुरुओं और ज्ञानियों की वाणी सुन कर भी तुझे होश नहीं आता ? पानी बरसता है । उसमे कोई मटका, कोई लोटा, कोई गिलास भर लेते हैं । कोई-कोई मुँह फाड कर ही खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान् की वाणी की यह वर्षा हो रही है । इसमे जितना ले सकें उतना ले लो । जो व्रत - प्रत्याख्यान - नियम आदि ग्रहण कर लोगे वही आगे काम आने वाले हैं। यही आगामी जीवन की पूंजी होगी । कई लोग सोचते रहते हैं कि अब करेंगे, फिर करेंगे, मगर जिन्दगी का भरोसा क्या है ? और फिर जिस कार्य को करने योग्य समझ लिया है, और अभी करने की सुविधा भी है, उसे फिर के लिए क्यो टालते हो ? आकाश का सूर्य तो निश्चित समय पर अस्त होता है, किन्तु जीवन के सूर्य के अस्त होने का कोई समय नियत

नहीं है। इस सूर्य के अस्त होने से पहले-पहले ही मोती पिरोने हों तो पिरो ले। जीवन की सध्या आने पर रोशनी धुंधली हो जायगी, चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त हो जायगा। फिर कुछ भी करते नहीं बनेगा।

मनुष्य जीवन ही पापों का नाश करने का उत्तम साधन है, जन्म-मरण के अनादि कालीन चक्कर को मिटाने वाला है और अजर-अमर पदवी इसी जन्म से प्राप्त हो सकती है। अनन्त आत्माओं ने इसी जन्म से अपना कल्याण साधा है। अनायास ही तुम्हे यह महामूल्यवान् साधन मिल गया है। इसे गँवा देना चतुराई नहीं है। भाइयो! ज्ञानियों का कहना मानो, अपने जीवन को धर्म से ओतप्रोत कर लो। यह मत समझो कि मैं सबको साधु बनने की प्रेरणा कर रहा हूँ। यद्यपि पूर्ण शान्ति पूर्ण निराकुलता और पूर्ण साधना के लिए ससार का परित्याग कर देना ही उचित है, परन्तु मैं समझता हूं कि आप सब साधु नहीं बन सकते। साधु बनने के लिए जिस विरक्ति और योग्यता की आवश्यकता है, वह सब मे नही आ सकती। लेकिन गृहस्थावस्था में जो धर्मसाधना की जा सकती है, उससे दूर मत भागो। प्रभु ने गृहस्थधर्म का भी उपदेश दिया है। गृहस्थधर्म का यथावत् पालन करने वाला भी कृतार्थ हो जाता है। अतएव आप कम से कम उस धर्म का तो पालन करो। श्रावक के योग्य दया पालो, असत्य भाषण से बचो, अनीति से बचो, स्वस्त्री सन्तोषव्रत को धारण करो, ममता को सीमित करो, षट् आवश्यक क्रिया करो, यथोचित दान, शील, तप और भावना रूप धर्म का आराधन करो। इतना करने से आपका गार्हस्थ्य-जीवन बिगड़ नहीं

जाएगा । उसमें कोई व्याघात उपस्थित नहीं होगा । इसके विपरीत आपको अतिशय शान्ति मिलेगी, प्रतिष्ठा भी मिलेगी और आत्म-कल्याण भी होगा । आप एक आदर्श गृहस्थ बनकर लेश मात्र भी घाटे मे नही रहेगे, वरन् नफे मे ही रहेगे ।

आज यह बात आपकी समझ में न आती हो तो इस हित-सलाह पर गभीरता से विचार करना और अपनी शक्ति को न छिपाते हुए जितना धर्माचरण हो सकता हो अवश्य करना। अपने मन को मनाना ।

भविष्यदत्त चरित---

देखो भविष्यदत्त कोई साधु नही था, फिर भी उसका अन्तःकरण धर्म के रंग में रगा हुआ था । संकट के समय वह ऐसा आकुल-व्याकुल नही हुआ कि धर्म को भूल जाय । वह णमोकार मत्र का स्मरण करके गुफा मे घुसा और आगे चल कर उसे एक नगर दिखाई दिया । उस नगर का नाम तिलकपुर पट्टन था । सच पूछो तो धर्म ही उसे वहाँ लेकर पहुँचा । अन्यथा जन शून्य जंगल में न जाने उसकी क्या दशा होती ? माता, पिता, धन सम्पत्ति आदि कोई भी उसकी रक्षा करने मे समर्थ नही था। ऐसे अवसर पर एक मात्र धर्म ही सहायक होता है। धर्म ने भविष्यदत्त की रक्षा की ।

भविष्यदत्त जब तिलकपुर पट्टन मे पहुँचा तो वहाँ की अनूठी छटा देखकर चकित रह गया । उसे सहसा अपने नेत्रों पर विश्वास नही हुआ। ऐसा जान पडा कि वह मानो स्थूल

शरीर सहित स्वर्ग में आ पहुँचा है। वहाँ के भवन भी देवभवन के समान सुन्दर और मनोरम दिखलाई दिये। भविष्यदत्त आश्चर्य चकित नेत्रो से नगर की उस अद्भुत शोभा को देखता हुआ आगे बढ़ चला।

कुछ दूर जाकर उसने देखा कि एक सुन्दर सरोवर जल से परिपूर्ण है और उसमें कमल खिले हुए हैं। कमलों पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। उसे हस्तिनापुर का स्मरण हो आया। सोचने लगा— इस नगर की तुलना मे हस्तिनापुर की क्या बिसात है ? यह हस्तिनापुर से भी अत्यन्त सुन्दर है। मगर भविष्यदत्त को यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि इस स्वर्गीय शोभा से समन्वित नगर मे कही एक भी मनुष्य दृष्टिगोचर नही हो रहा है। नगर मे प्रवेश करते समय उसने देखा था कि सांठे के खेत खड़े हैं और उनमे बैल चर रहे हैं, मगर उन्हें निकालने वाला कोई नही है। उस समय उसने खयाल किया था कि संयोगवश ही ऐसा हुआ होगा या आदमी इधर-उधर कहीं चला गया होगा। किन्तु नगर मे प्रवेश करने पर भी उसे कही मनुष्य की सूरत नजर न आई। वह बीच बाजार मे आ पहुँचा और दुकानें सब खुली हुई हैं, मगर कही भी आदमी के दर्शन नहीं हो रहे है। उसने देखा —टोकरो के ढ़ेर पडे हैं, मगर व्यापारी कोई नहीं है। आगे चला तो उसे सर्राफो की दुकानें दिखाई दी। जेवरो का ढेर है, पर उन्हे सँभालने वाला और बेचने वाला कोई है ही नहीं ! दूसरी तरफ हलवाइयो की दुकानें हैं और उनमें तरह-तरह की मिठाइयां सजी रक्खी है। पर उसकी समझ में नही आया कि मिठाइयां बनाने वाला, सजाने वाला, बेचने

वाला और खरीदने वाला कौन है ? वह बजाजी की दुकानों की ओर मुडा तो वहां भी यही हाल है। उत्तम से उत्तम वस्त्रो के थान के थान पड़े हैं, मगर व्यापारी नदारद हैं ! जौहरी की दुकानो पर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि जवाहरात के ढ़ेर के ढ़ेर पड़े हैं, मगर न दूकानदार है न ग्राहक है। यह विचित्र हाल देख कर भविष्यदत्त के आश्चर्य का पार न रहा। वह सोचने लगा—मैं कहां आ पहुँचा हू ? जो कुछ देख रहा हूं, क्या सत्य है ? मैं मायापुरी मे तो नही आ गया हू ? मेरी आँखो को भ्रम तो नही हो रहा है ? कोई सपना तो नही देख रहा हूं ?

उसने अपने आपको भलीभांति सँभाला। मालूम हुआ, जो कुछ देख रहा है, सच ही देख रहा है। तो फिर सब प्रकार की दुकानों से सुसज्जित इस बाजार मे और देवलोक के सौन्दर्य की स्पर्धा करने वाले इन भव्य और विशाल महलो मे कहीं भी, कोई भी मनुष्य क्यो दिखाई नही देता है ? आखिर सब लोग कहाँ चले गये ? सर्वत्र शून्यता ही शून्यता क्यो व्याप्त है ?

भविष्यदत्त का चित्त व्यग्र और उद्विग्न हो गया। वह विचारने लगा—इन मकानो मे कभी क्या राग–रङ्ग रहा होगा ? ऐसा सुन्दर शहर है, जहाँ लाखो आदमी रहते होगे किन्तु आज तो यह विचित्र स्थिति में है ! सब चीजें मौजूद हैं मगर आदमी मौजूद नही हैं। आदमी के अभाव मे इन चीजों का क्या मूल्य है ? वास्तव में संसार के किसी भी पदार्थ की कोई कीमत नहीं है, कीमत मनुष्य की है। मनुष्य ही दूसरी सब वस्तुओ को अपनी कल्पना के अनुसार मूल्य प्रदान करता है। आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य पहले तो इनका मूल्य कल्पित कर लेता है और फिर उसी

कल्पित मूल्य के पीछे अपना समग्र जीवन समर्पित कर देता है। यहां जौहरी की दुकान पर सजे हुए रत्नो में और रास्ते के कंकरों मे क्या फर्क है? दोनो की कीमत एक-सी है क्योंकि दोनों में भेद करने वाला मनुष्य है और वह यहां मौजूद नही है। इस दृष्टि से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि दुनिया की बडी से बडी कीमती समझी जाने वाली चीज भी वास्तव में कोई कीमत नहीं रखती। सब कीमतें मनुष्य की कल्पना का ही खेल है। फिर भी हाय, मनुष्य कितना नादान है कि वह अपने जीवन को इनके लिए नष्ट कर देता है। भाई बन्धुदत्त ने इसी मायाजाल में पड कर मुझे मार डालने का प्रयत्न किया। यदि वह यहां आ जाता तो उसे पता चलता कि जिन वस्तुओ के प्रलोभन में पड़ कर तू घोर से घोर अनर्थ कर रहा है, उनकी कीमत यह है। यहां उन्हे पूछने वाला ही कोई नही है। सांठों को खाने के लिए बैल थे, मगर इन रत्नो को तो बैल सूंघना भी नही चाहेगे। ससार में सारभूत समझी जाने वालो सम्पदा की निस्सारता यहां प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है।

भविष्यदत्त इस प्रकार सोच-विचार में डूबा हुआ था। वह किंकर्त्तव्य-मूढ हो रहा था। उसे अन्न खाये तीसरा दिन है। उसका शरीर जो बचपन से ही लाड़ प्यार में पाला गया और अतीव सुकुमार था, कृश सा हो गया है। चलते-चलते आंखो के आगे अन्धेरा छा जाता है। भूख बुरी तरह सता रही है। यद्यपि हलवाइयो की दुकानें खुली पडी थीं और मना करने वाला भी कोई नही था, मगर वह कोई चीज उठा कर खा नहीं सकता था, क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा थी कि बिना दिये नहीं

खाऊँगा ! वह अदत्तादान का त्यागी था । वह अपनी प्रतिज्ञा पर इतना दृढ था कि प्राण त्याग सकता था, परन्तु प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता था । वह खाना चाहता था मगर कोई आज्ञा देने वाला मिले तो ही खाना चाहता था ।

भाइयो ! प्रतिज्ञा का काम बड़ा टेढा है । जब प्रतिज्ञा ली जाय तो सोच—समझकर लेनी चाहिए और एक बार प्रतिज्ञा लेकर उसे पूरी तरह निभानी चाहिए प्राण देकर भी प्रण का पालन करना उत्तम पुरुषो का कर्त्तव्य है । जिसके चित्त मे दृढता होती है, उसके लिए प्रण पालना कोई कठिन बात नहीं है । कायर लोग जरा-सी कठिनाई आने पर अपने प्रण से गिर जाते हैं, मगर शूरवीर पुरुष कठिनाई को अपनी दृढता से जीत लेते है । चित्त मे अगर दृढता होती है तो कठिन से कठिन परिस्थिति भी मनुष्य को अपने संकल्प से गिरा नहीं सकती ।

अमर नामक एक सन्यासी हो गये हैं । उनके पांच सौ चेले थे । उनके अदत्तादान का त्यागी था । वे बिना दी हुई चीज नहीं लेते थे । एक बार उनके पांच सौ चेले अपने-अपने कमडलो मे पानी भर कर चले । एक गांव से दुसरे गाव चले जा रहे थे । बीच मे लम्बा रास्ता था और आदमियों की बस्ती नही थी । चेलो के पास जो पानी था, वह समाप्त हो गया । सबके कमडलु रीते हो गये । मगर कोई आदमी न मिला, जिससे नवीन पानी मांग कर ले लेते । वे सब प्यास से बेचैन हो गये । पास मे गंगा नदी बह रही थी, मगर किसी की आज्ञा लिये बना वे गगा का पानी ले नही सकते थे । आखिर अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर

उन्होने संथारा कर लिया। शुभ भाव में स्थित होने से वे शरीर त्याग कर पाँचवें देवलोक मे उत्पन्न हुए।

प्राचीन काल में अनेक प्रणवीर पुरुष हो गये हैं। श्रावक कामदेव और अरणक का उदाहरण आप सुन चुके होंगे। कामदेव कोई साधु-संन्यासी नही थे। घर-गृहस्थी वाले आदमी थे। एक वार पौषध करके धर्मध्यान कर रहे थे। देवता उन्हे अपनी प्रतिज्ञा से डिगाने आया। संसार मे बड़ी से बडी जो व्यथा हो सकती है, वही उसने कामदेव को पहुँचाई। देवता ने कामदेव को चुनौती दी कि तू अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर दे, नहीं तो तेरे सामने तेरे पुत्रो का वध कर डालूंगा। कामदेव इस चुनौती को सुन कर भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहे। देवता ने अपना देवी माया से उसके पुत्रो के वध का दृश्य दिखलाया, कामदेव फिर भी अविचल रहे! भगवान् महावीर स्वामी ने अपने मुखारविन्द से कामदेव की दृढता की प्रशंसा की।

अरणक श्रावक जहाज पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। उनकी प्रण वीरता की परीक्षा करने के लिए एक देवता आया। उसने कहा-अरणक! तुमने जो व्रत और नियम लिये हैं, उनको छोड दो। न छोडा तो मैं घोर अनर्थ कर डालूंगा। देवता की इस धमकी को सुनकर अरणक तनिक भी नही डरे। उन्होने मन मे सोचा-यह कोई अज्ञानी पुरुष है। धर्म को महिमा को नही समझता। इसी कारण मुझसे धर्म त्यागने की बात कहता है। पर मैं ग्रहण किये हुए धर्म-नियम को कैसे त्याग सकता हूं? अरणक चुप रहे। उन्होने जब कुछ भी उत्तर नही दिया तो देवता ने और अधिक विकराल रूप धारण किया। उसने अरणक का

जहाज अधर उठा लिया। कहा–बोल, अपनी प्रतिज्ञा को त्यागता है कि नहीं ? अगर त्याग देगा तो जहाज बच जायगा और तेरे प्राण भी बच जाएँगे, नहीं त्यागेगा तो जिंदगी से हाथ धोने पड़ेंगे। प्रण और प्राण में से तुझे जो अधिक प्रिय हो, उसकी रक्षा करले। प्राण बचाना हो तो प्रण छोड़ दे, प्रण बचाना हो तो प्राणों का त्याग करने को तैयार हो जा।

भाइयों ! ऐसी परिस्थिति में आपका क्या कर्त्तव्य है ? अगर आपके ऊपर ऐसे संकट आ पड़े तो आप क्या करेंगे ? आप कुछ भी करें मगर अरणक के चित्त मे पल भर के लिए भी निर्बलता नही आई। उसे प्राणों का मोह नहीं हुआ। वह अपने प्रण को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझने वाला था। वह सोचने लगा कि धर्म ही रक्षक होता है। ऐसी स्थिति में मैं अपनी रक्षा के लिए धर्म का परित्याग कैसे कर दूँ ? रक्षा के लिए धर्म का परित्याग करना तो जीवित रहने के लिए अमृत को त्याग कर विष पीने के समान है। मैं धर्म का, अपने प्रण का, हर्गिज परित्याग नहीं करूँगा।

इस प्रकार विचार कर अरणक श्रावक अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहा। अंत में देवता को हार माननी पड़ी। अरणक विजयी हुए। अरणक ने प्रण की रक्षा की तो प्रण ने उसके प्राणों की रक्षा की। देवता को क्षमायाचना करनी पड़ी। उसने अरणक को उपहार दिया और धन्यवाद दिया !

प्राचीन काल में ही ऐसे प्रणवीर पुरुष हुए हों सो बात नहीं है। आधुनिक काल मे भी ऐसे पुरुषों की कमी नहीं है।

गांधीजी के सम्बन्ध में मैंने बतलाया था कि विलायत जाते समय उन्होंने मास-मदिरा सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली थी। विलायत में वे एक बार बीमार हो गये। डाक्टरो ने उन्हें अण्डे खाने के लिए बहुत समझाया और कहा कि ऐसा किये बिना स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा, मगर उन्होने अपने प्रण को नही तोडा। आज भी अनेक पुरुष ऐसे मिल सकते हैं, जो कठिन से कठिन परिस्थिति उपस्थित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं।

सच तो यह है कि विवेकवान् और विचारशील है, जिसने जीवन की अनित्यता को भलीभांति समझ लिया है वह यही विचार करता है कि यह जीवन तो क्षणभंगुर है, लाख प्रयत्न करने पर भी सदा बना नही रह सकता। एक न एक दिन किसी भी समय यह जाने वाला है। फिर इसकी रक्षा करने के लिए धर्म का परित्याग करके क्यो अधर्म का सेवन करूँ? अधर्म का सेवन करने पर भी जब यह चला जाने को है, तो फिर आत्मा का अहित करना कौन सी बुद्धिमत्ता है? इस प्रकार विचार करने वाले पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को त्यागने के लिए कभी तैयार नहीं होते।

भविष्यदत्त को उसकी माता से बचपन में ही उत्तम संस्कार मिले थे। वह विवेकशील व्यक्ति था। अतएव तीन दिन का भूखा होने पर भी, और सामने भोजन की उत्तम सामग्री उपस्थित होने पर भी वह अपने अदत्तादान न करने के प्रण पर स्थिर रहा। जैसे तैसे वह और आगे बढा तो उसे राजमहल नजर आया। मगर वह महल भी सुनसान नजर आया। न भीतर, न बाहर ही किसी मनुष्य के दर्शन हुए।

चकित चित्त भविष्यदत्त ने यह स्थिति देखकर महल में घुसने का विचार किया और वह वेधड़क उसमे चला गया। मन मे पाप होता है तो भय लगता है। जिसके मन में पाप नहीं, उसे भय कैसा ? निर्भय भाव से भविष्यदत्त राजभवन में प्रविष्ट हुआ। वह पहली मंजिल पर पहुँचा। उसने देखा—तलवारें टंगी हैं, बन्दूकें रक्खी हैं, दूसरे-दूसरे शस्त्र भी यथास्थान व्यवस्थित रूप से जमे हुए हैं, मगर पहरेदार कोई भी नही है ! किसने यह हथियार रक्खे हैं, किस प्रयोजन से रक्खे हैं और किसकी रक्षा के लिए रक्खे हैं, यह कुछ भी उसकी समझ मे नहीं आया ! आता भी कैसे ? नगर मे इतना लम्बा घूम जाने पर भी कहीं भी आदमी की सूरत ही नजर नहीं आई थी !

भविष्यदत्त ने फिर साहस नहीं छोडा। वह दूसरी मंजिल पर पहुँचा। वहां पहुँच कर उसने देखा कि एक लड़की सिंहासन पर बैठ हुई है। उसके शरीर का सौन्दर्य अपरिमित है और आभूषणों ने उस सौन्दर्य को और भी विकसित कर दिया है। वह एक हाथ मे कांच लिये हुए है।

भविष्यदत्त को कुछ सान्त्वना मिली। आखिर एक मानव प्राणी दिखाई तो दिया ! वह उस लडकी के पास चला गया। पास जाकर थोडी देर खडा रहा, मगर लडकी ने मुँह से एक शब्द भी न कहा। वह पुतली की तरह बैठी रही। एक अपरिचित पुरुष के आने पर उसके चेहरे पर किसी न किसी प्रकार का भाव उदित होना स्वाभाविक था, कुछ न कुछ बोलना भी स्वाभाविक था, मगर ऐसा कुछ भी नही हुआ वह ऐसी बैठी रही मानों कोई नवीन बात हो ही नही रही है। भविष्यदत्त ने थोडी

देर उसके संभाषण की प्रतीक्षा की। मगर जब उसका मौन भंग न हुआ तो उसने कहा—देवी ! मैं अभ्यागत हूँ। इस नगर में मुझे कोई मिला नहीं है। सारा नगर सुन-सान पड़ा है। एक मात्र तुम्हारे ही दर्शन हुए हैं। तुम्ही मेरे लिए आधार हो। मैं तीन दिन का भूखा हूँ। तुम्हे देखकर मुझे बहुत तसल्ली मिली थी। मगर खेद है कि तुमने तनिक भी शिष्टाचार नहीं दिखलाया। मुझे सान्त्वना नही दी सो नही दी, संभाषण तक नहीं किया। यह भी नही पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ से और क्यो आये हो ? मनुष्य को देख कर मनुष्य के मन में, विशेषतया ऐसे स्थान पर, प्रमोद होना चाहिए था। किन्तु जान पड़ता है, तुम्हे मेरा आना रुचिकर नहीं हुआ। अतएव मैं वापिस लौटता हूँ। यहाँ तक आने के लिए मुझे क्षमा कर देना ! सुन्दरी ! आपका कल्याण हो। आप सकुशल रहे। मुझे कोई अधिकार नही था कि मैं आपको इतना उपालंभ देता ! फिर भी दिल को चोट पहुंची और इतने शब्द निकल गये। इन शब्दों के लिए भी मैं क्षमा चाहता हूँ। मैं अब जा रहा हूँ।

इतना कह कर भविष्यदत्त लौटने लगा। यह देख कर वह सुन्दरी कुमारी सिंहासन से नीचे उतरी। उसने कहा-आपका स्वागत है !

१५-१०-४८ }
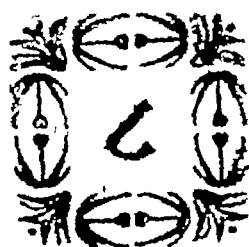
उद्धार

स्तुति :

अल्पश्रुत श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारु-चाम्रकलिकानिकरैकहेतुः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम्, ऋषभदेव, भगवान् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

इस पद्य में आचार्य महाराज ने अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए भगवान् की प्रकारान्तर से स्तुति की है। वे कहते हैं—

प्रभो ! मैं आपका गुणानुवाद करने के लिए यह स्तवन बना रहा हूं, सो इसलिए नहीं कि मैं कोई बडा विद्वान् हूं या काव्य-रचना करने का कोई कौशल मुझे प्राप्त है । मैं अल्पश्रुत हूं— बहुत थोडा-सा शास्त्रीय ज्ञान मुझे मिला है । इतना थोडा कि विद्वानो के सामने मैं उपहास का पात्र हूं । विद्वान् पुरुष मेरी रचना को देख कर मेरी हँसी उड़ाएंगे । वे कहेंगे कि अगर तुमसे काव्य बनाते नही बनता था तो क्यो बनाने चले ? परन्तु हे प्रभो ! आपके प्रति मेरे अन्तःकरण मे जो भक्ति है, वही मुझे आपके गुणानुवाद के लिए प्रेरित कर रही है । वह भक्ति इतनी प्रबल है कि अपनी अयोग्यता को समझते हुए भी मैं इस स्तवन की रचना करने में प्रवृत्त हो गया हूं । वसन्त ऋतु में, जब आम्र-वृक्ष मे मजरियां लगती हैं तो कोयल से मधुर ध्वनि किये विना रहा ही नही जाता । इसी प्रकार मेरे अन्तःकरण का भक्तिभाव मुझे जबदस्ती स्तुति करने के लिए प्रेरित करता है । प्रभो ! इसी कारण मैं स्तवन करने में प्रवृत्त हो रहा हूं ऐसे भगवान् ऋषभ-देव हैं, उन्ही को मेरा बार-बार नमस्कार है ।

आन्तरिक भक्ति एक विलक्षण चीज है । जब मनुष्य सच्ची और गहरी भक्ति मे तल्लीन हो जाता है तो उसे दुनिया का कोई खयाल नही रहता । कोई उसे बुरा कहे तो क्या और भला कहे तो क्या, उसका उस ओर ध्यान ही नही जाता । सच्चा भक्त जब भक्ति में तन्मय हो जाता है तो संसार के व्यवहारों को विसर जाता है और बहुत से लोग उसे पागल कहने लगते हैं मगर वह परवाह नही करता । मीरांबाई का उदाहरण प्रसिद्ध है । ईश्वरभक्ति में उनका मन ऐसा एकाग्र हो गया था कि समाज के

द्वारा कल्पित मर्यादाओं की उन्हें परवाह ही नहीं रह गई थी। सचाई यह है कि जिसका इश्क उससे (परमात्मा से) लग गया, उसे दुनिया से कोई मतलब नहीं रहता।

कोई विरले ही परमात्मा से सच्चा प्रेम कर सकते हैं। यह सच्चा प्रेम संसार में मामूली वस्तु नही है। यों कहना चाहिए कि अगर असार ससार मे कोई सारभूत वस्तु है तो वह ईश्वर प्रेम ही है। बहुत-से लोगो को तो विषय-वासना से ही प्रेम होता है। उन्हें ईश्वर के प्रति प्रेम उपजता नही है और कई ऐसे होते हैं जो ईश्वर से प्रेम करके उसे अन्त तक निभा नही सकते। कोई-कोई शूरमा ही ऐसा प्रेम करके उसे निभा पाते हैं ईश्वरीय प्रेम कितना दुर्लभ है और उसका निभना कितना कठिन है, यह बतलाने के लिए आलंकारिक भाषा मे बड़ा ही सुन्दर कहा गया है.—

प्रेम निभाना कठिन है, सब से निभता नाहिं।
चढ़ना मोम-तुरग पर, चलना पावक मांहि॥

ईश्वर के प्रति हृदय में उत्पन्न हुए प्रेम को निभाना अत्यन्त कठिन है। मोम के घोड़े पर चढ कर अग्नि में चलना जितना कठिन है, उतना ही ईश्वर के प्रेम का निर्वाह कर लेना भी कठिन है।

ईश्वर प्रेम मे निर्मलता तब आती है जब उसमें विषय-विकार का सम्मिश्रण न हो। भोगोपभोगो की कामना से, पुत्र पौत्र आदि की अभिलाषा से अथवा धन-सम्पदा के लोभ से ईश्वर का नाम जप लेना या ईश्वर के नाम की माला फेर लेना शुद्ध ईश्वर प्रेम

नहीं है। वह तो ईश्वर-प्रेम के नाम पर एक तरह का सौदा है। अन्तःकरण को निष्काम बना कर ईश्वर के प्रति अनन्य अनुराग धारण करना ही सच्चा ईश्वर प्रेम है। ऐसे ईश्वर प्रेम को निभाना तलवार की धार पर चलने से भी ज्यादा कठिन है।

लोग प्रेम के नाम पर बहुत भ्रम में हैं। समझते हैं कि विषय वासना ही प्रेम है। किसी भी ऐरी-गैरी को घर में डाल लेते हैं और समझ लेते हैं कि प्रेम हो गया। परन्तु कहाँ प्रेम की सात्विकता और पवित्रता और कहाँ वासना की गंदगी ! शुद्ध सहज एवं सात्विक स्नेह अगर सुधा के समान है तो विषयानुराग विष के समान है। दोनों में प्रकाश और अन्धकार के समान अन्तर है।

ईश्वर प्रेम जीवन पर्यन्त निभाना पड़ता है। मगर प्रेम की इस अटपटी पगडंडी पर कई तो एक कदम भी नहीं रखते। कई चलना शुरू करते हैं मगर बीच ही में अटक जाते हैं। दीपक में जब तक तेल रहता है, तब तक वह प्रकाश देता है और जब तेल न रहा तो प्रकाश देना बन्द कर देता है। इसी प्रकार जब तक साधु-महात्मा का योग रहता है, तब तक धर्म ध्यान-ईश्वर भक्ति करते हैं और जब वे चले जाते हैं तो ईश्वर का नाम लेना भी भूल जाते हैं। ऐसी मनोवृत्ति वाले लोगो की कमी नहीं है। यह सच्ची ईश्वर-भक्ति नही है। ईश्वर के प्रति गहरी लगन लग जाने पर वह छूटनी नही चाहिए।

इसी तरह कोई-कोई ईश्वर भक्ति के लिए साधु-साध्वी बन जाते हैं, किन्तु उनमें से कोई-कोई पास और कोई-कोई फेल हो

जाते हैं। मगर एक बार जो फेल या असफल हो गया हो, उसे पुन: सफल होने का प्रयत्न करना चाहिए। बालक पाठशाला में पढ़ने जाता है और अपने पाठ का अभ्यास करता है, किन्तु किसी कारण से परीक्षा मे असफल हो जाता है तो क्या उसे सदा के लिए पाठशाला छोड कर घर में बैठ जाना चाहिए ? नही, न ऐसा किया जाता है और न ऐसा करना ही चाहिए। एक बार असफल होने पर, आगे सफलता प्राप्त करने के लिए और अधिक उद्योग करना चाहिए।

किसी ने अपनी कन्या का विवाह किया। योग्य घर और वर देख कर और दूसरी बातो का विचार करके उसने विवाह किया है। मगर संयोगवश वह कन्या विधवा हो गई ! अब दूसरा कोई सोचता है कि विवाह करने पर लड़की विधवा हो जाती है तो मैं अपनी लडकी का विवाह न करूं तो ठीक है ! भाई, ऐसा सोचने वाले को आप क्या कहेंगे ? अगर कोई लड़की विधवा हो जाती है तो बहुत-सी सधवाएँ भी बनी रहती हैं। अगर कोई कोई विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं तो बहुत-से उत्तीर्ण भी होते हैं।

तात्पर्य यह है कि संसार में सभी प्रकार के व्यक्ति हैं। क्या व्यापारिक क्षेत्र मे, क्या विद्या के क्षेत्र मे और क्या ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में, सफलता पाने वाले भी हैं और असफल होने वाले भी हैं ! कब किसके कैसे कर्मों का उदय आ जाता है, यह हम छद्मस्थ नही जान सकते। मनुष्य अपने चित्त के रहस्य को स्वय ही नही जान पाता तो दूसरे के चित्त की वृत्तियों को किस प्रकार समझ सकता है ? वह समझे भी कैसे ? आखिर क्षण-क्षण

में पलटने वाली चित्त की दशाओं का कोई ठिकाना नहीं है। तो भी इस समय आपकी मनोभावना और तरह की है तो एक क्षण बाद ही दूसरी हो जाती है। आपको स्वयं कभी-कभी आश्चर्य होता है कि मेरी भावना क्या से क्या हो गई! जब ऐसी स्थिति है तो दूसरे की मनोवृत्ति को सर्वज्ञ के सिवाय पूरी तरह कौन समझ सकता है?

सुरादेव एवं चूलणीपिया जैसे श्रावक और जमालि जैसे भगवान् के शिष्य साधु भी फेल हो गये थे। महाराज श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार की भावना में भी मलीनता आ गई और उसने साधुपन त्याग कर घर लौट जाने का इरादा कर लिया था।

श्रेणिक महाराज की एक महारानी का नाम नन्दा था और उनके नन्दिषेण नामक राजकुमार थे। राजकुमार का विवाह हो गया था और सब प्रकार के सांसारिक सुख उन्हें प्राप्त थे। भला विपुल वैभवशाली मगध के सम्राट के पुत्र को किस वस्तु की कमी हो सकती थी? एक बार महाप्रभु महावीर स्वामी पधारे। उनका उपदेश सुन कर नन्दिषेण को वैराग्य आ गया और ऐसा वैराग्य कि कुटुम्ब वालो के रोकने पर भी नही रुके। स्वयं राजा और रानी ने अर्थात् माता-पिता ने भी बहुत रोका, मगर नही रुके। आखिर रात्रि के समय कुलदेवी प्रकट हुई उसने भविष्यवाणी की— नन्दिषेण! तुम अनुत्तीर्ण हो जाओगे। साधु बनने का हठ मत करो। तरुण वय मे ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त कठिन है" मगर नन्दिषेण ने कुलदेवो को भविष्यवाणी पर भी ध्यान नहीं दिया। उसकी बात भी अस्वीकार कर दी। कहा—जो वृक्ष सूख चुका है, जिसकी

जड उखड़ गई है वह कितना ही पानी सींचने पर भी हरा-भरा नही हो सकता। इसी प्रकार नन्दिषेण को कभी भी विषय-वासना अपनी ओर नही खींच सकती।

भगवान् महावीर स्वामी से क्या छिपा था। वे सभी कुछ जानते थे। उन्हे ज्ञात था कि नन्दिषेण दीक्षा लेगा और एक वार असफल हो जायगा, मगर काललब्धि आने पर फिर सँभल जायगा और अपना आत्म कल्याण करेगा। यह जानते हुए प्रभु ने उसे दीक्षा दे दी!

नन्दिषेण ने साधु बनकर बारह वर्ष तक घोर तप किया। तप के प्रभाव से उन्हे बड़ी-बडी लब्धियां प्रकट हो गई। एक वार वे आहार लेने गये। जिस घर मे गये उसमें एक नवयुवती वेश्या रहती थी! मुनि ने पूछा—जोगवाई है? वेश्या ने कहा—हां महाराज! जोगवाई तो है, मगर यहां वही आता है जिसके पास अर्थ हो! यहा धर्म की पूछ नही धन की कीमत है! आपके पास धन हो तो पधारिये!

नन्दिषेण क्षत्रिय थे। उनका अभिमान जाग उठा। सोचने लगे-यह मुझे मँगता—भिखारी समझती है और धन का घमण्ड दिखलाती है! उन्होने उसी समय अपनी लब्धि के प्रभाव से साढ़े बारह करोड़ अशर्फियो की वर्षा कर दी! यह अनोखी बात देखकर वेश्या चकित रह गई। उसने विचार किया-ऐसे सामर्थ्यशाली पुरुष का मिलना कठिन है! किसी उपाय से इन्हे यहीं रोक सकूं तो निहाल हो जाऊं! उसने प्रयत्न किया और उसे सफलता मिली। नन्दिषेण मुनि फेल हो गए और वेश्या पास हो गई!

आखिर नन्दिषेण उस वेश्या के घर पर ही ठहर गये। प्रतिदिन गायन सुनते हैं और मौज करते हैं। साधु के आचार-विचार को एक किनारे रखकर वे पूरे गृहस्थ बन गये। मगर वेश्या ने अपना धन्धा नही छोड़ा था। उस समय भी अनेक पुरुष गाना सुनने के लिए उसके यहां आया करते थे। यह देखकर नन्दिषेण ने विचार किया—मेरा तो दिवाला निकल गया परन्तु जो यहां आते हैं, उन्हें समझा-बुझा कर क्यो न भगवान् के पास भेजा करूँ? इस प्रकार सोचकर वे प्रतिदिन दस-दस पुरुषों को प्रतिबोध देकर भगवान् महावीर स्वामी के पास भेजने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा ले ली कि जिस दिन नही भेजूंगा उस दिन भोजन नही करूँगा। यो करते-करते बारह वर्ष व्यतीत हो गए।

भाइयों! कर्मों की गति पर विचार करो। बारह वर्ष पर्यन्त घोर तपश्चरण करने वाले नन्दिषेण मुनि संयम से गिर गये हैं। फिर भी उनके चित्त में संयम की श्रेष्ठता की भावना बनी हुई है। वे दूसरो को प्रतिबोध देकर सयमी बनाने का उद्योग करते हैं। यह सब कर्मों की गति है। कर्मों की गति वास्तव में बड़ी ही विचित्र है।

कार्मण वर्गणा के परमाणु जब आत्मा के साथ बन्धते हैं तो उन्हे कर्म-संज्ञा प्राप्त होती है। आत्मा के साथ कर्मों का बन्ध होते समय चार बातें होती हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश। प्रकृति कर्मो के स्वभाव को कहते हैं। आत्मा के साथ उस कर्म के बन्धे रहने की काल मर्यादा को स्थिति कहते हैं। न्यून या अधिक फल देने की शक्ति अनुभाग बन्ध कहलाती है और बन्धने

वाले कर्मपरमाणुओं का आत्म प्रदेश के साथ संमिश्रण हो जाना प्रदेश बन्ध कहलाता है।

कर्म बांधने वाले जीव का कषायभाव अगर बहुत तीव्र होता है तो बँधने वाले कर्म की स्थिति खूब लम्बी होती है और उस कर्म में फल देने की शक्ति भी तीव्र होती है। इसके विपरीत अगर मन्द कषाय के साथ कर्म बाधे जाएं तो कर्मों की स्थिति भी थोडी होती है और वे फल भी हल्का देते हैं। प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं। इसका मतलब यह है कि योग मे चचलता यदि अधिक होती है तो प्रकृति और प्रदेश बन्ध तीव्र होते हैं, अर्थात् अशुभ स्वभाव वाले और संख्या मे अधिक परमाणु बँधते हैं। और यदि योग मे चंचलता कम होती है तो यह दोनों बध भी उग्र नही होते।

जिस जीव ने जो कर्म बांधे हैं, उनकी स्थिति जब पक जाती है तो वे फल देकर अलग हो जाते हैं। नन्दिषेण के कर्मों की स्थिति पक गई थी। उन्होने अपने बाधे कर्मों को भोगा। जब कर्म भोगे जा चुके तो एक नवीन घटना घटित हुई।

एक दिन नन्दिषेण ने नौ आदमियो को प्रतिबोध देकर भगवान् के पास भेज दिया। दसवाँ आदमी एक सुनार था। नन्दिषेण ने उसे बहुत समझाया, परन्तु वह समझा नही। समझाते-समझाते दोपहर हो गया, फिर भी नन्दिषेण को सफलता नही मिली। ससार मे भांति-भांति के मनुष्य हैं। कोई निकट-भव्य और भद्रपरिणाम वाले ऐसे मनुष्य होते है जो जल्दी ही समझ जाते है और कोई-कोई बहुत समझाने पर भी नही समझते

हैं। ऐसे लोग चार मास तक उपदेश होने पर भी पास नही फटकते। जो ब्रांडी के नशे में घुत्त हो जाता है, वह किसी की नहीं सुनता। इसी प्रकार जिसकी आत्मा पर पापों का गहरा नशा छा जाता है वह ज्ञानी से ज्ञानी और परोपकारी पुरुष की भी बात नहीं सुनता। कदाचित् सुनता है तो एक कान मे सुनकर दूसरे कान से बाहर निकाल देता है। वास्तव मे जैसे कर्म का उदय होता है, वैसी ही समझ हो जाती है।

हां, तो नन्दिषेण ने उस सुनार को खूब समझाया, मगर वह नही समझा। उधर समय काफी हो गया था और भोजन ठंडा हो रहा था। तब वेश्या ने झुंझला कर नन्दिषेण से कहा—सारा भोजन ठंडा हो गया है। अब कब भोजन करोगे ?

नन्दिषेण — इसे समझाऊंगा। नहीं समझेगा तो किसी दूसरे को समझाऊंगा। मगर दसवें आदमी को समझाये विना भोजन नहीं करूंगा।

वेश्या—सुबह से समझा रहे हो। नही समझता तो क्यो माथापच्ची करते हो ? जाने भी दो। भोजन कर लो।

नन्दिषेण—नहीं, पूरे दस को समझाए विना भोजन करने से प्रतिज्ञा भग हो जायगी। मैं यह सहन नहीं कर सकता।

वेश्या—वह नही समझता तो आप स्वयं क्यो नहीं समझ जाते ?

अरे, जो स्वयं नही समझता वह दूसरों को क्या समझावेगा ? समझाने का प्रयत्न करेगा भी तो कौन उसकी सुनेगा ? कहा है—

जो ख़ुद ही नहीं समझे वह औरों को क्या समझावेगा ।
जो ख़ुद ही सोता पड़ा हुवा सोए को क्या जगावेगा ? ॥

जो स्वय गाढे बन्धनों मे जकड़ा हुआ है, वह दूसरों के बन्धन किस प्रकार काट सकता है ? जो खुद नींद में खुर्राटे भर रहा है, उससे कैसे आशा की जाय कि वह दूसरो को जगा देगा ? जिसने स्वयं समझ प्राप्त करली है, जिसकी आत्मा में जागृति आ गई है, वही सफलतापूर्वक दूसरो को समझा सकता है। यद्यपि क्वचित् कदाचित् इसमे अपवाद हो सकते हैं, फिर भी आम तौर पर तो ऐसा ही होता है। कहा है—

जो हर सूरत से लायक नही, वह गैरो पै क्या एहसान करे,
जो जहाज खुद ही फूटा वह, पार क्या इन्सान करे ।
जो खुद ही दरिद्री है वह, गैरो को क्या धनवान् करे,
जिसकी बात माने नही कोई, वह क्यो विरथा मान करे ॥

जो आदमी किसी लायक नहीं है वह दूसरों पर क्या ऐहसान कर सकता है ? कोई भैरोजी से कहे कि—भैरो बाबा ! मुझे धनवान् बनादो ! तो भैरोजी क्या उत्तर देंगे ? वे कहेंगे कि—अरे ! मेरे लिए छत्र तो लाया होता भले मानुष ! छत्र लाना तो दूर रहा, धिटक भी नहीं चढाता ! इस प्रकार जब वह खुद मागते हैं तो दूसरों को क्या खाक धनवान् बनाएंगे ? अतएव याद रखना चाहिए कि जो पुरुष लायक नहीं है, वह दूसरो का भला नहीं कर सकता ।

दूसरे की भलाई करना दुनिया में ऐहसान की बात समझी जाती है। कई छोटे दिल के होते हैं जो किसी का छोटा-सा कोई उपकार करके बड़ा ऐहसान बतलाते हैं और बार-बार उसकी दुहाई देते हैं। परन्तु विवेकशील पुरुषों को समझना चाहिए कि परोपकार करके ऐहसान जतलाना बड़प्पन की बात नहीं है। जगत् की व्यवस्था को देखेंगे तो मालूम होगा कि परस्पर एक दूसरे के सहयोग, सहायता और उपकार के बिना मनुष्य का क्षण भर भी काम नही चल सकता। एक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए सैकड़ो वस्तुओ की आवश्यकता होती है। उन वस्तुओ के निर्माण मे हजारो और लाखो आदमियो का सहयोग अपेक्षित होता है। आपको भोजन चाहिए, वस्त्र चाहिए, मकान चाहिए, और भी बहुत-सी चीजें चाहिए। अब आप विचार कीजिए कि इन सब वस्तुओ को तैयार करने मे कितने आदमियों ने काम किया है? कितने मनुष्यो के घोर परिश्रम के फलस्वरूप यह सब वस्तुएं तैयार होकर आपके पास पहुँची हैं? सिर्फ भोजन की ही चीजो को ले लीजिए। आपके भोजन की सब चीजें तैयार करने में किन-किन मनुष्यो की सहायता अपेक्षित हुई है? किसान, मजदूर, व्यापारी, आटा पीसने वालो, बनाने वाली, नमक, मिर्च, धनिया, जीरा, हल्दी, शाक-भाजी आदि पैदा करने वाले, बेचने वाले आदि-आदि अनेक व्यक्तियो ने, इनके लिए आवश्यक औजार तैयार करने वाले व्यक्तियो ने तथा रेलवे के कर्मचारियों ने सहयोग दिया है। इस प्रकार सिर्फ आपके भोजन की चीजों के लिए हजारो-लाखों आदमियो को श्रम करना पड़ा है। इसी प्रकार वस्त्र के लिए कपास बोने वाले किसान से लेकर कपास लोढ़ने वाले, रूई पीजने वाले, सूत बनाने वाले, बुनने वाले,

कपडा वेचने वाले और कपड़ा बनने तक के तमाम औजारो को बनाने वाले और फिर उन औजारो के लिए भी दूसरे औजार बनाने वाले आदि-आदि लाखो आदमियो के सहयोग की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर आपकी समझ मे आ जायगा कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन निर्वाह किस प्रकार हो रहा है और उसके लिए कितने मनुष्यो और दूसरे जीवो की सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में अगर आप दूसरो का थोडा-बहुत उपकार करते हैं तो ऐहसान की बात ही क्या है ? यह तो दूसरो के चढे हुए ऋण को चुकाना ही है।

महान् पुरुष दूसरे के प्रति जो उपकार करते हैं, वे ऐहसान जतलाने के लिए नहीं, वरन् अपने मनुष्योचित कर्त्तव्य का पालन करने के लिए ही करते है। वे परोपकार को स्वोपकार समझते हैं, क्योंकि पर कल्याण से आत्म कल्याण होता है। अतएव अगर आप लायक बनना चाहते है तो परोपकार कीजिए और ऐसा करते हुए किसी पर ऐहसान न जतलाइए।

परोपकार करने के अनेक तरीके हैं। परन्तु सर्वश्रेष्ठ तरीका यह है कि आप दूसरे को धर्म के मार्ग में लगा दीजिए। धर्म-मार्ग में लगा देने से उसका परम कल्याण होगा और इससे आपको भी बडा लाभ होगा। नन्दिषेण के व्यवहार पर विचार कीजिए। वह सयम से विचलित हो गया और गृहस्थ बन गया, फिर भी उसमें इतना विवेक रहा हुआ था कि दूसरो को प्रतिबोध देकर भगवान् की सेवा मे भेजता था और उनके आत्म कल्याण मे सहायक बनता था। आज के जमाने मे नन्दिषेण के समान कोई व्यक्ति हो तो आप उससे घृणा करेंगे, उसे धुत्कारेंगे और

उसके साथ बात करना भी पसन्द नहीं करेंगे। मगर पहले ऐसी बात नहीं थी। प्राचीन काल में गिरने वाले को धक्का देकर और अधिक गिराया नही जाता था, बल्कि संभालने का स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता था। भगवान् ने सम्यक्त्व के आठ अंगों में स्थितिकरण नामक एक अंग बतलाया है। उसका अभिप्राय यही है कि अगर कोई सम्यग्दर्शन सम्यक् चारित्र से गिर रहा हो तो यथायोग्य सहायता देकर उसे स्थिर किया जाय। कहा भी है:—

दर्शनाच्चरणाद्वाऽपि, चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्येवस्थापन प्राज्ञै, स्थितीकरणमुच्यते ॥

जिसे धर्म प्यारा लगता है और जो बुद्धिमान् है वह दर्शन अथवा चारित्र से गिरते हुए को फिर दर्शन या चारित्र में स्थिर कर देता है। यह समकित का एक अंग है।

इस चीज को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। एक गर्भवती बाई चन्दनबालाजी से दीक्षा लेकर आर्या बन गई। चन्दनबालाजी को दीक्षा देते समय पता नहीं था कि यह गर्भवती है। मगर गर्भ के चिह्न थोड़े समय बाद प्रकट होने लगे और उन्हे भी इसका पता चला। तब गुरुणीजी ने कहा—पद्मा, तूने यह क्या किया ? पद्मावती ने विनम्रभाव से उत्तर दिया—महाराज ! मैं अत्यन्त दुखिनी थी। अपने शील की रक्षा के लिए ही मैं गर्भवती होने पर भी आर्या बन गई हूं ! मुझ से गलती अवश्य हुई है, पर मेरी भावना बुरी नहीं थी।

गुरुणीजी विवेकशीला थी । उन्होंने सोचा—यह बात सर्वसाधारण मे प्रकट होगी तो धर्म की बड़ी निन्दा होगी और सब आर्याओ पर कलक चढ़ेगा। अतएव कोई उचित व्यवस्था करना चाहिए। यह सोचकर वे एक गांव में गई। वहाँ के संघ के गम्भीर हृदय वाले, धर्मनिष्ठ कुछ भाइयों और बहिनों के समक्ष सारी स्थिति रक्खी। कहा—मुझे गर्भ की बात ज्ञात नहीं थी और इस कारण मैंने उसे दीक्षा दे दी है। अब आप लोग इस स्थिति को सम्भाल कर धर्म की निन्दा को रोके।

उन श्रावको और श्राविकाओं ने यह नहीं कहा कि—आपको तो बस चेलियाँ बढाने की धुन लगी हुई है! ऐरी-गैरी कैसी भी आवे, आपको मूंड लेने से ही मतलब है! आपको चेलियाँ बनाने का लोभ लगा हुआ है!

उन भाइयो और बाइयों ने कहा—महाराज! आपका इसमें क्या दोष है? यह तो होनहार ही ऐसी थी। छद्मस्थ सब की सब गुप्त बातें कैसे जान सकते हैं!

इस प्रकार कह कर उन्होंने गर्भवती आर्या की अलग व्यवस्था कर दी। उसके रहने के लिए मकान का प्रबन्ध कर दिया, भोजन-पानी आदि समुचित व्यवस्था भी कर दी। आखिर गर्भ के समय का परिपाक हुआ और एक बालक ने जन्म लिया। तब उस आर्या ने विचार किया—इस बालक का पालन-पोषण करने में बहुत समय लग जायगा। न जाने कब मुझे फिर से संघ में सम्मिलित होने का अवसर मिलेगा! अच्छा यह होगा कि मैं इसे किसी भांति दूसरे को सौंप दूं।

इस प्रकार विचार करके पिछली रात्रि में ही वह श्मशान भूमि की ओर चल दी। वहां सुरक्षित रूप से बालक को रख दिया और वापिस लौट आई। सुबह होने पर कह दिया कि बालक का जन्म हुआ तो था, मगर वह तो यों ही हो गया !

लगभग १५ दिन बाद वह फिर गुरुणीजी की सेवा में पहुँची और नई दीक्षा लेकर फिर साध्वी बन गई।

उधर सवेरा होते ही श्मशानपाल श्मशान में पहुँचा। बच्चा रो रहा था। रोने की आवाज सुनकर वह उस ओर गया। बालक को देखकर उसे आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी हुई। बालक बहुत सुन्दर था और श्मशानपाल के कोई लड़का नहीं था। उसने बालक को गोद में ले लिया और घर ले जाकर अपनी पत्नी को सौंप दिया। प्रेम के साथ उसका पालन-पोषण किया। समय जाते क्या देर लगती है ? दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीतते गये और बालक बारह वर्ष का हो गया। श्मशान-पाल के यहां वह आनन्द में रहता और खेलता-कूदता था।

प्राचीन समय में आजकल की तरह छुआछूत की भावना नही थी। जन्म से ही किसी को पवित्र और किसी को अपवित्र समझना नीति नही है और धर्म तो हो ही नही सकता। अमुक कुल मे जन्म ले लेने के कारण कोई आदमी पवित्र और ऊँचा हो गया, चाहे उसका आचरण कितना ही पापमय हो, और अमुक कुल मे जन्म ले लेने के कारण कोई पुरुष अपवित्र और अछूत हो गया, चाहे उसका चारित्र कितना ही पवित्र हो, इस प्रकार की मान्यता गलत मान्यता है। इससे पवित्र आचरण की

महत्ता को ठेस पहुंचाती है। जैन शासन में अनेक व्यक्ति ऐसे हुए हैं जो नीचे समझे जाने वाले कुल में उत्पन्न हुए थे, मगर उन्होंने पवित्र आचरण करके पूज्यता प्राप्त की। कहने का तात्पर्य यह है कि असली चीज मनुष्य का चारित्र या व्यवहार है। उच्च चारित्र वाला मनुष्य ऊँचा समझा जाना चाहिए और नीच आचार वाला नीचा समझा जाना चाहिए। इसी प्रकार जब नीच आचार वाला उच्च आचार को अपना ले तो उसे उच्च ही मानना चाहिए। मैं एक बार दक्षिण में गया तो वहां के ब्राह्मण कहने लगे—क्या भंगियों को मन्दिर मे घुसा लेवे? मैंने उत्तर दिया—हम पुरुषों के विरोधी नहीं है किन्तु बुरे कामों के विरोधी हैं। आप उनसे कहो—शुद्ध हो जाओ। शुद्ध हो जाने का अर्थ है—अशुद्ध आचरण का त्याग कर देना। मांस न खाना, मदिरा न पीना आदि। अगर भंगी अशुद्ध आचरण का त्याग कर देता है तो फिर वह कहीं भी आवे और कहीं भी जावे, उस पर प्रतिबन्ध लगाने की क्या बात है?

हां, तो प्रस्तुत बात पर आ जाएं। चाण्डाल का वह लड़का श्मशान की रखवाली करता था। एक दिन एक पण्डितजी शौच जाने के लिए उधर से निकले। उसी समय दो महात्मा-एक गुरु और एक चेला—भी उधर होकर आ रहे थे।

गुरु ने चेले से एक झाड़ी-सी देखकर कहा—जो इस लकड़ी को अपने हाथ में रक्खे, वह सात दिन में राजा हो जाय। गुरु की यह बात उस पण्डित ने भी सुनली और चाण्डाल के लड़के ने भी सुन ली। पण्डित लपककर गया और उसने वह लकड़ी तोड़ ली। उसी समय वह लड़का भी वहीं जा पहुंचा और उसने

उसे पकड लिया। पण्डितजी ने कहा - लकडी मेरी है क्योंकि पहले मैंने तोडी है। लड़का कहने लगा—नहीं, इस पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। यह जमीन हमारे कब्जे में है, अतएव इस पर लगी हुई सब चीजों पर मेरा अधिकार है। दोनो में इस प्रकार कहा सुनी हो रही थी कि लड़के का पिता भी वहां आ पहुंचा। उसने लड़के को लकड़ी के लिए पण्डितजी से झगडते देख कर कहा--बेटा, जाने भी दे। पण्डितजी को ही दक्षिणा में दे दें।

चाण्डाल को क्या पता था कि उस लकड़ी में क्या करामात है ? सच है जो जिसके महत्त्व को नहीं जानता, वह उसका आदर नहीं करता। मगर लड़का उस लकड़ी के महत्त्व को समझ चुका था। वह कब छोड़ने वाला था ? उसने कहा—मैं इस लकड़ी को लेकर राजा बनूंगा !

पिता ने कहा—अच्छा, तू राजा बने तो पण्डितजी को भी एक गांव दे देना। लड़के ने यह बात स्वीकार की और लकड़ी ले ली।

इसके बाद लडका घर नहीं गया, बल्कि परदेश में चला गया। चलते--चलते वह एक गांव में पहुंचा। उस गांव का राजा मर गया था। वहां का ऐसा नियम था कि राजा के मर जाने पर एक हथिनी को सजा कर उसकी सूंड में माला दे दी जाती थी। हथिनी जिसके गले में माला डाल दे उसी को राजा बना दिया जाता था। लड़का उस गांव के तालाब के किनारे बैठा विश्राम कर रहा था। हथिनी माला लेकर आई और उसने उसी लड़के के गले में डाल दी। अपनी सूंड से उसे अपनी पीठ पर

बिठला लिया। हथिनी के निर्णय को सबने स्वीकार किया। लड़के को नियमानुसार राजगद्दी दे दी गई। उस लड़के का नाम था करकडू। 'करकंडू' का मतलब है, जिसके हाथ में खाज-खुजली हो। पहले उसके हाथों में खुजली थी अतएव उसे यह नाम दिया गया था। करकण्डू अब राजा बन गया। उसके नेत्र बड़े-बड़े, ललाट चौड़ा और शरीर सुन्दर था ही राजा बनने पर उसका रूप और भी निखर गया। वह राज्य करने लगा।

घूमता-घूमता वह ब्राह्मण भी एक दिन वहां आ पहुंचा। उसने राजा को और राजा ने उसको पहचान लिया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर एक गांव की याचना की। ब्राह्मण ने वही गांव पसन्द किया जहां इस लड़के का असली पिता राज्य करता था।

आप जानना चाहेंगे कि वास्तव में करकण्डू का पिता कौन था? और उसकी माता पद्मावती कौन थी? अतः संक्षेप में कहता हूं। वास्तव में करकण्डू एक राजा का ही पुत्र था और पद्मावती उस राजा की पत्नी थी। करकण्डू जब पद्मावती रानी के गर्भ में आया तो रानी को जंगल में सैर करने का दोहद हुआ। राजा ने एक हाथी तैयार करवा कर अपनी सेना के साथ सैर करने का निश्चय किया। राजा और रानी दोनों हाथी पर सवार होकर चल दिये। जंगल में पहुंचने पर हाथी को मस्ती चढ़ी और वह भाग निकला। सब साथियों से बिछुड़ कर राजा और रानी जंगल में हाथी पर बैठे जा रहे थे। हाथी लगातार चला जा रहा था। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह नहीं रुक रहा था। रास्ते में एक बड़ का पेड़ मिला। राजा ने रानी से कहा— हाथी जब बड़ के नीचे से निकले तो सावधानी के साथ बड़ की

एक शाखा पकड़ कर लटक जाना। ऐसा करने से हाथी चला जायगा और हम दोनो की प्राण रक्षा हो जायगी। नही तो यह न जाने कहां तक ले जायगा और क्या होगा !

आखिर हाथी बड़ के नीचे होकर निकला। राजा ने लपक कर बड़ की एक शाखा पकड ली, परन्तु गर्भवती होने के कारण और स्त्री सुलभ ढिलाई के कारण रानी शाखा नही पकड सकी। राजा लटकता रह गया और रानी हाथी पर सवार आगे चली गई। इस तरह पहले तो वे अपने साथियों से ही बिछुड़े थे, अब दोनो अलग-अलग हो गये।

आगे जाकर एक जलाशय मिला। हाथी उसमे जाकर पानी पीने लगा। उस समय हिम्मत करके रानी किसी प्रकार नीचे उतरी। मगर सुनसान जंगल में अकेली रानी बहुत चिंतित हुई। उसे जीवित बचने की आशा नही थी। फिर भी रानी ने अपने आपको सम्भाला।

हिवे रानी पद्मावती, जीवराशि खमावे।
जानपनो जग दोहिलो, दोरी विरिया में आवे ।।
ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं ।। ध्रुव ।।

रानी पद्मावती ने उसी जंगल में आलोयना की और भगवान् का नाम लेती हुई एक ओर चल दी। चलती-चलती वह एक गांव मे आई और चन्दनबालाजी के पास दीक्षा ले ली। अपने शील धर्म की रक्षा के लिए उसे उस समय यही आवश्यक जान पड़ा।

इस प्रकार करकण्डू का पिता वास्तव में राजा था। इसी राजा के राज्य का एक गांव ब्राह्मण ने दीक्षा में मांगा था। ब्राह्मण की मांग सुनकर राजा करकण्डू ने उसे एक पत्र लिख दिया। उस पत्र मे उस राजा को आदेश दिया गया कि अमुक गांव इस ब्राह्मण को दे देना।

ब्राह्मण पत्र लेकर उस राजा के पास पहुँचा। पत्र को देखते ही उसके क्रोध का पारा ऊंचा चढ गया। उसने कहा—एक ऐरा-गैरा छोकरा राजा बन बैठा है और मुझ पर हुक्म चलाता है! जाओ, उससे कह दो कि मैं गांव नही दे सकता अगर लेना हो तो मैदान मे आकर लो।

ब्राह्मण लौट कर राजा करकण्डू के पास पहुँचा। करकन्डू ने अपनी सेना सजाई और युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। दोनो ओर की सेनाए आमने-सामने डट गई। आर्या पद्मावती को यह बात मालूम हुई। उन्होंने सोचा—व्यर्थ ही हजारो आदमियो का घमासान हो जायगा। खून की नदियाँ बहेगी। न मालूम कितनी सुहागिनो के माथे का सिंदूर पुछ जायगा! न जाने कितनी माताए पुत्रहीन हो जाएंगी और बालक अनाथ हो जाएंगे। जरा-सी देर मे प्रलय मच जायगा!

भाइयों! युद्ध अत्यन्त भयंकर चीज है। पहले के जमाने में, जब सीमित लोग ही युद्ध में लडते थे और सामान्य प्रजा नहीं मारी जाती थी, तब भी युद्ध के फलस्वरूप दुनिया बर्बाद हो जाती थी। फिर आजकल का तो पूछना ही क्या है! विज्ञान की बदौलत अपरिमित साधन अब तैयार हो गए हैं। भयंकर से

भयकर गैसें और बम तैयार हो गये हैं। एक छोटा-सा बम फेंका और क्या सैनिक और क्या असैनिक—लाखों का संहार हो गया! कभी-कभी मैं सोचता हूं कि आखिर मनुष्य क्यो युद्ध करना चाहता है। क्यो वह अपने सजातीय दूसरे मनुष्यों के प्राणों का ग्राहक बना हुआ है? एक देश दूसरे देश को तबाह करने क्यो तैयार होता है? इसके बदले प्रत्येक राष्ट्र अगर दूसरे राष्ट्र का सहायक और पोषक बन जाय तो क्या यही पृथ्वी नरक के समान बनने के बदले स्वर्ग के समान नहीं बन जायगा? मगर कुछ लोगों की महत्त्वाकांक्षा और स्वार्थलिप्सा ऐसा नहीं होने देती। हिटलर की महत्त्वाकांक्षा ने जगत को तहस नहस कर डाला। उसका परिणाम क्या हुआ? स्वय मरा, उसका देश बर्बाद हुआ और दूसरे तमाम देशों की तबाही हुई। उसने दूसरे देशो को जीतने मे जो शक्ति व्यय की, उससे आधी शक्ति भी अगर विश्व की सेवा-सहायता या अपने ही देश की उन्नति में व्यय की होती तो उतना उपकार होता! मगर सभ्य कहलाने वाले, परन्तु जिनकी रग रग मे असभ्यता और पशुता भरी हुई है ऐसे लोग इस तथ्य की ओर कहां ध्यान देते हैं! एक युद्ध पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाता कि वे दूसरे युद्ध की तैयारियों मे जुट पड़ते हैं। मगर सच्चा शान्ति का यह मार्ग नहो है। इससे अशान्ति और अव्यवस्था ही फैल सकती है।

उक्त प्रकार विचार कर पद्मावती सती ने अपनी गुरुणी जी से निवेदन किया-यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं दोनों राजाओ को प्रतिबोध देकर घोर हिंसा को टालने का प्रयत्न करूं, गुरुणीजी न मानव दया के महत्त्वपूर्ण कार्य मे सहमति प्रकट की और पद्मावती सती युद्धभूमि की ओर चल पड़ी।

पद्मावती दोनों राजाओं के पास पहुँची। दोनों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु उन पर युद्ध का रंग चढ़ा हुआ था। करकण्डू ने त्योरी चढ़ा कर कहा-सतीजी! आप कृपा कर लौट जाइए। युद्धभूमि में आपकी उपस्थिति शोभा नहीं देती। आप उपाश्रय में विराजिये। धर्मनीति श्रेष्ठ है, मगर हमें तो अभी राजनीति से ही काम लेना पड़ेगा।

सती फिर दूसरे राजा के पास पहुंची। उन्हें समझाकर कहा - आखिर आप किससे लड़ने को तैयार हुए हैं?

राजा—मैं उस ऐरे-गैरे बेईमान छोकरे को युद्ध का मजा चखाऊँगा।

सती—वह ऐरा-गैरा नहीं है। वह कुलीन बालक है। आप मुझे जानते हैं? मैं वही पद्मावती हूं जो आपसे जगल में बिछुड़ गई थी। मैं अपने शीलधर्म की रक्षा के लिए साध्वी बन गई हूं।

राजा ने विस्मित होकर कहा-आपका रूप-रंग इतना बदल गया है कि मैं पहचान ही न सका। मगर यह तो कहिए कि मेरी धरोहर कहां है?

सती वही ऐरा गैरा छोकरा तो आपका पुत्र है, जिससे आप लड़ना चाहते हैं।

सतीजी फिर करकण्डू के पास गई। अब की बार उन्होंने उसके सामने भी सारा रहस्य प्रकट कर दिया। दोनो के चित्त अपूर्व आह्लाद से परिपूर्ण हो गये। करकण्डू उसी समय रवाना होकर आया और अपने पिता के पैरो मे गिर पड़ा। पिता ने

अत्यन्त स्नेहपूर्वक, गद्गद होकर अपने पुत्र को छाती से लगाया। अन्त में करकण्डू को दोनो देशो का राजा बनाकर आप तपस्या करने के लिए चल दिया।

कहो भाइयो ! यह कितनी बड़ी बात है ! पहले के श्रावकों और पहले की श्राविकाओं का हृदय कितना गम्भीर था कि उन्होंने साध्वी के गर्भ की भी प्रतिपालना की और धर्म की निन्दा नहीं होने दी। पद्मावती सती महती भाग्यवती हुई है। कभी-कभी ऐसे प्रसग उपस्थित हो जाते हैं कि बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से काम लेना पडता है। मेरे कहने का कोई यह आशय न समझे कि मैं साधु--साध्वी के किसी हीनाचार का पोषण करने की हिमायत कर रहा हू। नही मेरा आशय यह नही है। मैं यह कहना चाहता हूं कि आपका हृदय गंभीर होना चाहिए और जहा तक सम्भव हो, दूसरे को सहायता देकर धर्म मे स्थिर करना चाहिए। संघ और धर्म की प्रतिष्ठा को गिराने से बचा कर उसे बढाने का प्रयत्न करना चाहिए। यही परोपकार का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

देखो, नन्दिषेण वेश्या के घर रहते हुए भी दूसरो को धर्म-मार्ग का पथिक बनाने मे कितने सलग्न हैं। उन्होने उस सुनार को समझाने का बहुत उद्योग किया। जब वह न समझा और वेश्या न उन्हें ताना मारा तो उनकी सोती हुई आत्मा एक-दम जाग उठी। वेश्या के वचन उन्हे लग गये। उन्होने उसी समय कहा—कहाँ है मेरा ओघा और पात्र ! लाओ, आज दसवाँ व्यक्ति मैं स्वय होऊगा ! इतना कह कर और साधु का वेष धारण करके वे फिर भगवान् की सेवा में जा पहुँचे। नवीन दीक्षा लेकर फिर आत्मकल्याण मे लग गये।

भाइयों! मैं कह रहा था कि जो लायक होता है, वही दूसरो पर ऐहसान कर सकता है। जो जहाज खुद टूटा-फूटा हो, वह कैसे तो पार पहुँचेगा और कैसे दूसरों को पार लगाएगा ? जो स्वय बन्धनो से जकडा हुआ हो वह औरों को बन्धन से कैसे मुक्त कर सकता है ?

भागवत में एक दृष्टान्त आया है। एक राजा किसी पण्डित से कथा सुनता था। कथा मे एक जगह जिक्र आया कि शुकदेवजी ने कथा सुना कर राजा परीक्षित का उद्धार कर दिया। यह बात सुनकर कथा सुनने वाले राजा ने कहा— पण्डितजी! कथा सुनते-सुनते मुझे इतना समय हो गया किन्तु मेरा उद्धार अब तक नही हुआ पण्डित ने सोच-विचार कर उत्तर दिया—राजन्! मैं नही कह सकता कि यह भागवत वही है या दूसरी है।

राजा ने कहा—मैं आपको छह माह की मोहलत देता हूं। इस अवधि में वही भागवत लाकर मुझे सुनाओ, जिससे मेरा भी सात दिन में उद्धार हो जाय।

पण्डितजी के देवता कूच कर गये। वह बड़े असमंजस मे पड गये कि कह तो दिया, मगर ऐसी भागवत कहाँ से लाऊँ ? आखिर पण्डितजी वहा से चले। घूमते-फिरते एक जगल में पहुँचे। वहां एक गुफा में महात्माजी बैठे थे। उन्हे देख कर महात्माजी को प्रणाम किया और कहा—महात्मन्! राजा मेरे प्राण लेते हैं, अत. कृपा कर यह बतलाइए कि यह भागवत सच्ची है या नही ? अगर आपके पास सच्ची भागवत हो तो दीजिए।

महात्मा बोले—यहां से बारह कोस की दूरी पर पहाड की एक गुफा मे मेरे गुरुजी रहते हैं। वे कठोर तपस्या करते हैं। तुम उनके पास जाओ। पण्डितजी खोज करते-करते उन गुरुजी के पास पहुँचे। जाकर उनके चरणो मे गिरा और रोते लगा सारा हाल कह सुनाया। गुरुजी ने कहा—रोओ मत, उस राजा को मेरे पास ले आओ। मगर उससे कह देना कि बिना हथियार लिये अकेला ही आवे। तुम उसके साथ आ सकते हो।

पण्डितजी के प्राण में प्राण आये। वे लौट कर राजा के पास पहुँचे। समाचार सुनकर राजा तत्काल तैयार हो गया और अपनी फौज के साथ रवाना हो गया। जब गुरुजी का स्थान एक मील रह गया तो पण्डितजी ने कहा - फौज यहीं छोड़ दीजिए और हथियार भी यहीं रख दीजिए और अकेले ही चलिये।

दोनो पैदल महात्मा की गुफा मे पहुँचे। नमस्कार करके, हाथ जोड़ कर सामने बैठे। महात्मा ने ज्यो ही 'हु' कहा कि उसी समय गुफा में से चार चेले आये और दो दो ने एक-एक को पकड़ कर, मुश्कें बाध कर गुफा के एक अंधेरे कोने मे पटक दिया। दोनो ने समझा—भारी धोखे में पड गये हैं! पडे-पडे दो-तीन घन्टे का समय हो गया, मगर किसी ने कोई पूछताछ नहीं की। राजा को प्यास लग आई थी। उसने कहा—प्यास के मारे मेरा गला सूख गया है, प्राण निकलना चाहते हैं। पानी तो पिला दीजिए।

महात्मा—राजा! अपने पण्डित से कह, वह तुझे बन्धन से छुडा देगा।

पण्डित—महात्मन् ! मैं स्वयं बन्धन में जकड़ा हूं। मैं महाराज को किस प्रकार छुडा सकता हूं ?

महात्मा—अरे तू स्वयं बन्धन मे है, इसलिए नहीं छुडा सकता है ? भले मानुस ! इतने दिन भागवत सुनाते-सुनाते हो गए, किन्तु तेरा भी उद्धार नहीं हुआ ! परीक्षित का सात दिन मे ही उद्धार हो गया ! फिर तू सात दिन में राजा का उद्धार कैसे करना चाहता है ? जो मदिरापान करते हैं, गांजा पीते हैं और विषयभोग में डूबे रहते हैं, उन्हे भी तू अच्छा बतलाता है, क्योकि तुझे पैसो से मतलब है। इसी कारण तूने भागवत को भी झूठा कहने में संकोच नही किया ! वास्तव मे भागवत तो यही सच्ची है, परन्तु जब तू स्वयं बन्धन में पडा है तो दूसरों के बन्धन काट कर उनका उद्धार किस प्रकार कर सकेगा ? मगर तू अपना दोष नही देखता और भागवत पर शका करता है ? शास्त्र का दोष बतलाता है !

महात्मा फिर बोले—और यह राजा है जो दिन-रात विषयवासना के कीचड मे फंसा रहता है ! भक्ष्य-अभक्ष्य का भान नही हैं, अपनी आत्मा की ओर ध्यान नहीं है, परमात्मा का गुणगान नहीं है, हित-अहित का ज्ञान नहीं है, नीति-अनीति का विवेक नही है और चला है राजा परीक्षित की बराबरी करने को ! इसे इतना भी ज्ञान नही है कि पण्डित में उद्धार करने की शक्ति होती तो वह भागवत सुनाने के लिए राजमहल मे क्यो दौडा-दौडा जाता ? जो थोडे-से पैसो के लिए राजा के पास दौड़ा जाता है, उसमे ससार सागर से तारने की शक्ति कहां से आ

जायगी ? इस प्रकार तुम दोनों ही माया के वन्धन में जकड़े हुए हो। तुम्हारा उद्वार हो तो कैसे हो ?

शुकदेव मुनि त्यागी और वैरागी थे और राजा परीक्षित की आत्मा भी जगत की वासनाओं से अतीत हो गई थी। इसलिये शुकदेव ने परीक्षित को सात ही दिनो मे तार दिया था।

इतना कह कर महात्मा ने अपने चेलों को आदेश दिया कि इनके बन्धन खोल दो। चेलों ने उन्हे बन्धन मुक्त कर दिया।

महात्मा फिर बोले—राजन् ! अब मेरा अभिप्राय भली-भाँति समझ गये हो न ? बाह्य वन्धनों से तुम दोनो को इसीलिए बांधा गया था कि तुम इन वन्धनों के उदाहरण से अपने आन्तरिक बन्धनो को समझ जाओ अभी तुम दोनो ही आन्तरिक वन्धनों से मुक्त नही हो इसलिए तुम्हारा उद्धार नही हो सकता। जब तक आन्तरिक बन्धन रहेगे, उद्धार पाने की प्यास बुझ नहीं सकती। कोई भी बन्धन में बद्ध पुरुष उस प्यास को बुझा नहीं सकता। सचमुच ही अगर तुम्हारे अन्तर में उद्धार पाने की अभिलाषा जगी है तो मोह-ममता के फौलादी बन्धनो को हटा दो। तभी वास्तव मे उद्धार हो सकेगा।

मैंने पहले कहा था कि जो स्वयं सो रहा है, वह दूसरों को क्या जगायगा ?

इसी बात को स्पष्ट करने के लिये यह उदाहरण दिया गया है।

भविष्यदत्त–चरित —

भाइयो ! जो विशेषता आप में मौजूद है, वही आपकी प्रेरणा अथवा संगति से दूसरो मे पैदा हो सकती है। बनावटी तौर पर आप अपनी कोई विशेषता प्रकट करना चाहेगे तो अन्त मे आपको निराश होना पडेगा। कहा है—

सचाई छिप नही सकती, बनावट के उसूलों से।
कि खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से ॥

अन्त मे सच्चाई प्रकट होकर ही रहती है। उसे छिपाने की लाख कोशिश की जाय तब भी वह छिप नही सकती। आपमें अगर कोई बुराई है तो वह आपकी जीभ से नही तो चेहरे से ही प्रकट हो जायगी। इसी प्रकार यदि आप सद्गुणो के धनी हैं तो वह भी प्रकट हुए विना नही रहेगे सामने वाले की आत्मा स्वयं उनका अनुभव करने लगेगी। इस सच्चाई को भविष्यदत्त के चरित पर से ही समझ लीजिए। भविष्यदत्त की आत्मा में सच्चाई थी और उसके आचरण मे सभ्यता एव शिष्टता थी तो राजमहल मे बैठी हुई वह कुमारी उससे प्रभावित हुए विना नही रही। आखिर उसने भी सिंहासन से नीचे उतर कर भविष्यदत्त के प्रति शिष्टता प्रदर्शित की। वह नीचे खडी हुई उसने भविष्यदत्त का स्वागत किया और उसे उसी सिंहासन पर बैठने का संकेत किया, जिस पर वह स्वयं बैठी हुई थी।

भविष्यदत्त चलते-चलते बुरी तरह थक गया था। उसके पैर चूर-चूर हुए जा रहे थे। अतएव कुमारी की आज्ञा पाकर

वह बैठ गया। मगर उसके चित्त में शान्ति नहीं थी। अनेक विचित्र प्रश्न और संशय उसके दिमाग में चक्कर काट रहे थे। उसने इतने विशाल और सुन्दर नगर को सर्वथा जनहीन देखा था और वह इस रहस्य को किसी भी प्रकार समझ नहीं पा रहा था। अतएव बैठते ही उसने कहा—कुमारी! मैं आपके महल में बिना आज्ञा चला आया, इसके लिए क्षमा चाहता हूं। आपने मुझे बैठ जाने की आज्ञा दी, इसके लिए आपका आभार मानता हूँ। मैं भलीभांति समझता हूं कि किसी भी अपरिचित पुरुष के लिए इस प्रकार किसी के भवन मे प्रवेश करना नीति के प्रतिकूल है, मगर मैं करता भी क्या? सारे नगर में घूम आया, कहीं कोई भी मनुष्य नजर नहीं आया आज्ञा लेता तो किससे लेता? मैं आज्ञा देने वाले की खोज करते-करते ही यहां तक आ पहुंचा हूं। अब आप कृपा कर सब से पहले यही बतलाइए कि इस जनहीनता का कारण क्या है? यह नगर वीरान क्यों पड़ा है? इसके बाद मैं यह भी जानना चाहूंगा कि आप कौन हैं? और यहां अकेली क्यों है? यदि कोई आपत्तिजनक बात न हो और प्रसन्नतापूर्वक बतला सके तो अवश्य बतला दीजिए।

भविष्यदत्त के एक-एक शब्द में संस्कारिता और शिष्टता की ध्वनि विद्यमान है। कुलीन पुरुष को किस प्रकार अपरिचित महिला से व्यवहार करना चाहिए, यह बात भविष्यदत्त भलीभांति समझता है। उसका कथन सुनकर और उससे उसकी कुलीनता का अनुमान करके कुमारी बोली—मैं अपना अहोभाग्य समझती हूं कि आप यहां पधारे हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे ही रह सकता है। एकाकी जीवन व्यतीत करना उसके

लिए अत्यन्त कठिन है। ऐसी स्थिति में आपका दर्शन हो जाना कम सौभाग्य की बात नही है। आपने यहा आने के लिए क्षमा मांगी है, मगर मैं आपको धन्यवाद देना चाहती हूं।

अब मूल प्रश्न पर आती हूं। आपका प्रश्न स्वाभाविक है, परन्तु उसका उत्तर देना मेरे लिए अत्यन्त ही मर्मवेधी है। आपका प्रश्न सुनते ही अतीत् की विषैली स्मृतियाँ मेरे हृदय मे जाग उठी हैं और वे मुझे शोक और सन्ताप पहुँचा रही है। फिर भी उन्हे आपके सामने रखती हूं।

मेरा नाम तिलकसुन्दरी है। मेरे पिताजी का नाम भवदत्त और माता का नाम चन्द्ररेखा था। मैं वैश्य—कन्या हूं।

आपने जिस शहर को देखा है, इसका नाम तिलकपुरपट्टन है। यहां यशोधर नामक राजा था। दुःख है कि आज न मेरे परिवार मे कोई शेष रहा है और न राजा के परिवार मे ही कोई बचा है। सभी लोग मृत्यु के विकराल मुख में समा गये हैं। मेरी एक बडी बहिन थी। राजकुमार के साथ उसका विवाह हुआ था। मगर दुर्भाग्यवश उनमे से भी कोई अब नही रह गया है। बस, मैं ही अकेली अभागिनी बच रही हू और एकान्तवास का नरक भोग रही हूं। मेरे दुर्भाग्य की कथा बड़ी ही रोमांच-कारिणी है।

और यह नगर कैसे सुनसान हो गया, यह मुझसे मत पूछिए। इसका उत्तर देने को मुझ में शक्ति नहीं है। पुरानी बात याद आते ही हृदय भर आता है और आंखो से आंसू बहने लगते हैं।

इतना कहकर सुन्दरी कुमारी फूट-फूट कर रोने लगी। भविष्यदत्त मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा कि क्यो मैंने इससे यह प्रश्न किया! इसका उपशान्त हुआ दुःख मेरे निमित्त से व्यर्थ ही उभर आया! इसके बाद उसने सान्त्वना देकर कुमारी को शान्त किया। कहा—देवी! संसार बड़ा विषम है। यहां जो भी आता है, जाने के लिए ही आता है। सदा ठहरने के लिए आज तक कोई नही आया। इस अवस्था में जो चले गये हैं, उनके लिए आँसू भले बहाये जाएँ, मगर वे आँसू उन्हे लौटा कर ला नहीं सकते। स्वयं दुःखी होना और आर्त्तध्यान करने से कुछ भी लाभ नहीं होता, अलबत्ता हानि तो है ही। अतएव आप धीरज धारण कीजिए।

कुमारी कुछ शान्त होकर बोली—मैंने अपनी कथा संक्षेप मे आपको सुना दी है। पर क्या मैं भी आपका वृत्तान्त सुन सकती हूं? इस प्रश्न के उत्तर मे भविष्यदत्त ने आदि से लेकर अन्त तक अपना वृत्तान्त कह सुनाया।

तत्पश्चात् भविष्यदत्त ने पूछा—मगर इस सुन्दर नगर के सुनसान होने की बात अभी तक मालूम न हो सकी। इसे भी तो बतलाइए।

कुमारी ने अनमने भाव से कहा-आप बहुत थके हुए आये हैं। स्नान-भोजन, विश्राम कीजिए। नगर की बात फिर सुनाऊंगी।

१६-१०-४८ }

गुरुभक्ति

स्तुति :

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! मुझमें आपका गुणगान करने की शक्ति नहीं है, फिर भी आपके प्रति भक्ति है और उसी भक्ति के वश होकर

स्तुति करने में जुट गया हूं। जगल में हिरनी अपने बच्चों के पास बैठी हो और बच्चे उसके आसपास क्रीडा कर रहे हों, किन्तु अचानक ही सिह वहा आ जाय तो हिरनी सिह का सामना करने की शक्ति न होने पर भी, केवल अपनी सन्तति के प्रति प्रीति होने के कारण, अपनी शक्ति को भूल करके भी सिह का सामना कर बैठती है। सन्तान-स्नेह की अधिकता उसे यह सोचने ही नही देती कि कहां सिह और हिरनी ! वह प्रेम के रस मे ऐसी डूब जाती है कि असामर्थ्य का खयाल नहीं करती। इसी प्रकार हे भगवान् ! मेरे अन्तःकरण में आपके प्रति जो प्रबल भक्तिभाव उत्पन्न हुआ है, उसके कारण मैं भी अपने सामर्थ्य का विचार किये बिना ही आपके स्तवन में प्रवृत्त हो गया हूँ। जैसे हिरनी नही सोचती कि मैं सिह का सामना तो कर नही सकूगी, फिर क्यों वृथा सामना करने का प्रयत्न करूँ, उसी प्रकार मैं भी नही सोचता कि भगवान् के अनन्त गुणों का स्तवन कर लेना तो मेरे लिए असभव कार्य है, फिर क्यो स्तवन करने का प्रयत्न करूँ ? जैसे हिरनी का सन्तान-प्रेम एकनिष्ठ है, उसी प्रकार मेरी आपके प्रति भक्ति भी एकनिष्ठ है। उस भक्ति के सामने कोई दूसरी बात सोचने-विचारने का अवकाश ही नही है।

इस प्रकार जिनकी भक्ति से प्रेरित होकर महात्मा पुरुष अपने मे विशिष्ट शक्ति का अनुभव करने लगते है और जिनके गुण अनन्त हैं, जिनकी पूरी तरह स्तुति करना सम्भव नही है, उन भगवान् ऋषभदेव को ही हमारा बार-बार नमस्कार हो !

भाइयो ! भक्ति मे महती शक्ति है। कल भक्ति के सम्बन्ध में कुछ कहा था, मगर यह विषय तो इतना रसमय, रहस्यमय

और विस्तृत है कि इस पर जितना कहा जाय, थोड़ा ही है। कितनी भी विवेचना क्यो न की जाय, यह विषय कभी पूर्ण नहीं हो सकता। अतएव आज भी इसी सम्बन्ध मे कुछ शब्द कह रहा हूं।

भक्ति मुक्ति के निकट पहुँचाने वाली अपूर्व नौका है। यह मुक्ति का सर्वसाधारण को सुलभ और सुन्दर मार्ग है। भक्ति का सहारा लेकर बहुत जीवो ने ससार से उद्धार पाया है और पाएँगे। भक्ति भक्त और भगवान् मे पहले-पहले प्रीतिमय सम्बन्ध स्थापित कर देती है और जब वह विकसित होती है तो दोनो को एकमेक कर देती है। उस समय दोनो मे कोई भिन्नता नही रह जाती।

परमात्मा के साथ एकता की स्थापना करने के लिए हृदय में निष्कपट और निष्काम भक्ति होनी चाहिए। कपट और कामना जब आड़े आ जाते है, तब दोनो मे एकता स्थापित नही हो सकती। जिस भक्ति मे कपट है और कामना है, वह असली नहीं, नकली भक्ति है। नकली भक्ति वालो से दुनिया भरी पडी है। असली भक्त बहुत कम मिलते हैं। असली और आदर्श भक्त तो भगवान् महावीर के पास गौतमस्वामी और सुधर्मास्वामी के पास जम्बूस्वामी थे! गौतमस्वामी और जम्बूस्वामी की भक्ति की क्या सराहना की जाय?

शिष्य में गुरु के प्रति असली भक्ति होगी तो गुरु उसे अपनी ऊँची से ऊंची सम्पत्ति—केवलज्ञान तक का अधिकारी बना देता है। इस प्रकार भक्ति मे दोनो तरफ से उत्सर्ग होता है।

भक्त अपने भक्ति के पात्र के प्रति सर्वस्व समर्पित करता है तो जिसकी भक्ति की जाती है वह भी अपने भक्त को कृतार्थ कर देता है। गौतमस्वामी ने सम्पूर्ण भाव से भगवान महावीर की भक्ति की, कुछ भी कसर नहीं रक्खी तो भगवत्कृपा से वे केवलज्ञान के अधिकारी हो सके। राजा जिस पर प्रसन्न हो जाता है, उसे निहाल कर देता है। बाप के प्रति बेटे को प्रगाढ भक्ति होती है अथवा सासू के प्रति बहू की भक्ति होती है, तो वह उसे अपनी गुप्त सम्पत्ति दे देते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक सम्पत्ति के स्वामी गुरु अपने शिष्य को आत्मिक सम्पत्ति देकर कृतार्थ कर देते हैं।

भक्ति के अनेक रूप हैं। जैन शास्त्रों में भक्ति का वर्णन विनय के रूप मे आता है। कहा है—

विपत्ती अविणीयस्स, संपत्ति विणियस्स च।

अविनीत पुरुष विपत्ति का पात्र बनता है और विनीत अर्थात् भक्त को सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

गुरुजनों का अर्थात् अपने से जो बड़े हैं उन सबका विनय करना बहुत बड़ी चीज है। अतएव सत्पुरुष का कर्त्तव्य है कि गुरुजनो की आज्ञा को शिरोधार्य करे और वही कार्य करे जिसके लिए उन्होने आज्ञा दी हो। जो शिष्य स्वच्छदाचारी होता है, मनमानी करता है, गुरुजनो की आज्ञा का उल्लघन करता है, उसे सुनकर भी अनसुनी कर देता है या आज्ञा की उपेक्षा करता है, उसका कल्याण नही होता। निर्विकल्प भाव से गुरु के आदेश

का पालन करने वाला शिष्य शीघ्र ही कल्याण का भागी होता है।

संसार में बहुत से शिष्य ऐसे भी मिलेंगे जो अपनी अक्ल के आगे अपने गुरु को भी कुछ नही समझते। वे अवज्ञा का भाव रख कर गुरु के सामने सवाल–जवाब करते हैं और गुरु को ही अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे शिष्य कल्याण के भागी नही हो सकते। अतएव जिन्हे अपना कल्याण करना है, उन्हें चाहिए कि वे अपने जीवन की बागडोर गुरु के प्रशस्त हाथो में सौंप दें और जब जिस ओर वे ले जाना चाहें, चलता चला जाय। गुरु के आदेश को नतमस्तक होकर स्वीकार करें। गुरु की आज्ञा को ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि समझे।

भगवान् का पद सबसे उच्च और महान् है, किन्तु वे प्रत्यक्ष दिखाई नही देते। वे किसी के जीवन-व्यवहार को नियन्त्रित नही कर सकते। उनका प्रतिनिधित्व करने वाले वे मुमुक्षु सन्त महात्मा हैं जो उनके बतलाये पथ के पथिक हैं, जो निस्पृह विषयवासनाओं से रहित, निष्कषाय, ज्ञान–ध्यान मे मग्न आत्म-परायण और परम दयालु हैं। अतएव उनके प्रति विनय प्रदर्शित करना भी भगवान् की भक्ति प्रदर्शित करना है। राजा अपने विशाल राज्य में स्वय सर्वत्र नही पहुँच सकता और कम से कम सदा सर्वत्र नही रह सकता, अतएव उसके प्रतिनिधि नाना रूपो मे कार्य-संचालन करते हैं। पहले इस देश का राजा अग्रेज था और वह इङ्गलेन्ड मे रहता था। उसका प्रतिनिधि 'वाइसराय' के नाम से इस देश का शासन सम्भालता था। इस देश के लोग उसी को

राजा के स्थान पर गिनते थे। वैसा ही व्यवहार करते थे। इसके बिना दुनिया का काम नही चल सकता।

तो यह बात जैसे राजनीति मे आवश्यक है, उसी प्रकार धर्मनीति में भी आवश्यक है। धर्म के विशाल साम्राज्य के स्वामी वीतराग भगवान् हैं। उनके आदेशों के अनुसार, उनके प्रतिनिधि सन्त-महात्मा उनका शासन चला रहे हैं। अतएव सन्त-महात्माओं की विनय-भक्ति करना भी ईश्वरभक्ति करना ही है। ऐसा समझ कर जो गुरु की भक्ति करते हैं, वे ईश्वर-भक्ति का भी फल प्राप्त करके, अन्त मे स्वय ईश्वर बन जाते हैं।

मगर यहाँ एक बात ध्यान में रखना उचित है। राजनीतिक क्षेत्र मे हम देखते हैं कि जैसे वर्षा मे मेढको की गिनती नहीं रहती, उसी प्रकार आजकल नेताओ की भी गिनती नही है। नेता बनने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पीछे चलने वाला कोई समूह हो, जिसका कि वह नेतृत्व करता। अतएव जब उन स्वयभू नेताओ से यह पूछा जाता है कि आपके पीछे किस समूह की शक्ति है? आप किसका नेतृत्व करते हैं? तब वे किसी भी एक समूह के हितो का नारा लगाने लगते हैं। कोई कहते हैं, हम किसानो के नेता हैं, कोई कहते हैं, हम मजदूरो के नेता हैं, कोई-कोई व्यापारियो का नेता और कोई-कोई अछूतों का नेता होने का दावा करते हैं। तारीफ यह है कि एक ही वर्ग के नेता होने का दावा करने वाले अनेक लोग होते हैं और वे परस्पर विरोधी बातें कहते हैं। ऐसी स्थिति मे जनता को समझना कठिन हो जाता है कि वास्तव मे कौन किसका नेता है?

धार्मिक क्षेत्र में भी बहुत कुछ ऐसी स्थिति है। अनेक लोग हैं जो नाना सम्प्रदायों का अनुसरण करते हुए और तरह-तरह के वेष धारण किये हुए यह दावा करते हैं कि हम परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। हमारी सेवा करने से भगवान् की सेवा हो जायगी। ऐसे समय मे आप सदेह में पड सकते हैं कि किसके हाथ में अपने जीवन की बागडोर सौंपें? किसे अपना गुरु बनाएँ? परन्तु आप यदि थोड़ा विचार करेंगे तो समाधान मिल जायगा। आप भेष के बदले गुणों और आचार-विचार की परीक्षा कीजिए। सच्चे सन्त की विशेषता मैं अभी बतला चुका हूं। उसे कसौटी बनाकर परख लीजिए और परखकर जब किसी को गुरु बना लें तो उस पर पूर्ण रूप से निर्भर हो जाइए। सच्चा गुरु कदापि गलत रास्ते पर आपको नहीं ले जायगा। ऐसे सद्गुरु की भक्ति, आराधना या विनय करने से परम कल्याण की प्राप्ति होती है।

एक गुरु के दो चेले थे। एक चेले के पेट में भयानक बीमारी थी और दूसरा चेला तन्दुरुस्त था। उन्होने एक स्थान पर चौमासा किया। वहाँ एक काला सर्प निकला। गुरु ने पहले तन्दुरुस्त चेले से कहा-जाओ, देखकर और नापकर आओ कि वह सांप कितने हाथ लम्बा है?

शिष्य बोला—गुरुजी, मैं समझ गया। आप मुझ पर बहुत नाराज हैं और चाहते हैं कि किसी प्रकार मैं मर जाऊं! मगर मैं, आपकी तो क्या, आपके बाप की भी मानने वाला नहीं हूं। मैं सावधान हो गया हूं और समझ गया हूं कि आपकी नीयत में फर्क आ गया है!

स्वस्थ चेले का यह उत्तर सुनकर गुरुजी मन ही मन मुस्कराये। फिर उन्होंने अपने दूसरे चेले को वही आज्ञा दी। वह आज्ञाकारी और विनीत था। उसने सोचा—गुरु महाराज की आज्ञा का पालन करने में यदि प्राण देने पड़े तो भी कोई हानि नहीं है। यह सोचकर अस्वस्थ होने पर भी वह जाने को तैयार हो गया। उसे सांप को नापने के लिए जाते देख पहला चेला बोला—भोला कहीं का! कहां जा रहा है? क्या मरना है? यह गुरुजी तो अपने को मार डालने के लिए तैयार बैठे हैं!

विनीत चेले ने कहा—नहीं भाई, गुरुजी मारने वाले नहीं, तारने वाले हैं। हम लोग स्वच्छन्द होकर व्यवहार करते-करते अनन्तानन्त बार मरे हैं। कीड़ों-मकोड़ों की योनियां धारण करके मरते चले आ रहे हैं, किन्तु गुरु की आज्ञा से नहीं मरे हैं। अब यह समस्त जीवन गुरुजी की सेवा में समर्पित है। वे इसका जैसा चाहें, उपयोग करें। यह उन्हीं की वस्तु है। इस पर हमारा कुछ भी अधिकार नहीं है। जाय तो जाय और रहे तो रहे, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है, मगर गुरु की आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं करूंगा।

यह कहकर वह रवाना हो गया और सांप को लम्बा करके और नाप करके लौट आया। उसे सांप ने काटा नहीं। आकर गुरुजी को उसने सांप की लम्बाई बतला दी। मगर अब की बार गुरुजी ने उसे आज्ञा दी कि इस बार जाकर सांप के दांत गिन आओ। विनीत शिष्य जाने लगा तो अविनीत फिर बोला—अरे भले मानुस! क्या तेरे सिर पर मौत नाच रही है? क्यों जान-बूझकर मरने के लिए जा रहा है! यह गुरुजी तो किसी काम का नहीं है।

विनीत शिष्य ने कहा—भाई, तुम जो चाहो कहो, मैं न ऐसा कहता हूं न ऐसा समझता हूं। मैं गुरु को तारण-तरण समझता हूं। मैं तो तुमसे भी यही कहना चाहता हूं—

गुरु का कहा मान ले रे चेला। भला होयगा तेरा।

गुरु की आज्ञा का पालन करने में ही हमारा कल्याण है। सैनिको की भलाई सेनापति का आदेश पालन करने में ही है। गुरुजी हमारे धर्म-सघ के सेनापति हैं। उनकी आज्ञा पालने मे ही सबका भला है।

यह कह कर वह विनीत शिष्य सांप के पास चला गया और सांप को पुचकार कर, पकड़ कर उसके दांत गिनने लगा। मगर इस बार सांप ने उसे डस लिया। शिष्य ने इस बात की किंचित् भी परवाह न करते हुए अपना मन प्रसन्न रक्खा। गुरुजी के पास आकर उसने सांप के दांतों की सख्या बतलादी। इतना कहते ही वह सर्प के विष के प्रभाव के कारण धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। सर्प का विष उसके शरीर में व्याप्त हो गया था।

दूसरा चेला इस दृश्य को देख रहा था। उसने कहा—हाय हाय! यह गुरुजी भी कैसे हत्यारे हैं! वेचारे गरीब चेले की जान ले ली! अरे गजब कर डाला! हाय इस निर्दयता की भी कोई हद है!

चेले की यह चिल्लाहट सुनकर भी गुरु कुछ न बोले। उन्होंने अपने मन को एकाग्र किया और पाठ करने लगे:—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

दस. अ. १ गा. १

इस प्रकार गुरुजी स्वाध्याय मे लीन हो गये। परन्तु चेले की चिल्लाहट सुनकर वहां कई लोग आ पहुँचे। कोई कहने लगा-गुरुजी ने यह अच्छा नही किया। कोई कहने लगा—गुरुजी की गति गुरुजी जानें ! हम उनके रहस्य को समझ नही सकते। इस प्रकार तरह-तरह की बातें होने लगी। सब कालों में तरह-तरह के लोग होते हैं। 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' की कहावत सर्वत्र सर्वदा लागू होती है। एक ही घटना को एक आदमी किसी रूप में देखता है और दूसरा किसी दूसरे रूप में देखता है। सबकी समझ एक-सी नही होती। व्यक्ति-व्यक्ति के सस्कार अलग-अलग होते हैं और वे संस्कार उनकी बुद्धि में भिन्नता उत्पन्न करते है।

कभी-कभी लोग पूरी बात सुनते और समझते नही है और अधूरी या गलत बात सुनकर ही हो हल्ला मचा देते हैं। कभी-कभी इससे बड़ी-बड़ी बातें पैदा हो जाती हैं। एक लुगाई का घाघरा जल गया और वह आगरा की यमुना में उसे धोने गई। किसी ने पूछा-क्या हुआ है? उसने कहा-घाघरा जल गया। सुनने वाले ने समझ लिया—आगरा जल गया है ! बस, उसने हल्ला मचाया और बात फैलते-फैलते सर्वत्र फैल गई ! किसी को फुर्सत नहीं थी कि वह घटना की असलियत की जाँच करता। आखिर आग बुझाने वाले एंजिन आये। मगर खोजने पर भी कही आग नहीं मिली ! तब उसी स्त्री से पूछा गया तो उसने कहा—मेरा घाघरा जल गया है !

कहिए, बात ही बात में कितना फर्क पड़ गया ? और सुनिये—

दो नवयुवक आ रहे थे और उधर से एक नवयुवती आ रही थी। नवयुवती ने हाथ से इशारा किया और आगे चली गई। उसके इशारे को देखकर नवयुवकों मे से एक ने कहा—उसने मेरी तरफ इशारा किया है तब दूसरा बोला—नहीं, तेरी तरफ नहीं, मेरी तरफ किया है। पहला बोला-तू झूठा है ! दूसरे को भी गुस्सा आ गया। उसने कहा-तू बेईमान है।

बस, फिर क्या था ? दोनों मे गरमागरम कहा—सुनी होने लगी और फिर जूताबाजी की नौबत आ पहुंची। दूसरे राहगीरों ने उन्हें झगड़ते देख पूछा भाई, बात क्या है ? बीच रास्ते में इस प्रकार क्यो एक दूसरे पर जूता बरसा रहे हो ?

दोनों में से एक ने पिछला किस्सा सुना दिया। तब बीच बचाव करने वालो ने कहा—लड़ो मत, उसी को बुलाकर पूछ लो कि उसने किस की ओर इशारा किया है ?

दोनों भागे—भागे उस नवयुवती के पास पहुंचे। उससे पूछा—देवीजी ! आपने हम दोनों मे से किसकी ओर इशारा किया था ?

नवयुवती यह प्रश्न सुनते ही आग बबूला हो गई। उसने फटकार बतलाते हुए कहा—शराब के नशे मे तो नहीं हो ? गुण्डापन करोगे तो अभी हथकड़ियां पड जाएंगी। मालूम होता है, तुम दोनो ही आवारा हो। मैंने तुम मे से किसी को इशारा

नहीं किया। मैंने तो सिर्फ मक्खी उड़ाई थी! भले आदमी हो तो चुपचाप सीधा रास्ता पकड़ो!

और सुनिये:—

किसी जगह साधुजी उपदेश दे रहे थे। उपदेश देते-देते उन्होने एक पद्य बोला। वह यह था:—

जो दे तो वेश्या को दीजे, ब्राह्मण दियां नरक पड़ीजे।
वेश्या दियां वधेगा वंश, ब्राह्मण दियां जाय निर्वंश॥

उपदेश सुनने वालो में एक ब्राह्मण भी बैठा था। यह पद्य सुनकर उसके क्रोध का पार न रहा। वह उठकर सीधा ब्राह्मणों के मुहल्ले में गया। ब्राह्मणो से यह बात कही। बस, फिर क्या था? पचास नौजवान ब्राह्मण लाठियां ले-लेकर साधुजी के पास पहुंचे। उन्होने पूछा—बताओ साधुजी, आज आपने ब्राह्मणों के विषय में क्या कहा था? आपने ब्राह्मणों को दान देने की बुराई कैसे की?

साधुजी ने निर्भर होकर कहा—पहले यह बताओ कि यह बात तुमसे किसने कही है?

ब्राह्मणो ने उसी ब्राह्मण को सामने करके कहा—हमें इसने कही है और यह आपके उपदेश में मौजूद था। इसने अपने कानो से वह बात सुनी है।

साधुजी- इसने जो कुछ सुना है सो तो ठीक सुना है, मगर उससे पहले मैंने जो कहा था, वह भी इसने सुना है या नहीं?

ब्राह्मण—नहीं पहले की बात मैंने नहीं सुनी।

साधुजी—तो फिर क्यों इतना बखेड़ा खड़ा कर दिया? मुझ से पहले ही पूछा होता!

ब्राह्मण—अच्छा, अब बतलाइए कि आपने पहले क्या कहा था?

साधुजी मैंने यह कहा था कि एक ब्राह्मण बड़ा लायक था। उसकी एक लड़की विवाह के योग्य हुई तो उसकी शादी कर दी। मगर जिस लड़के के साथ शादी की थी, वह बड़ा दुराचारी था—वेश्यागामी था।

भाइयो! कोई-कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं जो वेश्यागमन करके अपनी जिन्दगी को नष्ट करते हैं, अपने पूर्वजों की निर्मल कीर्ति में कलंक लगाते हैं और कुल को कलंकित करते हैं। कहा है—

घर को तज उत्तम नार वेश्या से चित्त लगावे।

जो दुराचारी अपनी कुलीन और सदाचारिणी पत्नी की उपेक्षा करके वेश्या से प्रीति लगाते हैं, संसार में क्या उनकी आबरू कायम रह सकती है? कदापि नहीं। लोग उसकी ओर उंगली उठाते हैं और उसके नाम पर थूकते हैं। उसके स्वजन संबंधी भी उससे घृणा करते हैं। ऐसा पुरुष अपनी सन्तान का घोर शत्रु है, क्योंकि वह उसके समक्ष अत्यन्त निन्दित आदर्श उपस्थित करता है। उसकी सन्तान आगे चलकर उसी के समान

दुराचारप्रिय बन जायगी, कदाचित् वैसी न बनी तो जीवन भर उसके कुकृत्यों को सुन-सुन कर लज्जित होगी ! इस प्रकार वेश्या-गामी अपने ही पैर पर कुल्हाडा नही मारता, बल्कि अपनी सन्तान के जीवन को भी नष्ट कर देता है।

वेश्या का घर क्या है ? लुच्चों और गुन्डों के थूकने का ठीकरा है। जो अपनी प्रतिष्ठा को समझता है, वह भूलकर भी इस गलत रास्ते पर नही जाता।

मगर उस ब्राह्मण लड़के की बुद्धि पर पत्थर पड़ गये थे। वह वेश्यागमन के दुर्व्यसन मे बुरी तरह लिप्त हो गया था। जब तक उसके घर मे पूंजी रही, वह ले जाकर वेश्या को देता रहा। घर खाली हो गया तो पत्नी के गहने झपटने लगा। बेचारी वह लड़की जब एकदम परेशान हो गई तो एक दिन उसने अपने पिता को पत्र लिखा। उसने सोच लिया था कि ऐसे पति से सुहागिन रहने की अपेक्षा विधवा होकर दिन काट लेना कही अच्छा है ! अतएव उसने लिखा कि मैं पति को जहर दे देना चाहती हूं।

साधुजी बोले—लडकी के पत्र के उत्तर में उसके पिता ने जो पद्य लिखा था वह पद्य मैने व्याख्यान मे सुनाया था। उसी को सुनकर यह भाई उत्तेजित हो गया और तुम सब भी क्रोध मे आकर मुझे कष्ट पहुंचाने को आ धमके हो। उस पद्य का आशय यह है कि अगर जहर देना ही हो तो वेश्या को देना, ब्राह्मण को देगी तो नरक मे जायगी। अगर तू वेश्या को विष देगी तो तेरे पति का वेश्यागमन रुक जायगा और फिर तेरे वश

की वृद्धि होगी। कदाचित् ऊब कर, क्रोध में आकर पति को विष दे दिया तो तू निर्वंश हो जायगी।

ब्राह्मण भाइयों! तुम लोगों को किसी का प्रकार भ्रम न हो, इसी अभिप्राय से मैंने यह स्पष्टीकरण कर दिया। मुझे तुम्हारी लाठियो का न भय था और न है। अब तुम्हे जो उचित लगे सो कर सकते हो।

साधुजी का स्पष्टीकरण सुनते ही सब ब्राह्मण पानी-पानी हो गये। उन्होने उस ब्राह्मण को खासी डाट-फटकार दिखलाई और साधुजी से क्षमायाचना की।

इन उदाहरणो से आप समझ सकते हैं कि नासमझी और गलतफ़हमी से कितने अनर्थ हो जाते हैं। उन गुरुजी के सम्बन्ध मे यही हुआ। अविनीत शिष्य के होहल्ला मचाने पर जो लोग इकट्ठे हुए थे, उनमें से कई उनकी बुराई करने लगे। अविनीत चेला नमक मिर्च लगाकर बहुत-सी बातें करने लगा।

उस समय भी गुरुजी अपने स्वाध्याय में मगन थे। उन्होंने लोगो में होने वाली तरह-तरह की बातों पर ध्यान नही दिया और शान्त भाव से स्वाध्याय करने में ही लगे रहे। जहर के प्रभाव से, थोड़ी ही देर मे, उस चेले को दस्त लगने लगे। तब गुरुजी उठे। उन्होने पानी लेकर उसे स्वच्छ किया। दस्त लग जाने के कारण चेले के पेट की बीमारी दूर हो गई। गुरुजी ने उसे दूध पिलाया और तीसरे दिन वह गांव में फिरने लगा। पांचवें दिन वह कहने लगा मेरा रोग-दोष सब शान्त हो गया है। मैं अब खूब भला चंगा हूं।

इसके बाद गुरुजी ने सारी स्थिति स्पष्ट की। कहा-भाइयों! मेरा यह विनीत शिष्य बहुत दिनो से उदर-रोग से पीड़ित था। इसके उदर मे ऐसा रोग था कि ऐसा जहर पहुँचे बिना, वह दूर नही हो सकता! इसी कारण यह सब उपाय किया गया था। उसका जो परिणाम हुआ, वह आप सबके सामने है।

अविनीत चेला अन्त तक सही राह पर नही आया, मगर विनीत शिष्य अत्यन्त आभारी हुआ। उसकी श्रद्धा तो पहले भी थी, मगर अब और अधिक बढ़ गई।

शिष्य को ऐसा चाहिए कि गुरु को सर्वस्व दे,
गुरु को ऐसा चाहिए कि शिष्य का कछु न ले।

चेला तो ऐसा होना चाहिए कि वह गुरु के लिए या गुरु के आदेश पर तन, मन, धन, सर्वस्व निछावर करने को तैयार रहे, मगर गुरु ऐसा होना चाहिए जो अपने चेले से कुछ भी न लेवे। भाइयो! गुरुपन की प्रतिष्ठा को कायम रखना भी कोई मामूली बात नहीं है। 'गुरु' का अर्थ है-भारी। गुरु जन्म-मरण के चक्कर को मिटाने वाले हैं।

वारी जाऊ ओ सद्गुरुजी तुम पर वारणा रे॥ टेर॥
यह भव-सिन्धु अथाग भरयो है, जां बिच मेरो जहाज पड्यो है
कृपानिधान! कृपा कर पार उतारना रे॥

भाइयो! यह संसार-समुद्र अथाह भरा हुआ है। किसी ओर किनारा भी इसका दिखाई नहीं देता। ऐसे समुद्र के

बीचो बीच मेरा जहाज पड़ा हुआ है। हे गुरुदेव! आप ही इसे पार उतार सकते हैं। आप दया के भंडार हैं। कृपा करो और इसे पार लगा दो। इस विशाल संसार में मेरे लिए आप ही एक मात्र आश्रयभूत हैं। आप ही असली माता, पिता और बन्धु हैं। आप परोपकारी हैं, पूर्ण शुद्ध हैं और आप ही कल्याण-पथ बतला कर मेरा उद्धार कर सकते हैं कहावत है—दुनिया में गुरु बिना गोबर खाते हैं। सच बात यह है कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के अभाव मे गोबर खाना क्या आश्चर्य की बात है।

एक ऐसा देश था जहां गाय नहीं होती थी। एक व्यापारी वहां गाय ले गया तो उसे देखने के लिए बहुत बडी भीड जमा हो गई। उन्होंने पूछा—यह क्या चीज है? व्यापारी ने कहा—यह अत्यन्त उपयोगी वस्तु है। यह पंचामृत का झाड़ है। देखो, आम के वृक्ष में सिर्फ आम्रफल लगता है, जामुन मे सिर्फ जामुन लगता है, अनार के पेड मे सिर्फ अनार लगता है। समस्त वृक्षो मे एक ही एक फल लगता है, किन्तु यह वृक्ष ऐसा अद्भुत है कि इसमें पाँच प्रकार के फल लगते हैं।

व्यापारी की बात सुनकर सब ने विचार किया—यह झाड तो खरीद ही लेना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने व्यापारी से उसकी कीमत पूछी। व्यापारी ने बतला दिया इसकी कीमत पाँच सौ रुपया है?

व्यापारी गाय देकर और रुपया लेकर पास के किसी गाँव में चला गया, लोग सोचने लगे—पाँच फलों में से किसी

एक फल का मजा तो लें। इसी समय गाय ने गोबर किया। लोगों ने झट उसे एक थाल में झेल लिया। जो लोग वहां मौजूद थे, सब को प्रसाद की तरह थोड़ा-थोड़ा बांट दिया। लोगों ने उसे मुंह में लिया और लेते ही थू-थू करके थूंक दिया। सब कहने लगे-अरे! यह कैसा फल है? यह तो खराब निकल गया!

थोडी देर बाद गाय ने पेशाब किया लोगों ने उसे एक लोटे में ले लिया। यह अमृत भी सबकी हथेली में दिया गया। सब ने उसे भी चखा और चखते ही मुंह बिगाड़ कर, नाक-भौंह सिकोड़ कर थूंक दिया। इस प्रकार गाय रूपी पेड़ का दूसरा फल भी बेकार हो गया।

अब लोगों को गुस्सा आ गया। कहने लगे-साला व्यापारी हम लोगो को ठग ले गया है! अभी दूर नहीं गया होगा, चलो उसकी खबर ले और उसे उसकी ठगाई का मजा चखाएं! बस, लोग लाठियां ले-लेकर उसी गांव की ओर चल पड़े, जिस गांव की तरफ वह व्यापारी गया था। गांव में पहुंचते ही वह टहलता हुआ मिल गया। लोगो को आते देखा तो वह समझ गया कि मामला गड़बड़ है। लोग उसके पास आये। उन्होंने कहा— दो अमृत खराब निकल गये हैं! तूने हमे धोखा दिया है!

व्यापारी बोला-हां गलती कहने और समझाने में हो गई। आप लोगों को विस्तार के साथ सब बातें बतलानी चाहिए, मगर मैंने बतलाई नहीं। चलो, अब मैं आपके साथ चलता हूं। यह कहकर व्यापारी फिर उसी गांव में आया। उसने गाय को घास, खली और बिनौले खिलाकर पानी पिलाया। फिर पानी से थन

धोकर दूध दुहना शुरू किया। यह देखकर लोग कहने लगे-हाँ, अब अमृत निकला है!

व्यापारी ने सबको धीरज बंधाने के लिए थोड़ा-थोड़ा दूध चखाया तो लोग प्रसन्न हो गये। इसके पश्चात् व्यापारी ने दूध को गर्म किया। उसमें से आधा जमा दिया और आधे की रबड़ी और फिर मावा बनाया। दही जम गया तो सबको थोड़ी-थोड़ी सब चीजें चखने को दी। बचाये हुए दही को विलोया तो मक्खन निकला। मक्खन भी चखाया और फिर उसे गर्म करके घी बनाया। यह सब देखकर और चखकर लोगों को अपार आनन्द हुआ। वे कहने लगे-वाह वाह! यह तो पांच से भी ज्यादा अमृत हैं! उन्होंने व्यापारी को पांच सौ रुपये और दिये तथा दस-पाँच झाड़ और ले आने का ऑर्डर दे दिया।

कहने का आशय यह है कि जब उन ग्रामीण लोगों को अमृत पाने का रास्ता नहीं मालूम था, तब वे गोबर और पेशाब को ही अमृत मानकर उसका सेवन करने लगे और व्यापारी को धूर्त समझते रहे! किन्तु जब व्यापारी ने उन्हें भलीभाँति समझा दिया-तरकीब बतला दी तो उन्हें आनन्द आ गया। वे गाय से सही और पूरा फायदा उठाने लगे।

भाइयों! यह मनुष्य-शरीर भी पंचामृत झाड़ के समान है। इस शरीर से जो विषयभोगों का सेवन कर रहे हैं और पाप उपार्जन कर रहे हैं, वे गोबर और पेशाब का सेवन कर रहे हैं। चोरी करना, परस्त्री का सेवन करना, झूठी गवाही देना और दूसरे का माल हड़प जाना, गोबर खाने से भी अधिक बुरी बात है।

जितने बुरे काम हैं वे गोबर और पेशाब से भी बुरे हैं। इसलिए भाइयो ! ज्ञान प्राप्त करो। सद्गुरु की शरण लो। सद्गुरु तुम्हें कल्याण का और आनन्द का मार्ग बतलाएँगे। वे मानव-जीवन की वास्तविक सफलता का गुरुमंत्र सिखलाएँगे। गुरु की शरण में जाने पर आप समझ सकेंगे कि इस दुर्लभ मानव-भव का असली मूल्य क्या है ? यह भव पंचामृत को देने वाला है। यह चार गतियों में से छुडाकर पांचवीं गति-मुक्ति को प्रदान करने वाला है। दिव्य ऋद्धि और भोगोपभोगो को भोगने वाले देवगण भी इस मनुष्यभव की सराहना और अभिलाषा करते हैं। इसी से आत्मा का सर्वोत्कृष्ट कल्याण होता है। यह जन्म संयोगवश तुम्हें मिल गया है तो गोबर-पेशाब में ही सन्तोष मानकर मत बैठे रहो। इसमें से परमामृत का तत्त्व निकालो और अजर-अमर पदवी प्राप्त करके निहाल हो जाने का उद्योग करो। इसके लिए सद्गुरु की सहायता की आवश्यकता है। उनका मार्ग प्रदर्शन चाहिए। अतएव उनकी उपासना करो। सम्पूर्ण भाव से अपने को गुरु को सौंप दो। शुद्ध अन्तःकरण से गुरु के प्रति भक्ति रक्खोगे तो अपूर्व फल पाओगे और कृतकृत्य हो जाओगे। परन्तु उस भक्ति में सच्चाई होनी चाहिए। स्वार्थ या संसारिक कामनाओं से प्रेरित होकर भक्ति करोगे तो पूरा फल नहीं पा सकोगे।

गुरु के प्रति भक्ति है या नहीं, इस बात की परीक्षा किस प्रकार हो सकती है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे उस विनीत शिष्य ने किसी भी प्रकार का संकल्प-विकल्प न करते हुए गुरु की आज्ञा का पालन किया था, उसी प्रकार आज्ञा पालने के लिए आपका दिल तैयार हो तो समझना चाहिए कि आप

गुरु के प्रति सच्ची और पूरी भक्ति रखते हैं। आपको पहले ही यह बात समझ लेनी चाहिए कि गुरु जो परामर्श देते हैं, उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उदाहरण के लिए गुरु हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और लोभ लालच त्यागने की प्रेरणा करते है। सोचो, इसमे गुरुजी का क्या स्वार्थ है? इन पापों का त्याग कर दोगे तो किसे लाभ होगा? धर्मध्यान करोगे तो उसका फल गुरु को मिलेगा या धर्म ध्यान करने वाले आपको मिलेगा?

दूसरी आवश्यक बात यह है कि गुरु के उपदेश को सुनकर जो भी व्रत, नियम आदि अंगीकार करो, उस पर दृढ रहो। कठिनाइयां आ सकती हैं, ऐसा प्रसग भी आ सकता है कि जब आप गिरने को तैयार हो जाएँ, मगर उन पर अपनी दृढ़ता के द्वारा विजय प्राप्त करो। निश्चित समझो कि मनुष्य के संकल्प में अपरिमित शक्ति छिपी है। संकल्प जितना शक्तिशाली होगा, कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की उतनी ही अधिक क्षमता आपको प्राप्त होगी। आपके सुदृढ़ संकल्प के सामने समस्त संकट चूर-चूर हो जाएंगे। तब आपको अपनी विजय देखकर अपूर्व आनन्द और सन्तोष होगा।

भविष्यदत्त चरित:—

भविष्यदत्त के चरित की ओर दृष्टि दौड़ाइए। वह तीन दिन का भूखा था। परन्तु क्या मजाल की क्षण भर के लिए भी उसके दिल में निर्बलता उत्पन्न हो जाय। उसने अदत्तादान का त्याग किया था और अपने उस संकल्प पर वह चट्टान की तरह अटल है।

भविष्यदत्त ने तिलकसुन्दरी से नगर के ऊजड़ होने का कारण पूछा तो उसने कहा—पहले स्नान-भोजन आदि से निवृत्त हो लीजिए। उसके बाद और बातें करेंगे। परन्तु भविष्यदत्त इतना-इतना उत्कंठित था कि नगर का इतिहास जाने बिना उसे कुछ भी करना नहीं सुहाता था। अतएव उसने कहा-तिलकसुंदरी! मेरे हृदय मे तीव्र उत्सुकता और उत्कठा है। पहले इस नगर का हाल बतला दो तो फिर शान्ति के साथ दूसरे काम करूं।

तिलकसुन्दरी बोली—आप सुनना ही चाहते हैं तो लीजिए सुनिये। यहां अशनिवेग नामक एक देवता है। वह बड़ा ही बलवान् है और साथ ही अत्यन्त दुष्ट और पापी भी है। पाप के उदय से वह न जाने कहा से यहां आ गया। राजा और प्रजा के साथ उसकी शत्रुता थी। शत्रुता किस कारण और कब हुई, यह मैं नहीं जानती। सिर्फ इतना जानती हूं कि उसने शत्रुता से प्रेरित होकर राजा, रानी और समस्त नगर-निवासियों को पकड़-पकड़ कर पानी मे डुबा दिया। सिर्फ मैं ही अकेली बच रही हूं और तब से अकेली ही यहां रहती हूं। इतने बड़े नगर के निवासियो मे से मुझ अकेली को उसने क्यों बचने दिया, यह रहस्य भी मैं नहीं समझ सकती! आह! मेरे प्यारे-प्यारे भाई थे, बहिनें थी, माता-पिता आदि थे, उन सबको उसने डूबा कर मार डाला! आप समझ सकते हैं कि यह कहानी कितनी दुःखपूर्ण है। कैसी हृदयद्रावक है! इसका स्मरण आते ही दिल चाहता है कि किसी प्रकार अपने प्राणों का परित्याग कर दूं! मगर आत्मघात करना एक घोर पाप है। पाप के उदय से जो स्थिति

उत्पन्न हुई है, उसे पाप का आचरण करके ही किस प्रकार दूर किया जा सकता है ? यही सोचकर किसी प्रकार प्राणों की रक्षा कर रही हूं।

अन्त में तिलकसुन्दरी ने कुछ संकोच के साथ कहा—जान पड़ता है कि मेरे पाप कर्म का अन्त आ रहा है। इसी से आपका अकस्मात् ही आगमन हो गया है। न मालूम कितने दिनों बाद मैं मनुष्य का चेहरा देख पाई हूं। मेरा पुण्य ही शायद आपको यहा ले आया है। अब मैं आपकी शरण मे हूं। कृपा कर मेरा उद्धार कर दीजिए। मुझे यहां से ले चलिए।

भविष्यदत्त ने कहा—तिलकसुन्दरी ! तुम्हारी कथा बड़ी ही अद्‌भुत है। वास्तव में तुमने बडे सकट मे अपने आपको संभाला है। तुम्हारे बदले कोई और स्त्री होती तो उसका जीवित रहना कठिन था। तुम्हारी दृढ़ता सराहनीय है। तुम विवेकवती हो। मनुष्य की सहायता करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। मैं भी संयोगवश अकेला पड़ गया हूं और तुम भी अकेली जीवन व्यतीत कर रही हो। ऐसी स्थिति में हम दोनो ही एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं। मगर इस समय हमें अत्यन्त सभल कर चलना होगा। मैंने गुरु महाराज के समक्ष पांच अणुव्रतों को धारण किया है और प्राण देकर भी अपने प्रण का पालन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

परस्त्री को मैं माता और बहिन के समान समझता हूं। अतएव मैं तुम्हें अंगीकार तो नहीं कर सकता, किन्तु यह वचन देता हूं कि मुझसे अधिक से अधिक जो सेवा-सहायता हो सकती

है, उसको करने मे कुछ भी कसर नही रक्खूंगा। मैं तुम्हारा उद्धार करूंगा और अधिक से अधिक सुखी बनाने का उद्योग करूंगा। लेकिन मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना पड़ेगा।

तिलकसुन्दरी ने कहा—आप परस्त्री के त्यागी हैं, यह तो बहुत अच्छी बात है, मगर स्त्रीमात्र के त्यागी तो नही है ? विवाह न करने की प्रतिज्ञा तो आपने नहीं ली है ? इस समय मैं आपके लिए परस्त्री हूं, मगर विधिपूर्वक विवाह हो जाने पर परस्त्री नहीं रहूंगी। विवाह में यही तो अद्भुत शक्ति है कि विवाह करने से परस्त्रीगमन का पाप हट जाता है। मैं अभी तक अविवाहिता हूं और कुलीन हूं। ऐसी स्थिति में गृहस्थ के लिए धर्म कुछ भी बाधक नहीं है। हां, अगर मुझे आप हीन जाति की समझते हो अथवा मुझ में कोई दूसरी त्रुटि देखते हो तो बात दूसरी है।

भविष्यदत्त ने कहा—कुमारी ! मैं तुम्हे न हीन जाति या कुल की समझता हूं और न कोई दूसरी त्रुटि देखता हूं। इसके विपरीत तुम मे सभी आवश्यक सद्गुण मौजूद हैं। तुम सुन्दरी हो, उदार हो, विवेकशालिनी हो, सब प्रकार से सुयोग्य हो, आदर्श गृहिणी की सभी विशेषताएं तुम्हारे पास हैं। जो पुरुष तुम्हे पत्नी के रूप मे वरण करेगा, वह अत्यन्त सौभाग्यशाली होगा। किन्तु मेरे सामने एक कठिनाई है। वह यह कि मैंने ऐसा प्रण कर रक्खा है कि दूसरे के द्वारा दी हुई कन्या के साथ ही विवाह करूंगा। मैं तुम्हारे साथ विवाह करके भाग्यशाली होता, मगर इस विवाह में कन्यादान करने वाला कौन होगा ? बिना ही कन्यादान के अगर मैं तुम्हे स्वीकार कर लूं तो मेरा प्रण भंग होता है।

भाइयों ! भविष्यदत्त की नीतिपरायणता और दृढ़प्रतिज्ञता पर जरा विचार कीजिए। उसके सामने कितना बड़ा प्रलोभन है ? अनुपम सुन्दरी कन्या स्वयं उससे प्रार्थना कर रही है। सर्वथा एकान्त है। कोई देखने या जानने वाला नहीं है। वह स्वयं नवयुवक है। फिर भी अपनी प्रतिज्ञा पर कितना अटल है ! कई लोग तो पराई स्त्री को लोलुपता की दृष्टि से देखते हैं, मगर भविष्यदत्त का चरित्र कितना उच्च और उज्ज्वल है ! यद्यपि कन्या समझदार हो और उसके कुटुम्ब-परिवार मे कोई न हो तो स्वयं स्वेच्छा से विवाह कर सकती है और प्राचीन काल मे, भारत वर्ष मे, ऐसे विवाह होते भी थे, मगर भविष्यदत्त ने एक प्रकार का नियम ग्रहण किया है। वह उस नियम पर दृढ़ है और इसी कारण तिलकसुन्दरी को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर रहा है।

तिलकसुन्दरी को भविष्यदत्त का उत्तर सुनकर प्रसन्नता भी हुई और खेद भी हुआ। प्रसन्नता इस बात की कि संयोग से उसे जिस पुरुष का सहयोग मिला है वह एक आदर्श नीतिवान्, धर्म को समझने वाला, सदाचारी और उत्तम श्रेणी का पुरुष है। वह धोखा नहीं दे सकता, धूतना नहीं कर सकता। मगर खेद इस बात का हुआ कि वह उसे पूर्ण रूप से अंगीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करता है। भविष्यदत्त, तिलकसुन्दरी के साथ विवाह कर लेता तो तिलकसुन्दरी का भविष्य निश्चित हो जाता। अब उसके सामने फिर अनिश्चित स्थिति उत्पन्न हो गई। उसे अपने भविष्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चिन्ताएं होने लगी।

तिलकसुन्दरी बोली—कुमार ! मैं दिन रो-रो कर और रात तारे गिन-गिन कर व्यतीत कर रही हूं। न मेरे मां-बाप हैं, न कोई और कुटुम्बी या आत्मीय जन हैं। मैं पूर्णरूप से अनाथ और निराधार हूं। इस विशाल विश्व मे मेरा कोई नही है जिसे मैं आत्मीय कह सकूं। मेरे दुःख और परिताप की कोई सीमा नही है। रोती हूं तो कोई सान्त्वना देने वाला नजर नहीं आता। भला विचार तो कीजिए कि इस एकदम सुनसान प्रदेश में मैं एकाकी अपनी जिन्दगी के दिन व्यतीत कर रही हूं ! ऊपर, नीचे, अगल-बगल सर्वत्र शून्यता ही शून्यता व्यापी हुई है ! मेरा भाग्य उदय हुआ कि भूले-भटके आप यहां तक आ पहुंचे। नही तो जिन्दगी पूरी हो जाती और मैं मनुष्य की सूरत देखे बिना ही परलोक के लिए प्रयाण कर जाती ! किन्तु जान पड़ता है कि आप भी मुझसे पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं ! यह सोचकर मेरे हृदय में कटारी-सी चुभती है ! पर भाग्य में जो लिखा है वही होगा। अपने किये कर्म भोगे बिना छुट्टी कैसे मिल सकती है ?

भविष्यदत्त ने उत्तर दिया—तिलकसुन्दरी ! तुम्हारी स्थिति सचमुच वेदनाजनक है। इस भीषण स्थिति मे एक नवयुवती का जीवित रहना कठिन ही था, परन्तु मैं तुम्हारे धैर्य की सराहना करता हूं। तुमने स्त्री होकर भी मर्दानगी के साथ परिस्थिति का मुकाबला किया है। मगर जब तुम बिलकुल अकेली थी तब भी धैर्य धारण कर सकीं तो अब तो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं। अब क्यों धैर्य त्यागती हो ? विश्वास रखो कि मैं तुम्हे निराधार छोड़ना नही चाहता। अगर धर्म की मर्यादा हम दोनो को दाम्पत्य के पवित्र बन्धन मे न बन्धने देगी तो भी मैं तुम्हारा सहायक रहूँगा और तुम्हे सुखी बनाने में अपना सर्वस्व अर्पित कर दूंगा।

तिलकसुन्दरी ! संसार में बहुत लोग हैं जो स्वार्थ के खातिर ही जीते हैं। यह सोचकर तुम मुझ पर अविश्वास कर रही हो। समझती हो कि अगर तुमसे मेरा कोई स्वार्थ सिद्ध न होगा तो मैं तुम्हारी सहायता न करूंगा। ऐसा समझना स्वाभाविक है, क्योंकि तुम मुझ से परिचित नहीं हो। परिचित होती तो मेरे विषय में कदापि ऐसा न सोचती। मैं सिद्ध कर दूंगा कि संसार मे ऐसे भी मनुष्यों का अभाव नहीं है जो स्वार्थ की इच्छा न रखते हुए भी, मनुष्य न होने के नाते मनुष्य की सेवा करते हैं।

इस समय मैं यही कह सकता हूं कि संसार में धर्म ही सारभूत वस्तु है। जब संसार की कोई भी शक्ति धैर्य देने मे समर्थ नही होती, तब भी धर्म का आश्रय लेने से मनुष्य धैर्य प्राप्त करता है। धर्म ही सच्चा सहायक और हितैषी है। विवेक दृष्टि से देखोगी तो पता चलेगा कि दुनिया झूठी है और एक मात्र धर्म ही सच्चा है। अतएव तुम धर्म पर पूर्ण आस्था रक्खो। विषयभोगो की ओर न झांक कर संयम और शील रूप रत्नों को ही धारण करो।

भाइयो ! भविष्यदत्त के कथन पर आपको भी विचार करना चाहिए। मनुष्य को धर्म पर पूर्ण श्रद्धाभाव रखते हुए संयम का यथाशक्ति सेवन करना चाहिए। जो मनुष्य धर्म से गिर गया समझ लो कि वह मनुष्यता से गिर गया। क्या स्त्री और क्या पुरुष, जब अपनी मर्यादा को छोड देता है तो उसमे मानवता भी नही रह जाती है। विचार करो कि आखिर मनुष्य में और कुत्ता आदि पशुओ में क्या अन्तर है? कहा है—

धर्मो हि तेषामधिको विशेषः,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।

आहार, निद्रा, भय, विषयभोग आदि तो मनुष्यों में और पशुओं में समान रूप से पाया जाता है, फिर दोनो में अन्तर क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है कि मनुष्यों में धर्म का ही विशेषता है। अतएव यह विशेषता जिसमे न पाई जाय, अर्थात् जो मनुष्य होकर भी धर्म का पालन न करता हो वह पशु के समान ही है।

इस प्रकार धर्म की मर्यादा में रहने के कारण ही मनुष्य का दर्जा सबसे ऊपर है। जो उस मर्यादा से गिर जायगा, वह मानवता से भी गिर जायगा।

इसके अतिरिक्त विपत्ति आने पर धैर्य धारण करना भी मनुष्यता और मर्दानगी का लक्षण है। कहा हैः—

मर्द दर्द नही गिने, दर्द गिने नही मर्द ।
दर्द गिने वो मर्द नही, दर्द सहे वो मर्द ॥

सच्चा मर्द दुःख-दर्द में सद आहे नहीं भरता—ठण्डी सांस नहीं लेता, किन्तु मर्द दर्द को दृढ़ता से सहन करता है। जो दर्द सहे नही वह मर्द ही नही। पगड़ी, साफा या अङ्गरखी पहन लेने से ही कोई मर्द नही कहलाता, वरन् दर्द मे मर्दानगी दिखलाने से होता है। प्राचीन काल मे और अर्वाचीन काल मे भी जो महापुरुष कहलाये हैं, उनके जीवनचरित का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट

हो जायगा कि दुःख और कष्ट आ पड़ने पर उन्होंने कभी दीनता नही दिखलाई। जब उनके जीवन में ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ तो उन्होंने अपनी धीरता की अमोघ शक्ति से समस्त दुःखों और कष्टों को चुनौती दी और परास्त किया। इसीलिए तो कहा गया है:—

> वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।
> लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति ॥

लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को समझना टेढी खीर है। उनके चित्त अगर वज्र से भी कठोर होते हैं तो फूल से भी अधिक कोमल होते हैं।

कहा जा सकता है कि यह कथन तो परस्पर विरोधी है। जो वज्र से भी ज्यादा कठिन होगा, वह फूल से भी ज्यादा कोमल कैसे हो सकता है? प्रश्न ठीक है और इसीलिए कवि ने कहा है कि लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को समझ लेना सरल बात नही है। बात असल में यह है कि महापुरुष दूसरे के दुःख को देख कर एकदम अधीर हो उठते हैं। उस समय उनके चित्त में वज्र की कठोरता नही, वरन् कुसुम की कोमलता आविर्भूत हो जाती है। परन्तु अपने दुःख और संकट के समय वे वज्र के समान कठोर हृदय बन जाते हैं। इसी प्रकार और भी कई प्रसंग आते हैं जब कि उन्हें कठोरता धारण करनी पड़ती है। अतएव विभिन्न समयो में होने वाली कोमल और कठोर परिणतियों में पारस्परिक विरोध नही है।

यहाँ कहने का आशय यह है कि घोर से घोर विपत्ति में भी मनुष्य को अपनी मर्यादाएँ ध्यान मे रखनी चाहिए। जो पुरुष

ऐसा करता है वही सच्चा मर्द है, वही सच्चा धर्मात्मा है। कठिनाई आते ही कायरता धारण करके अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर डालने वाला, संकल्प से गिर जाने वाला और प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो जाने वाला पुरुष अपने जीवन में कदापि सफलता नहीं पा सकता। क्योंकि संसार अतीव विषम है और इसमें सुख और दुःख आते-जाते ही रहते हैं। कहा भी है:—

चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दु:खानि सुखानि च।

दुःख और सुख गाड़ी के पहिये की भाँति फिरते-बदलते रहते हैं। और भी कहा है:—

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

महाकवि कालिदास की उक्ति का आशय भी यही है कि जीवन मे कभी नीची और कभी ऊँची स्थिति का सामना करना पड़ता है। हिन्दी मे कहा है—'सब दिन जात न एक समान।' आप चाहें कि हम इस समय सुखी हैं और हमारा सारा जीवन सुख में ही व्यतीत हो जाय, हमारी स्थिति मे कुछ भी परिवर्त्तन न हो तो यह संभव नहीं है। यहाँ सुखियों का सुख सदा नही रहता और दुखियो का दु:ख भी स्थायी नहीं रहता।

सुख और दुःख के कारण सदैव बदलते रहते हैं, फिर भी आत्मा का स्वाभाविक गुण सुख ही है, दुःख आत्मा का स्वाभाविक नही वैभाविक गुण है। अतएव अगर आत्मा चाहे तो दु:ख के कारण उपस्थित होने पर भी दु:ख की वेदना से बच सकता

है ऐसा करने के लिए थोड़ी साधना की आवश्यकता है। वह साधना है। समभाव की। आचार्य अमितगिति कहते हैं—

दु खे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धे :,
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ !

मोह-ममता के बन्धनो में बंधा हुआ साधारण मनुष्य भगवान् की स्तुति करता है या प्राथना करता है तो वह पुत्र या पौत्र मांगता है अथवा धन-सम्पत्ति की याचना करता है, शरीर का स्वास्थ्य मांगता है अथवा राजपाट आदि मांगता है। पर वह यह नही जानता कि अगर इन वस्तुओं का संयोग हो गया तो वियोग भी अवश्य होगा। संयोग के समय हर्ष-जन्य कर्मों का और वियोग के समय विषादजन्य कर्मों का उपार्जन करना होगा और दोनों अवस्थाओ के कर्म अन्ततः दुःख रूप परिणाम ही उत्पन्न करेंगे। ज्ञानी पुरुष इस रहस्य को समीचीन रूप से जानते हैं। अतएव वे सांसारिक पदार्थों की याचना न करके परमात्मा से समभाव की ही याचना करते हैं। उनकी मांग है-हे नाथ! दुःख मे और सुख में वैरी पर और बन्धुजनों पर सयोग में और वियोग मे भवन मे और वन मे, प्रत्येक स्थिति में और प्रत्येक वस्तु मे मेरे आत्मा मे समभाव बना रहे मेरे हृदय मे से ममता का भाव पूरी तरह दूर हो जाय !

प्रभु के प्रति की हुई इस याचना मे बड़ा भारी रहस्य और महत्त्व छिपा हुआ है। बात यह है कि वास्तविक सुख समभाव

में ही है। जिसके चित्त में समभाव नहीं है, वह किसी भी स्थिति में सुखी नहीं हो सकता। कल्पना करो—एक बड़ा राजा है। उसके पास विशाल भण्डार है और बड़ी भारी सेना है और सभी कुछ है, किन्तु सन्तान नहीं है। उसे जब तब यही चिन्ता सताती रहती है कि मेरे बाद मेरे ऐश्वर्य का स्वामी कौन होगा? जब वह अन्तःपुर मे जाता है, रानी का चेहरा उदास देखता है और अपनी लाचारी का स्मरण करता है तो जैसे सैकड़ो बिच्छू उसके कलेजे मे डंक मारते हैं। तो क्या राजा इतना बड़ा ऐश्वर्य पाकर भी सुखी है? दूसरे लोग राज्य को सुख का साधन समझते हैं और राज्य पा लेने को बड़े से बड़ा सौभाग्य मानते हैं, मगर वह राजा राज्य का अधिकारी होते हुए भी सुखी नही है।

अच्छा, राजा को रहने दीजिए और किसी गरीब की झोंपड़ी की ओर चलिए। एक टूट-फूटी झोपड़ी मे कोई निर्धन रहता है। उसके एक दर्जन सन्तान हैं। वह न आप भरपेट खा सकता है और न अपनी सन्तान को ही खिला सकता है। विस्तार में न जाकर, संक्षेप में ही, प्रश्न होता है कि जिस सन्तान के अभाव मे राजा सदैव चिन्तातुर रहता है, उसी सन्तान को पाकर क्या यह गरीब सुखी है?

इस प्रकार आप सब जगह घूम जाइए और एक-एक की स्थिति को देखते जाइए। आपको कहीं सुख नजर नहीं आएगा। इसका कारण यही है कि वहाँ कहीं समभाव नहीं है और समभाव के अभाव में सुख नही है।

अन्त में आप किसी अकिंचन, भिक्षाजीवी, अनगार

सन्त के पास पहुँच जाइए । आप देखकर आश्चर्य करेंगे कि उसके पास राज्य नहीं, भंडार नहीं सन्तान नहीं, सुख की समझी जाने वाली कोई भी सामग्री नहीं, फिर भी वह अपने आपे में मस्त है! उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। उसे राजा की परवाह नहीं और तुम्हारी सम्पदा की चाह नहीं। क्यों वह सुखी है? इसीलिए कि वह समभावी है।

आशय यह है कि समभाव मे ही सुख है। इसीलिए भविष्य-दत्त ने तिलकसुन्दरी से कहा—कुमारी! घबराने से काम नहीं चलेगा। घबराहट से कोई भी विपत्ति दूर नहीं होती। समभाव रक्खो। समभाव आ जायगा तो किसी भी परिस्थिति में तुम सुख ही सुख का अनुभव करोगी।

फिर भविष्यदत्त ने कहा—मैं तीन दिन का भूखा हूँ। बातें फिर करेंगे, पहले भोजन हो तो लाओ। तिलकसुन्दरी ने उसे आदर के साथ भोजन कराया। भोजन करके भविष्यदत्त सो गया और तिलकसुन्दरी नवीन परिस्थिति पर और अपने भविष्य पर विचार करने लगी।

१७-१०-४८ }

समाप्त
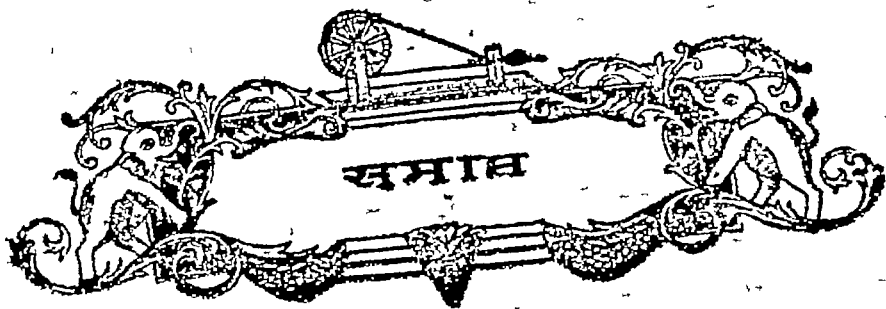
धनसार—बेटा ! तुम्हें यह क्यों सूझा ? अपने घर मे धन की क्या कमी है ? सात पीढ़ियां धन न कमाएँ तो भी बहुत है।

बन्धुदत्त—पिताजी ! आपकी कृपा से धन की कुछ भी कमी नहीं है, मगर मैं स्वयं अपने पुरुषार्थ से भी कुछ उपार्जन करना चाहता हू । कहते हैं, गुरु की और पिता की लक्ष्मी माता के समान होती है, अतएव सयाने लड़के को उसका उपभोग नहीं करना चाहिए।

धनसार-बेटा ! तुम्हारा विचार प्रशंसनीय है, मगर अभी तुम्हें संसार का अनुभव नहीं है तुम्हारी उम्र कच्ची है, कुछ दिन ठहर कर जाना।

बन्धुदत्त-मगर घर में बैठे-बैठे तो अनुभव आने से रहा ! आखिर तो वह बाहर निकलने से ही आएगा। और पिता की निगाह मे तो बालक कच्चा ही रहता है ! पिता के प्रेम का ही यह प्रमाण है । आप संकल्प-विकल्प में न पड़ें। प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दें।

इस प्रकार बन्धुदत्त-जब बहुत समझाने पर भी न माना तो सेठ धनसार ने उसे विदेशयात्रा करने की स्वीकृति दे दी। फिर नगरसेठ ने राजा से मिलकर घोषणा करवा दी कि जो कोई भी व्यापारी नगरसेठ के लडके के साथ व्यापार के निमित्त परदेश जाना चाहे प्रसन्नतापूर्वक जा सकता है। नगरसेठ की ओर से उसे पूंजी दी जायगी। भोजन का प्रबंध भी नगरसेठ की ओर से ही होगा। चिकित्सा के लिए वैद्य साथ रहेगे।

अहा ! प्राचीन काल में मनुष्यों में पारस्परिक सहानुभूति की भावना कितनी उग्र थी, यह वृत्तान्त उसका ज्वलत प्रमाण है ! पहले के जमाने में, आजकल की भांति संकीर्णता नहीं थी, स्वार्थपरायणता नहो थी, ईर्षा नही थी ! एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को अपना शत्रु या विरोधी नही समझता था, बल्कि समधर्मा समझ कर एक दूसरे की सहायता करते थे। कैसी उदारता है, कैसी सुन्दर सहानुभूति है ! आज का एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को अपना प्रतिस्पर्धी समझता है। अपने व्यापार के रहस्यो को दूसरो से छिपाने का प्रयत्न करता है। भाव-ताव भी छिपाने की कोशिश करता है। मगर उस समय यह बात नहीं थी। उस समय के बड़े व्यापारी छोटे व्यापारियों को अपना छोटा भाई सा समझ कर सब प्रकार से उन्हे सहायता देते थे।

इस घोषणा को सुनकर कई लोगो ने अपनी-अपनी तक-दीर को आजमाने का विचार किया। वे सब अपनी तैयारी करने लगे।

बन्धुदत्त पिता से आज्ञा प्राप्त करके माता के पास पहुँचा। उसने कहा—माँ, मैं धन कमाने के लिए परदेश जाऊँगा। पिताजी ने आज्ञा दे दी है। तुम भी आज्ञा दे दो बस चला जाऊं।

माता—लाल ! क्या अकेला ही जायगा ?

बन्धु०—नहीं माँ, भाई भविष्यदत्त भी साथ जाएँगे।

माता—देख, भविष्यदत्त बड़ा है और तू छोटा है। उसकी पुण्यवानी अभी से चमक रही है। राजा भी उसका आदर कर-

रहा है और प्रजा भी उसे बहुत चाहती है । सब जगह उसकी प्रशंसा ही प्रशंसा सुनती हूं । मगर उसकी प्रशंसा का एक-एक शब्द मेरे कानो मे एक-एक बाण की तरह चुभता है । तुम्हारे पिताजी के बाद, एक दिन, वही घर का मालिक बन बैठगा । बेटा ! जानते हो, इसका क्या परिणाम होगा ? तुम्हारे और मेरे हक मे यह अच्छा नही होगा । तुम्हें दास की तरह उसकी आज्ञा मे चलना पड़ेगा और मुझे दासो की तरह रहना पड़ेगा । मेरे हृदय मे बहुत दिनो से यह काटा चुभ रहा है । और यह काटा तेरी तलवार की नौक के बिना नही निकलने वाला है ।

भाइयो ! सौतिया डाह प्रसिद्ध है । यह डाह या दाह जिसके दिल मे उत्पन्न होती है, उसे तिल तिल करके जलाती रहती है । पुरुषों मे और स्त्रियों में, बालक और वृद्ध में, सर्वत्र न्यूनाधिक रूप मे, इसका प्रसार है । ईर्षालु मनुष्य दूसरे के उत्कर्ष को दूसरो के गुणों को, कीर्त्ति को, सहन नही कर सकता । जिन गुणों के कारण किसी की उन्नति और कीर्त्ति होती है, उन गुणो को जान बूझकर वह अनदेखा करता है, उन्हे प्राप्त करने का चेष्टा नही करता, परन्तु चाहता है कि मैं इससे बढ़कर क्यों नही हूं ? इसकी उन्नति न हो तो अच्छा है, इसकी अपकीर्ति हो जाय तो श्रेष्ठ हो ! कभी-कभी तो ईर्षा इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि मनुष्य दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए अपनी बड़ी से बडी हानि की भी परवाह नही करता ! लोक मे कहावत है-दूसरे के अपशकुन के लिए अपनी नाक कटवाना ! यह बात ऐसे ही ईर्षाखोर आदमियो पर घटित होती है ।

मनुष्य ईर्षा क्यो करता है ? दूसरे की तरक्की देखकर क्यो

जलता है ? दूसरे की तरक्की होने से उसका क्या बिगाड होता है ? अगर उसकी तरक्की रुक जाय तो उसे क्या मिल जायगा ? यह सब ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर विचार किया जाय तो ईर्षा करने को जगह नही रहती, मगर ईर्षालु इन पर कभी विचार ही नहीं करता है। ईर्षा की जलन उसमे विवेक को बचने ही नही देती।

इस ओर खास तौर से बहिनो को ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हे समझना चाहिए कि ईर्षा एक भयंकर पाप है, बुराई है। उससे दूसरे का तो कुछ बिगडता नही है, ईर्षा करने वाले का ही दिल जला करता है ऐसी स्थिति मे दिल मे जलन रखने से क्या लाभ है ? अगर किसी कारण तुम्हे पुत्र की प्राप्ति नही हुई है तो दूसरो के पुत्र को देख-देख कर जलने से क्या लाभ है ? पहले पुण्य उपार्जन नही किया, उसका फल आज मिल रहा है। आज तुम्हें शिक्षा लेनी चाहिए और पाप के फल को देख कर नवीन पाप से बचना चाहिए। इसके विपरीत तुम ईर्षा धारण करके क्यों नया पाप कर्म बांधती हो ? ईर्षा करने से क्या तुम्हे पुत्र मिल जायगा ? नहीं, बल्कि पाप कमाओगी तो अगले जन्म मे भी पुत्र की प्राप्ति होना कठिन हो जायगा। तो क्या तुम्हारी ईर्षा से दूसरे के पुत्रो को कुछ हानि पहुँच जाएगी ? पहले तो ऐसा होना संभव नही है, क्योकि हानि-लाभ दूसरे के चाहने से नही मिलते, बल्कि अपने-अपने पाप-पुण्य के अनुसार होते हैं। थोडी देर के लिए मान भी लिया जाय कि उनकी हानि हो गई, तो उससे तुम्हे क्या मिल गया ?

बहुत लोग धन के सम्बन्ध में ईर्षा किया करते हैं। अपने पडौसी को व्यापार में लाभ होता देखकर लोगो मे जलन होती

है। मगर सोचना चाहिए कि इस जलन से किसे हानि पहुँच रही है ?

भगवान् का आदेश है कि दूसरे के गुण – सद्गुणों को देखकर प्रमोद भाव धारण करना चाहिए। जो भव्य दूसरे के गुणो को देखकर हर्षित होता है, वह स्वयं भी सद्गुणो का पात्र बन जाता है और पुण्य का उपार्जन करता है। इसके विपरीत गुणो के प्रति ईर्षा धारण करने वाला कभी गुणी नही बन सकता।

वास्तव में ईर्षा अत्यन्त घृणास्पद दुर्गुण है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य घोर से घोर अपकृत्य कर बैठता है। ईर्षा सद्बुद्धि और विवेक को भस्म कर देती है। पिछले इतिहास को आप देखेगे तो पता चलेगा कि इस ईर्षा ने बड़े से बड़े अनर्थ किये हैं। कई एक समृद्ध राजवंशो को चौपट कर दिया है इस देश को पराधीन बनाने वाले दूसरे कारण कुछ भी रहे हो, मगर उन सब में एक प्रधान कारण पारस्परिक ईर्षा भी है। भारत के तत्कालीन राजा एक दूसरे के उत्कर्ष को नही देख सकते थे और इसी कारण वे देश के दुश्मनो के साथ मिलकर दूसरे को गिराने की कोशिश करते थे। नही तो क्या मजाल थी किसी को कि कोई इस देश को पराधीन बनाने का विचार भी कर सकता। मगर ईर्षा जो न करावे सो थोड़ा हैं।

देखो भाई, बन्धुदत्त की माता का भविष्यदत्त ने या उस की माता कमलश्री ने क्या बिगाड़ किया है। बेचारी कमलश्री पति के द्वारा त्यागी हुई, पीहर में अपने दिन काट रही है। विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी होती हुई भी पराये अन्न पर जीवन

बिता रही है और धर्मध्यान करती रहती है। उधर बन्धुदत्त की माता अपने पति की प्रेयसी बनी हुई है। सारा वैभव उसी के पैरों में लोट रहा है। ऐसी स्थिति में अगर कमलश्री के चित्त में ईर्षाभाव उत्पन्न हुआ होता तो बात कुछ समझ में भी आती, मगर यहां तो उलटी गंगा बह रही है! बन्धुदत्त की माता ने कमलश्री का सारा सुख छीन लिया, अब वह उसके पुत्र भविष्यदत्त को भी छीन लेने-मार डालने के लिए तैयार हुई है!

जिस वैभव के लिए मनुष्य इतना गिर जाता है, जिस वैभव के पीछे मनुष्य अपनी मनुष्यता को भी गँवा बैठता है और राक्षस बन जाता है, उस वैभव को धिक्कार! लाख बार धिक्कार है!

बन्धुदत्त की माता के संकेत के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि तू भविष्यदत्त को तलवार के घाट उतार देना। बन्धुदत्त के हृदय में अभी तक ईर्षा नहीं जागी थी। वह बोला—माता, भाई का खून करने से महान् कलङ्क लगेगा। सारे संसार में बदनामी होगी। लोग हमारे ऊपर थूकेंगे।

माता—हाँ यह बात अच्छी तो नहीं है, मगर कभी-कभी बड़ी बुराई से बचने के लिए छोटी बुराई करनी ही पड़ती है। भविष्यदत्त को मारे बिना काम चलेगा नहीं। इसलिए बेटा, मेरे कांटे को दूर कर ही दे।

बन्धुदत्त के दिल में भी पाप जाग गया। उसने कहा—अच्छा, मां! जैसी तुम्हारी इच्छा! तुम्हारी आज्ञा सिर आंखों

पर। यात्रा का पहला मुकाम जहाँ होगा, वहीं भविष्यदत्त का काम तमाम कर दूंगा।

माता ने बन्धुदत्त को शाबाशी देकर कहा—जुग-जुग जीओ बेटा! शीघ्र सफल-मनोरथ होकर लौटना।

भाइयों! विचार करो, संसार कितना विषम है?

११-१०-४८]
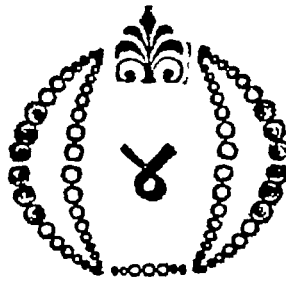
भगवत्स्तुति की महत्ता

स्तुति :

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत ! नाथ ।
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याऽऽश्रितं य इह नात्मसमं करोति ? ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेवजी भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

हे नाथ ! हे तीन लोक के भूषण ! जो भक्त भव्य आपके वास्तविक गुणों से आपकी स्तुति करते हैं, वे आपके ही समान

बन जाते हैं। जो आपकी सेवा करते हैं आपकी भक्ति करते हैं, आपके वचनामृत का पान करते हैं उन्हे आप अपने सरीखा बना देते हैं। इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है? वह स्वामी किस काम का है जो अपने आश्रित जनों को अपने ही समान वैभवशाली न बना ले?

किसी गरीब ने एक लखपति सेठ की नौकरी की। अगर वह लखपति के आश्रित होने पर भी लखपति न बना—धनवान् न हुआ—सेठ ने उसे सम्पन्न न बना दिया तो उस सेठ की नौकरी करने से उसे क्या लाभ हुआ? फिर गरीब और अमीर की नौकरी करने में भेद ही क्या रह गया? वास्तव मे बड़े का कर्त्तव्य है कि वह छोटे को अपने सम्पर्क मे बड़ा बना दे। इसी में बड़े का बड़प्पन है। उदार हृदय धनवान् अपने आश्रितों को दीन दशा मे नही रहने देते। ऐसी स्थिति में तीन लोक के नाथ प्रभु ऋषभदेव का जो आश्रय लेगा, जो उनकी शरण ग्रहण करेगा, वह उन्ही के समान क्यों न हो जायगा?

इस प्रकार अपने आश्रितो को अपने समान बनाने वाले त्रिलोकीनाथ भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयों! जो गरीब, लखपति के हाथ के नीचे पहुंच जाता है, वह भी मालदार हो जाता है, क्योंकि गुणी की सेवा करने से जरूर गुण आएगे और उन गुणों के कारण वह भी बड़ा आदमी बन जायगा। भगवान् मे अनन्त गुण हैं। जो शुद्धभाव से भगवान् की भक्ति करता है, वह भगवान् की ही कोटि में पहुंच जाता

। भगवान् उसे भी भगवान् बना लेते हैं। कहा है—

वह पारस ही पारस क्या है ?
जो लोहे को नहि पारस कर दे।
यह शक्ति है, उस भगवान् में।
जो आतम को परमातम कर दे॥

कहते हैं, पारस पाषाण लोहे को सोना बना देता है, किन्तु पारस बनाने की शक्ति उसमे नही है, मगर परमात्मा आत्मा को परमात्मा बना देता है। यह परमात्मा की विशेषता है। भक्त को भगवान् बना लेना ही भगवान् के नाम की महिमा है।

कई लोगों का कहना है कि जीवात्मा और परमात्मा मूल में ही अलग अलग है। अतएव जीवात्मा कदापि परमात्मा बन ही नही सकता। जैसे जड, चेतन मूलत भिन्न होने के कारण तीन काल में भी जड, चेतन नही बन सकता और चेतन, जड़ नही हो सकता, उसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा बन जाना भी सम्भव नही है। उनके खयाल से परमात्मा एक निराली और अद्वितीय सत्ता है। ईश्वर अनादि—कालीन है। अगर दूसरा ईश्वर हो जाय तो सृष्टि के काम मे अव्यवस्था और गड़-बड़ हो जायगी। दुनिया को हुकूमत का काम ठीक तरह नही चल सकेगा। अतएव ईश्वर रूपी डिक्टेटर एक ही होना चाहिए। कल्पना करो कि दो ईश्वर हुए और उन्होने अलग-अलग तरीके से जगत् का निर्माण करना शुरू किया तो सृष्टि मे सर्वत्र जो एकरूपता दिखलाई देती है, वह नहीं रह जायगी। एक ईश्वर

मनुष्य के दो हाथ, दो पैर, दो आँखें और दो कान बनाता है, मगर दूसरे ईश्वर की इच्छा चार हाथ, पैर आदि बनाने की हो जायगी तो कितनी गडबड़ी मच जायगी ? एक ईश्वर भैंस के सूंड बना देगा और दूसरा ईश्वर मनुष्य के पीछे पूंछ बना देगा ! इस प्रकार एक ही जाति की वस्तुओं का अलग-अलग प्रकार से निर्माण होने लगेगा तो सृष्टि की एकरूपता नष्ट हो जायगी।

सृष्टि की एकरूपता बिगडने के साथ एक बड़ा भारी अनर्थ यह हो जायगा कि अनेक ईश्वर आपस मे झगडने लगेगे।

ऐसा सोचने और कहने वालो ने ईश्वर के सच्चे स्वरूप को नही समझा है। इस ख्याल के मूल में पहली गलत धारणा तो यही है कि ईश्वर सृष्टि को गढता है। लोगो ने समझ रक्खा है कि जैसे कुम्हार बरतन बनाता है, लोहार औजार बनाता है और हलवाई तरह तरह की मिठाईयाँ बनाता है, उसी प्रकार परमात्मा जगत् को बनाता है यह मान्यता एक दम भूल से भरी है। शरीर हीन परमात्मा सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता। अगर परमात्मा को सशरीर माना जाय तो सवाल पैदा होता है कि उसके शरीर को बनाने वाला कौन है ? आपस मे लड़ाई-झगडा हो जाने के डर से दूसरा परमात्मा तो माना नही, फिर उस परमात्मा का शरीर किसने बना दिया ? कहा जाय कि परमात्मा खुद ही अपना शरीर पहले बना लेता है और फिर जगत् को बनाता है, तो यह कहना सही नही होगा। अगर ईश्वर ने अशरीर रहते हुए ही अपना शरीर बना लिया तो फिर जगत् को बनाने के लिए शरीर की क्यो आवश्यकता पडी ? अपने शरीर की तरह ही जगत् को भी अशरीर रहकर ही क्यों नही बना दिया ?

अच्छा, शरीर की बात जाने दीजिए। तुम कहते हो कि ईश्वर व्यापक है और दयालु भी है। यह बात अगर सच हो तो संसार में नाना प्रकार के कष्ट और संकट क्यो देखे जाते हैं? सृष्टि एकान्त सुखमय क्यो नही है? कहा जाय कि प्रत्येक जीव अपने-अपने भले-बुरे कर्मो के अनुसार सुख दुःख पाता है तो हम पूछना चाहते हैं कि दयामय भगवान् जीवों मे पाप करने की इच्छा क्यो उत्पन्न करता है? अगर बिना ईश्वर के पैदा किये ही पाप करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर उसे पाप करने से रोक क्यों नही देता? ईश्वर मे जीवो को पाप करने से रोकने की शक्ति है और वह दयालु भी है, और कौन कब पाप करने को तैयार होता है, इस बात को भी ईश्वर जानता है, फिर भी वह रोकता नहीं है! और फिर बाद में जीव को उसके पापों की सजा देता है! क्या यह ईश्वर के योग्य काम है? इस प्रकार विचार करने से साफ जाहिर हो जाता है कि ईश्वर दुनिया को रचने की झझटो में नहीं पड़ता।

आप कह सकते हैं कि अगर ईश्वर संसार को नही रचता तो कौन रचता है? इसका सीधा-सादा उत्तर यह है कि कोई नहीं रचता और दूसरी तरह से देखा जाय तो सभी जीवात्मा रचते हैं और प्रकृति भी रचती है। कोई नही रचता, इसका अर्थ यह है कि सृष्टि अनादिकाल से चली आ रही है। उसमें प्रतिक्षण परिवर्त्तन तो होता रहता है, मगर ऐसा कभी नहीं होता कि किसी समय पूरी की पूरी सृष्टि नष्ट हो जाय और फिर नये सिरे से उसकी रचना करनी पड़े। जब सृष्टि अनादि काल से है तो उसके

रचने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। इस प्रकार सृष्टि को रचने वाला कोई नहीं है।

जीवात्मा और जड़ प्रकृति सृष्टि को रचते हैं, यह कहने का आशय यह है कि प्रत्येक जीव पुरानी चीजों को नया रूप देता रहता है और नयी चीजों को पुराना रूप देता रहता है। कुंभार खेत मे से मिट्टी लाया। मिट्टी का लौंदा बनाया और फिर उसे अपने कौशल से उसने घड़े का रूप दे दिया! इसी प्रकार बढई जगल से लकडी काटकर लाता है और उससे नाना प्रकार की चीजें तैयार करता है किसान अनाज उत्पन्न करता है। जुलाहा रूई से सूत और सूत के कपड़ा बनाता है। इस प्रकार सभी लोग कुछ न कुछ बनाते रहते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी इसी प्रकार नाना वस्तुओ के बनाने मे लगे रहते हैं। मधुमक्खियाँ फूलो मे से रस ले-लेकर और छत्ता बनाकर शहद बनाती हैं, बहुत से पक्षी घोंसला बनाते हैं, गाय-भैंस आदि दुधारू पशु घास आदि से दूध, गोबर आदि बनाते हैं। इस प्रकार पशु-पक्षी भी कुछ न कुछ बनाने में लगे ही रहते हैं।

इसी प्रकार प्रकृति से भी बहुत-से काम हो रहे हैं। पानी से भाप बनती है, बादल बनते हैं, वर्षा होती है और घास उगती है। वर्षा का पानी नाले बनाता है, नदिया बनाता है। इसी प्रकार सैकड़ों काम प्रकृति द्वारा हो रहे हैं। आधुनिक विज्ञान बतलाता है कि पहाड़ और रेगिस्तान आदि कैसे बनते हैं।

एक ईश्वर के विषय में दूसरी बात कही गई है कि अगर ईश्वर एक न होगा और ज्यादा होंगे तो उनमें मतभेद और

लडाई-झगडा हो जायगा। मुझे कहना पडता है कि ऐसा सोचने वाले और कहने वाले ईश्वर को कलक लगाते हैं। क्या ईश्वर रागी और द्वेषी है कि आपस में झगड़ पड़ेगे? सर्वज्ञ और वीतराग क्या किसी से झगड़ा करेगा?

भाइयो! ईश्वर अगर रागी-द्वेषी होता तो जरूर यह सोचता कि अगर दूसरा ईश्वर बन जायगा तो मेरी महत्ता कम हो जायगी। वही दूसरों को ईश्वर बनने से रोक सकता है। अगर ईश्वर को अपनी प्रतिष्ठा भग होने का भय नहीं है तो फिर वह दूसरो को ईश्वर बनने से क्यों रोकेगा? किसी नगर में एक प्रतिष्ठित सेठ होता है और प्रतिष्ठालोलुप होता है तो वह यही सोचता है कि दूसरा कोई मुझ से आगे न बढ जाय। बढ़ गया तो मेरी पूछ नहीं होगी। एक दूकानदार दूसरे की काट करता है, जिससे कि उसके ग्राहक कम न हो जाएँ। क्या आप ईश्वर को भी प्रतिष्ठालोलुप सेठ के समान या दुकानदार के समान समझते हैं? अगर ऐसा समझते हैं तो मैं समझता हूं कि आप ईश्वर को नही समझते हैं। ईश्वर ऐसा होता तो साधारण जीव मे और ईश्वर मे फर्क ही क्या रह जाता?

सारी दुनिया राग-द्वेष के चक्कर मे पड़ी है। सब यही चाहते हैं कि मेरी प्रतिष्ठा बढे, मेरी महत्ता हो और किसी दूसरे की न हो! इस कारण वे ईश्वर को भी ऐसा ही समझने लगते हैं। मगर ईश्वर राग-द्वेष से सर्वथा अतीत है। जिसने मोह को पूरी तरह जीत लिया है, वही परमात्मपद का अधिकारी होता है। अतएव परमात्मा किसी दूसरे के परमात्मा होने मे बाधक नहीं होता।

असलियत यह है कि कोई भी परमात्मा अनादिकाल से नहीं है। जीवात्मा जब विशेष तपस्या और साधना करके आत्मा के समस्त विकारों को दूर कर देता है तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा वीतराग स्थिति पर पहुँच जाता है, तो वह परमात्मा बन जाता है। ऐसे अनन्त-अनन्त परमात्मा हैं। उन सब का स्वरूप एक सरीखा तो है, पर एक नही है। सब की अपनी-अपनी अलग सत्ता है। सभी भगवान् अशरीर हैं और ज्योतिस्वरूप हैं। अशरीर होने के कारण उनके लिए अलग-अलग स्थान की आवश्यकता नही रहती। कहा भी है—

एक मांही एक राजै, एक मांही अनेककम्।
इक अनेक की नही संख्या, नमो सिद्ध निरजनम्॥

जहाँ एक सिद्ध है, वहाँ अनेक भी विराजमान हैं। इस प्रकार एक मे अनेक होने पर भी अपने-अपने स्वरूप मे स्थित सिद्ध भगवान् की कोई संख्या नही है।

इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। कल्पना करो कि एक कमरे मे एक दीपक जल रहा है और उसका प्रकाश सारे कमरे में फैला हुआ है। थोड़ी देर बाद उसी कमरे मे दूसरा दीपक लाकर रख दिया गया। अब आप विचार कीजिये कि दूसरे दीपक का प्रकाश किस जगह समाएगा? कमरा तो पहले से ही प्रकाश से भरा हुआ था! मगर देखते हैं कि दूसरे दीपक का प्रकाश भी उसी प्रकाश मे मिल जाता है और उसी कमरे में समा जाता है। उसके बाद पच्चीस-पचास, सौ दीपक फिर उस कमरे में लाकर रख दिए जाएँ तो उन सबका

प्रकाश भी पहले के प्रकाश में ही समाया हुआ रहता है। तो जिस प्रकार सैकडो दीपको का प्रकाश एक दूसरे में समा जाता है, उसके लिए अलग-अलग स्थान की आवश्यकता नही होती, इसी प्रकार एक मे अनेक सिद्ध समाये रहते हैं।

अब इस बात पर भी विचार करो कि क्या सैंकडों दीपको का जो प्रकाश आपस में मिला हुआ है और एक ही साथ, एक ही स्थान पर रहा हुआ है, वह क्या वास्तव मे एक हो गया है ? अथवा एक ही स्थान पर स्थित रहने पर भी उसका अस्तित्व अलग अलग है ?

इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि सब दीपकों का प्रकाश भले ही मिला हुआ अवस्थित है, फिर भी उसकी सत्ता अलग-अलग है। अगर सब दीपको का प्रकाश एक ही बन गया होता-उनका अस्तित्व अलग अलग नही रहा होता तो एक दीपक के बुझने पर सारा का सारा प्रकाश नष्ट हो गया होता। मगर ऐसा देखा नहीं जाता। क्रमश एक-एक दीपक को हटाया जाय तो प्रकाश मे मन्दता आती जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जब सैकडो दीपको का प्रकाश एक ही जगह, एक ही साथ, एक सरीखे स्वरूप में स्थित है, तब भी प्रत्येक दीपक के प्रकाश की सत्ता अलग-अलग है।

बस, यही बात सिद्ध भगवंतों के विषय में है। प्रत्येक सिद्ध भगवान् की अपनी-अपनी सत्ता अलग-अलग रहती है, फिर भी एक मे अनेक-असंख्यात अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान रहते हैं।

पहले कहा जा चुका है सिद्ध भगवन्तो का स्वरूप एक नहीं, किन्तु एक समान है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि सब भगवान् अनन्त ज्ञान स्वरूप हैं, अनन्त दर्शन स्वरूप हैं, चेतना के पुञ्ज हैं, अशरीर हैं, निरंजन, निराकार ज्योतिस्वरूप हैं। उनमे न कोई छोटा है, न कोई ऊँचा है, न नीचा है, न चाकर है न ठाकुर है। सब आनन्दमयी सत्ता है।

जिस आत्मा नें इस सिद्ध पद को—इस परमात्मपद को—एक बार प्राप्त कर लिया उसे फिर जन्म, मरण के अधीन नही होना पडता। वह सदैव मुक्त दशा में ही विराजमान रहता है। अतएव प्रत्येक सिद्ध भगवान् की आदि तो है मगर अन्त नही है।

कई लोग कहते कि मुक्तात्मा कभी न कभी आकर फिर जन्म लेते हैं। कुछ लोगों का यह खयाल है कि परमात्मा जब यह देखते हैं कि उनके फैलाये हुए धर्म का ह्रास हो रहा है, तब वे धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने के लिए संसार में आजाते हैं—गर्भ में आकर जन्म लेते हैं। क्योंकि राग-द्वेष आ जाने पर जन्म-मरण होना अनिवार्य है। मगर भाइयों ! ऐसा नही हो सकता। एक बार जिसने राग-द्वेष का पूरी तरह नाश कर दिया है, जो पूर्ण वीतराग दशा को प्राप्त हो चुका है उसकी आत्मा में फिर कदापि राग—द्वेष का उदय नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध मे कुछ बातें मैं पहले एक दिन कह चुका हूं। फिर दोहराता हू कि जैसे बीज के जल जाने पर फिर कभी उससे अकुर की उत्पत्ति नही होती, इसी प्रकार कर्म रूपी बीज के भस्म हो जाने पर जन्म-मरण रूप अकुर उत्पन्न नहीं हो सकता। कहा भी है—

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न प्ररोहति भवाङ्कुर. ॥

भाइयो ! अनन्त ज्ञानी प्रभु सभी कुछ देखते-जानते हुए भी किसी प्रकार की राग-द्वेषमयी परिणति के अधीन नही होते । वे इस बात को जानते है कि—

राई बढ़े न तिल घटे, रह रह जीव निशक ।

केवल ज्ञानी ने अपने ज्ञान मे जो देखा है, वह ज्यो का त्यों होने वाला है । उसमे किसी प्रकार का रद्दोबदल नहीं हो सकता ।

भाइयो ! अतएव इस भ्रमणा को त्याग देना चाहिए कि परमात्मा फिर आत्मा बन जाता है । परमात्मा मे जन्म लेने की शक्ति नही है । चना, मक्की आदि के दाने उगते हैं, क्योकि उनमें उगने की शक्ति है । उसी चने को अगर भून दिया जाय तो उसकी उगने की शक्ति चली जाती है और सदा के लिए चली जाती है । उसे कोई बो दे और चाहे जितना पानी सीचे तो भी क्या वह कभी उगने वाला है ? नही, वह कदापि नहीं उग सकेगा । इसी प्रकार जो कर्म सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, वे कभी भी जन्म-मरण रूप ससार को उत्पन्न नही कर सकते । कर्मों के कारण ही जन्म मरण के कष्ट भुगतने पड़ते हैं । कर्मों से मुक्त होने का अर्थ ही जन्म मरण से सदा के लिए मुक्त होना है ।

कर्म जीव के कार्मण शरीर में रहते हैं, बल्कि कर्मों का समूह ही कार्मणशरीर कहलाता है · कार्मण शरीर कर्मों का

खजाना है। जीव के साथ एक सूक्ष्म शरीर और होता है जो तैजस शरीर कहलाता है। यह दोनो सूक्ष्म शरीर सदैव जीव के साथ रहते हैं। अनादिकाल से जीव के साथ लगे हुए हैं। जहां जीव जाता है वहीं जीव के साथ चले जाते हैं। जैसे बैल की नाथ खीच कर जहां चाहे वहां उसे खडा कर दिया जाता है। उसी प्रकार कार्मण शरीर जीव को जहां ले जाना चाहता है, ले जाता है। जीव अपने पहले स्थूल शरीर को त्याग कर जब नया स्थूल शरीर ग्रहण करने को जाता है उस समय कार्मण शरीर का उपयोग करता है। शास्त्र मे गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया था कि जीव शरीर सहित निकलता है या शरीररहित निकलता है ? भगवान् ने इस प्रश्न का उत्तर दिया था कि किसी अपेक्षा जीव शरीरसहित होकर और किसी अपेक्षा शरीर रहित होकर स्थूल शरीर को धारण करने के लिए भवान्तर में जाता है। शरीर रहित इस अपेक्षा से कि जीव का स्थूल शरीर यही रह जाता है, वह साथ मे नही जाता। और शरीरसहित इसलिए कि तैजस और कार्मण नामक दो सूक्ष्म शरीर उसके साथ जाते हैं।

यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक कार्मण और तैजस शरीर साथ-साथ जाते हैं तब तक जन्म-मरण की परम्परा चलती रहती है। जब जीव को इन दोनो कर्मों से छुटकारा मिल जाता है तो फिर वह स्थूल शरीर को भी धारण नही करता। इस प्रकार जीव सदा के लिए अशरीर हो जाता है, जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है।

जीव अनादिकाल से लगे हुए कर्मों से कैसे छुटकारा पाता है और किस तरीके से आत्मा का स्वरूप पूर्ण शुद्ध बनता

है, यह बात शास्त्रों में बहुत विस्तार के साथ बतलाई गई है। विस्तार से उसका वर्णन करने का समय नहीं है, फिर भी संक्षेप मे यह बतला देना आवश्यक है कि संवर और निर्जरा के द्वारा मुक्ति की सिद्धि होती है। नवीन-नवीन आने वाले कर्मों का रुक जाना संवर है और पुराने बँधे हुए कर्मों का खिर जाना निर्जरा है। मगर संवर और निर्जरा के सम्बन्ध मे इतना समझ लेना काफी नहीं है। जो भव्य जीव मुमुक्षु हैं अर्थात् मुक्ति पाने के अभिलाषी है उन्हे यह समझना चाहिए कि आत्मा की किसी प्रकार की विचारधारा से आस्रव होता है और किस परिणामधारा के द्वारा उसे रोका जा सकता है ? इसी प्रकार जीव की किस परिणति से बन्ध होता है और किस परिणति से निर्जरा होती है ? भिन्न-भिन्न समयो मे उत्पन्न होने वाली आत्मा की इन भावनाओ को परखने की बडी आवश्यकता है। इसी को वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं। अपनी परिणतियो को ठीक तरह परखे बिना संवर और निर्जरा की आराधना नहीं होती। इसके विपरीत जो महात्मा इन सब बातो को भलीभाँति समझ लेते हैं, वे आस्रव और बन्ध से बच कर सवर के द्वारा नये कर्मों का आना रोक देते हैं और निर्जरा के द्वारा पुराने कर्मों को नष्ट करते जाते है। इस तरीके से क्रमशः आत्मा पूर्ण रूप से निष्कर्म-दशा प्राप्त कर लेती है।

भाइयो ! यह ज्ञान वीतराग प्ररूपित शास्त्रो के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि वीतराग धर्म ही आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग दिखलाता है। दूसरे धर्म जब परमात्मा को भी आत्मा बन जाने की बात कहते हैं, तब आत्मा